रेखाचित्र

रेखाचित्र

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

विषय-सूची

[नं० १ से लगाकर ७ तक और नं० ११, १२, २८ अब स्वर्ग-वासी हो चुके हैं—लेखक]

रेखाचित्र

रेखाचित्र खींचना एक कला है। थोड़ी-सी रेखाओंके द्वारा एक सजीव चित्र बना देना किसी कुशल कलाकारका ही काम हो सकता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण अजन्ताका वह सुप्रसिद्ध चित्र है, जिसमें एक वृद्ध मनुष्य किसी राजाके पास जहाज डूबने या युद्धमें पराजय होनेका दुःखद संवाद लाया है। उसके चेहरे तथा हाथकी मूक रेखाओंने बड़ी खूबीके साथ उसके हृद्गत भावको प्रकट किया है। कहा जाता है कि कलाजगत्में इस कोटिका दूसरा चित्र शायद ही कोई विद्यमान हो। इसी प्रकार थोड़े-से शब्दोंमें किसी घटनाको चित्रित कर देना अथवा किसी व्यक्तिका सजीव चित्र उपस्थित कर देना अत्यन्त कठिन कार्य्य है। इसके लिए लेखकको कठोर साधनाकी जरूरत है। जहाँ रंगके थोड़े गहरे या किंचित् हलके होनेसे ही तस्वीर बिगड़ सकती है, वहाँ तूलिका-को कितनी सफाई, कितने चातुर्य्यके साथ चलाना चाहिए, इसका अन्दाज किसी विशेषज्ञ चित्रकारको ही हो सकता है। इसके लिए सरस्वतीके मन्दिरकी आराधना तो अनिवार्य्य है ही, पर साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व-को सजीव तथा उन्मुक्त बनाये रखना भी अत्यन्त आवश्यक है।

जिस आदमीको जीवनके विविध अनुभव प्राप्त नहीं हुए, जिसने आँखे खोलकर दुनिया नहीं देखी, जिसे कभी जीवन-संग्राममें जूझनेका मौका नहीं मिला, जो संसारके भले-बुरे आदमियोंके संसर्गमें नहीं आया, मनोवैज्ञानिक घात-प्रतिघातोंका जिसने अध्ययन नहीं किया और जिसने एकान्तमें बैठकर जिन्दगीके भिन्न-भिन्न प्रश्नोंपर विचार नहीं किया, भला वह क्या सजीव चित्रण कर सकता है?

जिसप्रकार अच्छा चित्र खींचनेके लिए कैमरेका लेन्स बढ़िया होना

चाहिए और फिल्म भी काफी कोमल या सैंसिटिव, उसी प्रकार सफल चित्रणके लिए चित्रकारमें, विश्लेषणात्मक बुद्धि तथा भावुकतापूर्ण हृदय, दोनोका सामंजस्य होना चाहिए। पर-दुख कातरता, संवेदनशीलता, विवेक और सन्तुलन इन सब गुणोकी आवश्यकता है। अत्युक्तिमय प्रशंसा अथवा घोर निन्दा दोनो ही चित्रणके लिए विघातक है।

अवतक रेखाचित्र विषयक अनेक ग्रन्थोको पढ़नेका सौभाग्य हमें प्राप्त हो चुका है। अंग्रेजीमें इस विषयके माने हुए आचार्य्य ए० जी० गार्डिनर थे, जिनका स्वर्गवास कुछ वर्ष पूर्व हो चुका है। किसी भी निष्पक्ष आलोचकको यह बात निस्संकोच माननी पड़ेगी कि गार्डिनरके मुकावलेका स्कैच-लेखक इस समय कोई भी विद्यमान नही। जो नवयुवक लेखक रेखाचित्र खीचनेकी कला सीखना चाहे, उनसे हमारा विनम्र अनुरोध है कि वे गार्डिनरकी कितावोंका भलीभाँति अध्ययन कर लें। गार्डिनरने अपने खीचे हुए रेखाचित्रोमें निजके व्यक्तित्वको बिल्कुल पीछे ही रक्खा है और यही उनकी सबसे बड़ी खूबी है।

आचार्य्य गिड्वानीने हमें बतलाया था कि जब कभी गार्डिनरका कोई रेखाचित्र प्रकाशित होता तो विलायतमें उसकी धूम मच जाती थी। यत्र-तत्र वह चर्चाका विषय बन जाता था। स्कैच-लेखकोमें वे सव्यसाची अर्जुन है, जिनका निशाना कभी खाली नही जाता।

सम्भवत. इस विषयके भीष्मपितामह रूसी लेखक तुर्गनेव ही थे। उनके लिखे रेखाचित्रोने रूसी समाजपर इतना प्रभाव डाला था कि उनसे वहाँ गुलामीकी प्रथा बन्द करनेमें बड़ी मदद मिली थी। उनकी लिखी ए पोर्ट्स मैन्स स्केचैज (२ भाग) तथा 'ड्रीमटेल्स' एण्ड 'प्रोज पोइम्स' अब भी ताजगी रखती है।

अमरीकन लेखक वाशिंगटन इर्विगकी स्कैचबुक अंग्रेजी-साहित्यमें बहुत प्रसिद्ध है। उनकी रिपवान विंकिल नामक कहानीकी गणना अमर साहित्यमें की जाती है। उसे हमने १९१०-११में हाईस्कूलकी पाठ्य-

पुस्तकके तौरपर पढ़ा था और आज ४१-४२ वर्ष बाद भी उससे हमारा पर्य्याप्त मनोरंजन होता है।

ग्रेसन नामक एक अमरीकन लेखकके रेखाचित्रोंमें एक अद्भुत सरसता और आनन्द पाया जाता है और वह हमें बन्धुवर सियारामशरणजीके रेखाचित्रोंकी याद दिला देता है। ये दोनों ही लेखक अपने आसपासके ग्रामीण दृश्योंका बड़ा ही सजीव चित्रण करते हैं। जिस ग्रामीण जनताको हम मूक पशु ही समझते हैं, ग्रेसन, श्रीरामजी और सियारामशरणजी उनको वाणी देकर हमारे सामने उपस्थित कर देते हैं। दो भारतीय लेखकोंने—श्री के० एस० वेंकटरमनी और श्री के० ईश्वरदत्त-ने—बहुत बढ़िया रेखाचित्र अंकित किये हैं। पहले महानुभावकी योग्यता-की प्रशंसा तो विलायतके बड़े-बड़े लेखकोंने की थी और निस्सन्देह वे उसके उपयुक्त पात्र थे। उनका स्वर्गवास हाल ही में हुआ है। यह दुर्भाग्यकी बात है कि हिन्दीमें उनके किसी भी ग्रन्थका अनुवाद नहीं हुआ। दूसरे सज्जन आज भी हिन्दुस्तान टाइम्समें सुन्दर रेखाचित्र खींचा करते हैं, यद्यपि उनका संग्रह एक ही प्रकाशित हुआ है—स्फार्क्स एण्ड फ्यूम्स। स्वर्गीय वेंकटरमनीके पेपर बोट्सका प्रथम संस्करण जब निकला था, तब उसे पढ़नेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था और उसकी मधुर याद अब भी आ जाती है।

खेद है कि प्रान्तीय भाषाओंके रेखाचित्र सम्बन्धी साहित्यके विषयमें हमारा ज्ञान न कुछके बराबर है। और तो और, उर्दू-साहित्यसे भी हमारा परिचय बिल्कुल नहीं। हाँ, हिन्दी लिपि या अनुवादमें हमने उन्हें थोड़ा-बहुत पढ़ा है। पितरस, शौकत थानवी और चगताईके रेखाचित्र उच्च कोटिके हैं, पर इनमेंसे कोई भी बँगला-लेखक परशुराम (श्री० राजशेखर बोस)को नहीं पाता। वे अनुपम हैं, अद्वितीय हैं और सर्वोच्च स्थान अभीतक उन्हींके लिए सुरक्षित है। अवश्य पत्रके कितने ही लेखोंमें बहुत सजीव चित्रण हुआ है और उसगत जान 'अदा'के कितने ही लेखोंमें रेखा-

चित्रोंके उज्ज्वल दृष्टान्त विद्यमान है। मौलवी अब्दुलहक साहबके स्कैच भी ला-जवाब बन पड़े है। उनका लिखा नामदेव माली नामक रेखाचित्र तो कई बार उद्धृत हो चुका है।

और भला स्व० रवीन्द्रनाथ मैत्रको कौन भूल सकता है, जिनके लिखे त्रिलोचन कविराजके मुकाबलेकी चीज़ शायद ही कही मिले।

गुजरातीमे श्रीमती लीलावती मुशीके लिखे रेखाचित्र प्रसिद्ध है। उनमें चरित्रोंके अध्ययनकी प्रशसनीय प्रतिभा विद्यमान है। क्या ही अच्छा हो यदि उनके रेखाचित्रोका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करा दिया जाय! हिन्दी रेखाचित्रोका ज़िक्र करते हुए हमें सबसे प्रथम आचार्य प० पद्मसिहजी शर्माका स्मरण आता है। वैसे उनके पूर्व भी कितने ही अच्छे स्कैच हिन्दीमें निकल चुके थे, पर हिन्दीमे रेखाचित्रोंके प्रथम आचार्य प० पद्मसिहजीको ही मानना पड़ेगा। उनका महाकवि अकबर विषयक लेख, चरित्र-चित्रणका सर्वोत्तम दृष्टांत माना जा सकता है। यदि आज वे जीवित होते तो इस बातको सुनकर यही कहते "भई पहले सपादकाचार्य रुद्रदत्त शर्मा, बाल-कृष्ण भट्ट, बाबू बालमुकुन्द गुप्त और पडित प्रतापनारायण मिश्रको श्रद्धाजलि अर्पित करो। मुझे पाँचवाँ सवार क्यो बनाते हो?" अपने रेखाचित्रोंके इस सग्रहको प्रकाशित करते हुए हमें इस बातका पछतावा है कि यह सग्रह स्व० प० पद्मसिह शर्मा, बन्धुवर ब्रजमोहन वर्मा और भाई शोभाचन्द जोशीके सम्मुख न छप सका। वर्माजी तथा जोशीजीने तो हमारे सामने ही रेखाचित्र लिखने प्रारभ किये थे और उन दोनोंके सामने हार माननेमे हमने निरन्तर गौरवका ही अनुभव किया था।

आज जो भी महानुभाव इस क्षेत्रमें अग्रसर हो रहे है, उन सबका हम अभिनन्दन करते है।

श्री वृन्दावनलालजी वर्माको हम 'बड़े भैया' कहते है, श्रीरामजी हमारे लिए अनुज तुल्य है और हरिशंकरजी शर्मा अग्रज तथा श्रीमती महा-देवीजी वर्मा हमे चाचा मानती है—उनके पूज्य पिताजीके साथ मै एक ही

कालेजमें सहायक अध्यापक था। बन्धुवर सियारामशरणजीसे भी अपना निकट संबंध बहुत वर्षोंसे रहा है। यही बात भाई अन्नपूर्णानन्दजी और कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकरके बारेमें कही जा सकती है। श्री वेंकटेश नारायणजी तिवारी तो हमारे श्रद्धेय है। इन सबके रेखाचित्रोंको हम बार-बार पढते रहे है और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी करते रहे है। श्रीरामजी शर्माकी बोलती प्रतिमा नामक पुस्तकके रेखाचित्र एक-से-एक बढिया बन पडे है। उसीप्रकार श्रीमती महादेवीजीकी 'अतीतकी स्मृतियाँ' एक अद्वितीय पुस्तक है। हिन्दी-जगत्की मनहूसियतको दूर करनेके लिए हरिशंकरजी, अन्नपूर्णानन्दजी और बेढबजीने जो काम किया है, उसे कौन भुला सकता है? शर्माजीके चहचहाते चिडियाघर और पिंजरापोलमें उच्च कोटिका हास्य विद्यमान है और अन्नपूर्णानन्दजीके महाकवि चच्चाका क्या कहना है।

इस प्रसगमें हमें दो बन्धुओंका स्मरण आता है, एक तो श्री ज्ञानचन्द गौतमका और दूसरे श्री अख्तरहुसेन रायपुरीका। दोनो ही बढिया स्कैच लेखक है, पर दोनोने ही अपनी रचनाओंकी बिल्कुल उपेक्षा की है। जिन दिनो गौतमजी 'लोकमणि' नामसे नवशक्तिमें अपने स्कैच प्रकाशित कर रहे थे, उन दिनो हमने उनके विषयमें विशाल भारतमें एक लेख लिखकर उनकी अद्भुत कलाकी ओर हिन्दी-जनताका ध्यान आकृष्ट किया था और अख्तर साहबके लिखे स्कैच जब 'विशाल भारत' में छपे थे, तो उनकी धूम ही मच गई थी। हमे इस बातका दुःख है कि हिन्दी-जनताने इन दोनो लेखकोंकी कद्र नही की और इसके लिए वे दोनो भी कुछ अशमें तो अपराधी है ही, क्योंकि वे स्वय अपनी मानस सतानकी उपेक्षा करते रहे है। इसी कोटिके मुजरिम है, श्रीकृष्णदत्त पालीवालजी, जो हिन्दीके अष्टम मिनस्ट्रेल बन सकते थे, पर जो आज राजनैतिक रेगिस्तानमें अपनी नौका खे रहे है।

इस बीच साहित्याकाशमें सबसे अधिक तेजस्वी रेखाचित्रकारका आविर्भाव हुआ है और उसे हम अपने इतिहासकी एक स्मरणीय घटना ही मानते है—हमारा अभिप्राय बन्धुवर बेनीपुरीजीसे है। उनकी रचनाने

यौवन है, आपमें ओज है और सबसे बड़ी बात यह है कि वे खुली आँखोंसे आसपासके जगत्‌को देखते रहते हैं।

बन्धुवर मोहनलाल महतो वियोगीके रेखाचित्र उच्च कोटिके हैं और चार बच्चोंके महाप्रयाणपर उन्होंने जो कुछ लिखा था, उसकी हृदय-वेधकताके विषयमें क्या कहा जाय ?

यदि कभी अवकाश मिला तो हम उपर्युक्त लेखकोंकी रचनाओंपर स्वतन्त्र निबन्ध ही लिखेंगे। दुर्भाग्यवश इस समय हमारे पास सर्वश्री रामनाथलाल सुमन, देवेन्द्र सत्यार्थी और प्रकाशचन्द्र गुप्तके ग्रन्थ विद्यमान नहीं, नहीं तो उनके विषयमें कुछ विस्तारसे लिखते। सुमनजी बड़े विस्तारपर अपने चित्र खींचते हैं और उनके रेखाचित्र 'विस्तृत अध्ययन' बन जाते हैं, पर उनका भी अपना अलग महत्त्व है। प्रकाशचन्द्रजी छोटी-छोटी चीज़ोंपर बड़े मज़ेके साथ लिखते हैं। उनके कुछ रेखाचित्र ए० जी० गार्डिनरकी याद दिला देते हैं। श्री जैनेन्द्रजीकी 'दो चिड़िया' में कई अच्छे रेखाचित्र हैं।

अपने पुस्तकालयसे दूर बैठा हुआ जब कि यह लेख मैं लिख रहा हूँ, मुझे खास तौरपर कई रेखाचित्रोंका स्मरण आ रहा है। बहन श्रीमती सत्यवतीजी मल्लिकके 'क़ैदी' नामक स्कैचने हमें चैखवकी कलाका स्मरण दिला दिया और मधुर कोमल भावनाओंके चित्रणमें हम उन्हें अद्वितीय मानते हैं।

बन्धुवर डाक्टर हजारीप्रसादजी द्विवेदी अपने रेखाचित्रोंमें विद्वत्ताके साथ-साथ मधुर हास्यका पुट देनेमें समर्थ हैं, और श्री गोयलीयजीके रेखाचित्र भाषा तथा भाव दोनोंकी दृष्टिसे काफी अच्छे बन पड़े हैं।

बन्धुवर सत्यार्थीजीका 'जन्म-भूमि' नामक रेखाचित्र निस्सन्देह फर्स्ट क्लासका था और उसकी टीस अब भी हृदयको कुरेद देती है। अभी-अभी हमने उसे मँगाकर फिरसे पढ़ा और सत्यार्थीजीके कलाकार रूपको प्रणाम किया।

और याद आ रही है प्रभाकरजीके मजरअली सोख्तापर लिखे रेखा-चित्रकी और मोती कुत्तेपर लिखे उनके संस्मरणकी।

स्व० बालकृष्णभट्टके सुपुत्र स्व० श्री लक्ष्मीकान्तजी भट्टने श्रद्धेय टंडनजीका जो रेखाचित्र गार्डिनरकी स्टाइलपर खींचा था, वह भी बहुत बढ़िया बन पड़ा था।

हमारे साथी लेखकोंमें श्रीयुत चन्द्रदत्तजी पाण्डे और श्री रतनलालजी बंसल अच्छे रेखा-चित्रकार हैं और हिन्दी-संसार उनसे बढ़िया ग्रंथोंकी आशा कर सकता है। पाण्डेजीका दिल्लीमें पाण्डव लोग और बंसलजीका राधारमण नामक रेखाचित्र उच्चकोटिके रहे थे।

अपने इन आराध्यों, अग्रजों, अनुजों तथा साथियोंका अभिनन्दन करनेके बाद दो बातें हम अपने रेखाचित्रोंके विषयमें भी कह देना चाहते हैं। अपने पाठकों तथा आलोचकोंसे हमारा विनम्र निवेदन है कि वे 'हमारे आराध्य', 'संस्मरण' तथा 'रेखाचित्र' इन तीनों पुस्तकोंको पढ़नेके बाद उनके विषयमें अपनी सम्मति कायम करें। सन् १९१२ में हमने अपना पहला रेखाचित्र मर्यादामें 'औरंगजेब' प्रकाशित किया था और उसे चालीस वर्षसे अधिक हो गये। इस बीचमें हमने सवा सौके करीब रेखाचित्र अंकित किये होंगे, जिनमें कितने ही अभी संग्रहरूपमें अप्रकाशित हैं।

मुहाविरेकी उस कूंजड़ीको हम अपना आदर्श नहीं मानते, जो अपने बेरोंको खट्टा बतानेमें संकोच करती है। अपने लिखे कितने ही रेखाचित्रोंको हम असफल प्रयत्न मानते हैं, यद्यपि उनमें कुछ साधारणत अच्छे भी होंगे।

हम अपनी एक कमजोरी सार्वजनिक तौरपर स्वीकार करते हैं। भक्तिपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हम अपना सन्तुलन खो बैठते हैं। आज हम किसी एक व्यक्तिके प्रेममें फँस जाते हैं तो कल दूसरेके। साहित्य-क्षेत्रमें स्वकीया जैसे गुणोंको धारण करना हमारे लिए सर्वदा असम्भव है।

सच बात तो यह है कि हमने अपने इन रेखाचित्रोंमें अपने प्रेम-व्यापार

ही चित्रण किया है ! वकील—एमर्सन मनुष्य अपनी आत्माके विस्तृत रूपकी ही प्रशंसा करता है ।

नाप-तोलकर बावन तोले पाव रत्ती प्रशसा करनेका हमें अभ्यास नही और दिल खोलकर दाद देनेमें हम विश्वास रखते है । अपने खीचे रेखा-चित्रोको हमने प्राय. ज्यो-का-त्यो छाप दिया है, यद्यपि उनके पात्रोंके जीवनमे उल्लेख योग्य परिवर्तन हो चुके है, पर हम तो अब भी उनके पूर्व रूपके ही प्रशंसक है । हमारे हृदयमें उनकी पुरानी मूर्ति ही विद्यमान है ।

इधर हमारे दृष्टिकोणमें कुछ अन्तर अवश्य हुआ है । अब हम विशे-पत. उन्ही लोगोका चित्रण करना चाहते है, जिनका जीवन सघर्षमय है ।

भावी रेखाचित्र

भावी रेखाचित्रोंके विषयमे हम भगवान्के इस कथनको ही आदर्श मानते है। "दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।" वास्तवमे न्यायका भी यही तक़ाज़ा है कि हम सबसे पहले उनकी कद्र करें, जिनकी प्रतिभा क़द्रदानीके अभावमें कुठित होती जा रही है। असाधारण मनुष्योंकी महिमा गान करनेवाले बहुत मिल जायेंगे ।

पर कितने कलाकार ऐसे है, जो साधारण सिपाहियो, मामूली कार्य-कर्ताओ, अविज्ञापित कवियो तथा सघर्षमय जीवन बितानेवाले लेखकोंके विषयमे दो-चार पक्तियाँ भी लिखे ? चित्रण ? चित्रणके लिए मसाला गली-गली पडा हुआ है—रेखाचित्रोंके पात्र हर जगह मौजूद है । कैमरेसे क्या राजा-महाराजाओंके ही चित्र खीचे जा सकते है ? यदि आपके हृदयमे गुणज्ञता हो, स्वभावमें रसज्ञता और मस्तिष्कमें विश्लेषण शक्ति तथा विवेक भी, तो आप एक-से-एक बढ़िया रेखाचित्र खीच सकते है । यदि मौलवी साहब अब्दुलहक़ नामदेव ढेड़पर लिख सकते है, श्रीराम शर्मा चन्दा चमार या पीताम्बर कुम्हारपर, तुर्गनेव एक भिखारीको रेखाचित्रका पात्र बनाते है और नेविनसन एक कुत्तेको ही, तो क्या हम लोगोंके लिए पात्रोकी कमी रहेगी ?

कल्पना कीजिये हिन्दीका कोई पाठक सन् २२५२ में यह जानना चाहे कि तीन सौ वर्ष पूर्व बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें यानी १९०० से १९५० तक भारतका साधारण जनसमाज कैसे अपना जीवन व्यतीत करता था, तो क्या उसे प्रामाणिक रेखाचित्र मिल सकेंगे? जिसप्रकार कविवर बनारसीदास जैनने भारतवर्षका सर्वप्रथम आत्मचरित (अर्द्ध कथानक) लिखकर, हमारी मातृभाषाका मुख उज्ज्वल किया था, क्या उसप्रकार हम लोग बढ़िया-से-बढ़िया रेखाचित्र खींचकर अन्य प्रान्तीय भाषाओंके लिए उदाहरण उपस्थित नहीं कर सकते ?

ऐटम बमके इस युगमें भी क्या किसीको यह बतलानेकी जरूरत है कि क्या विज्ञान, क्या कला और क्या इतिहास और क्या साहित्य, सभीमें मापदण्डोंका परिवर्त्तन हो चुका है? परमाणुओंकी महिमाका यह युग आ पहुँचा है और हम साहित्यिकोंका कल्याण इसीमें है कि हम अपना दृष्टिकोण युगधर्मानुकूल बना लें। अलौकिक महापुरुषोंकी यश दुन्दुभी बजानेवाले और उससे पैसा कमानेवाले बहुत पैदा हो जायेंगे। आवश्यकता है ऐसे कलाकारोंकी, जो साधारणमें असाधारणके दर्शन कर सकें, तथाकथित 'क्षुद्र' के महत्त्वको पहचान सकें और जिनकी पैनी दृष्टि जाति-वर्ग, धर्म, देश इत्यादिकी संकीर्ण सीमाओंको पारकर मानव-मात्र ही नहीं, प्राणि-मात्रमें एकताका अनुभव कर सके।

भारतकी राष्ट्रभाषा और एशिया महाद्वीपकी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा ऐसे ही कलाकारोंकी प्रतीक्षा कर रही है।

१२३ नार्थ ऐवेन्यू,
नई दिल्ली
१०-९-५२

—बनारसीदास चतुर्वेदी
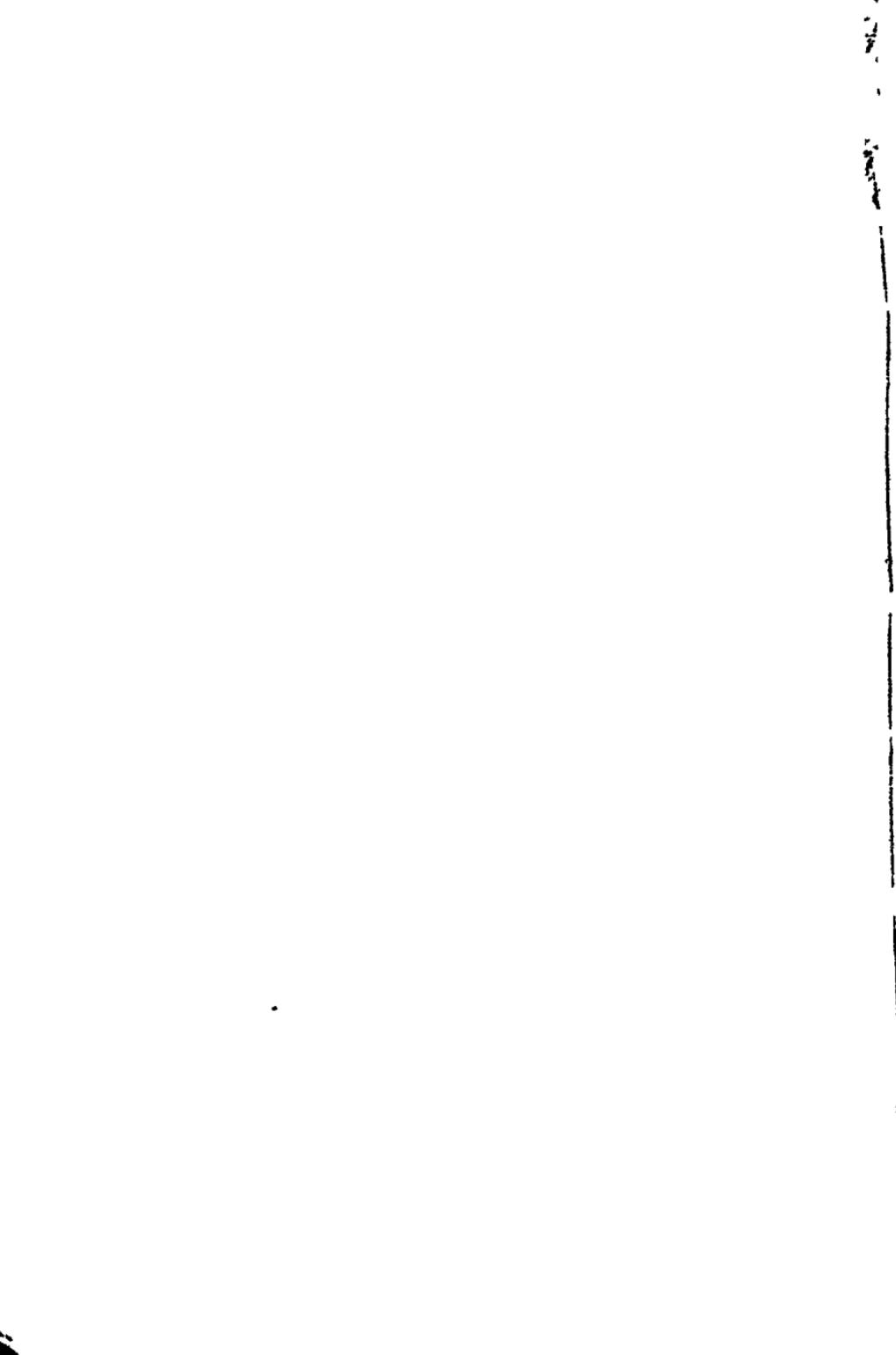
रेखाचित्रके लेखकका

रेखाचित्र

[श्री० रतनलाल बंसल]

[आदरणीय चतुर्वेदीजीकी— १ हमारे आराध्य २ संस्मरण ३ रेखाचित्र—तीन पुस्तकोंके प्रूफ पढ़ते-पढ़ते मनमें यह जिज्ञासा प्रबल होती गई कि जो व्यक्ति दूसरोंके गुण-गान गाते नहीं थकता, जो ख्याति-प्राप्त नररत्नोंके साथ-साथ गुदड़ीके लालोंको भी प्रकाशमें लाये जा रहा है। जिनके शब्द-शब्दसे श्रद्धा-विनय, दया-ममता, विश्वबन्धुता-सहृदयता टपकी पड़ती है; वह स्वयं कितना महान होगा? क्योंकि जिसने अपने अन्तरमें तप-त्यागद्वारा दीप नहीं सँजोया है, उसको यह भव्य और दिव्य-दृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती। मेरी तरह अन्य पाठक भी उनके परिचयके लिए उत्सुक एवं अधीर हो उठेंगे, अत: उनके सम्बन्धमें कुछ न दिया गया तो एक न भूलने योग्य भूल होगी। खेद है कि मुझे अभीतक उनके दर्शनोंका भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, अत. स्वयं लिखनेमें असमर्थ था और स्वयं चतुर्वेदीजीसे उनका परिचय पूछना बालूरेतमेंसे तेल निकालने जैसा होता। पुस्तक बाइंडिंगकी प्रतीक्षामें रुकी हुई है, ऐसी स्थितिमें किसीसे लिखाना भी सम्भव नहीं था। सौभाग्यसे उन्हींके गाँवके श्री० रतनलालजी बंसलद्वारा लिखित एक संक्षिप्त रेखाचित्र 'ज्ञानोदय'की फाइलमें मिल गया है। यद्यपि उसमें न तो उनका जीवन-परिचय ही है और न उनकी साहित्यिक-साधना एवं मानवताका ही विशेष उल्लेख है क्योंकि वह इस दृष्टिसे लिखा भी नहीं गया था। फिर भी किसी अंशमें पाठकोंकी जिज्ञासाके लिए पर्याप्त है।]

—गोयलीय

चतुर्वेदीजीका मकान मेरे मकानसे २ मिनटके रास्तेपर है। इससे पूर्व, जब मेरी आयु ३-४ वर्षकी थी, हम लोग उनके ठीक पड़ौसमे भी रहे है। फिर भी श्री चतुर्वेदीजीके नाम तकका परिचय मुझे पहले-पहल 'विशाल भारत'के अंकोंसे मिला, क्योंकि मेरे होश सम्हालनेसे पूर्व ही चतुर्वेदीजी फीरोज़ाबाद छोड़ चुके थे और अपने परिवारसे मिलनेके लिए कभी-कभी २-४ दिनके लिए ही फ़ीरोज़ाबाद आते थे।

श्री चतुर्वेदीके प्रथम दर्शन मुझे अपने नगरके श्री भारती-भवन पुस्तकालयमें हुए थे। वे उस समय आजकी ही भांति खादीका एक मटमैला कुर्ता और अपनी पेटेण्ट किस्मकी लप्टम-पप्टम धोती पहिने हुए थे। वे सम्भवत टहलकर सीधे पुस्तकालय आ गये थे, इसलिए उनके हाथमें ग्रामीणों-जैसी एक लम्बी लाठी थी। वे नगरके कुछ मित्रोंसे हँस-हँसकर बाते कर रहे थे।

उस समयतक प्रसिद्ध व्यक्तियोंमें मैंने कुछ काग्रेसी नेताओंको देखा था, जो खादीके झकाझक कपड़े पहिनते थे और यदि कही आते-जाते थे, तो २-४ आदमी हमेशा उनके साथ रहते थे। यह लोग इतने गम्भीर रहते थे कि उनका हँसना तो दूर, कोई दूसरा व्यक्ति भी उनके सामने नही हँस सकता था। मैंने अपनी बाल-बुद्धिके अनुसार चतुर्वेदीजीके रूपकी भी यही कल्पना की थी। पर इस समय उनके मटमैले कपड़ो और मुक्त हास्यसे मुझे थोड़ी तसल्ली-सी हुई और मुझे लगा कि इनसे सम्पर्क स्थापित करना कुछ अधिक कठिन नही है।

इसके पश्चात् चतुर्वेदीजीसे किसने मेरा परिचय कराया, यह तो मुझे स्मरण नही रहा, किन्तु मुझे इतना स्मरण है कि पुस्तकालयसे सब्ज़ी-मंडीतक उनके साथ-साथ ही गया, क्योंकि चतुर्वेदीजीको साग खरीदना था। मैं उस समय भी उनकी ख्यातिसे आतकित होकर सहम-सहमकर बात कर रहा था। शायद चतुर्वेदीजी भी यह अनुभव कर रहे थे, अत. सामनेसे आती हुई ऊँटोकी एक लम्बी कतारको देखकर मैं जब उनसे

पूछ बैठा कि क्या कलकत्तेमें भी ऊँटोंकी ऐसी लम्बी-लम्बी कतारें दिखाई देती हैं तो चतुर्वेदीजी एक हलकी मुस्कराहटके साथ बोले, "कलकत्तेमें अपने सिवा और कोई ऊँट तो हमें नज़र आता नहीं।" इसपर जब मैं हँसने लगा, तो चतुर्वेदीजीने अपने स्वरको किञ्चित् गम्भीर बनाकर कहा, "क्यों साहब! हम तो समझते थे कि आप हमारी बातका विरोध करेंगे। कहेंगे, कि नहीं-नहीं चौबेजी आप लम्बे तो हैं, फिर भी ऊँटके साथ आपकी तुलना नहीं की जा सकती, किन्तु आपकी हँसी बताती है कि आप भी इस बातसे सहमत हैं।' चतुर्वेदीजीने इसी प्रकारकी २-४ बातें और कहीं। परिणाम यह हुआ कि मेरा समस्त सकोच दूर हो गया और मैं कुछ ऐसा अनुभव करने लगा, मानो मेरा उनसे वर्षोंका परिचय है और मुझे उनसे सब कुछ निःसकोच कहने-सुननेका अधिकार प्राप्त है।

उस दिनके पश्चात्से मैंने चतुर्वेदीजीको इसी मन्त्रके द्वारा अनेक आगन्तुकोंका सकोच दूर करते देखा है, यद्यपि कभी-कभी इसका विपरीत परिणाम भी निकला है। एक सज्जन जो काफी दूरसे बड़ी श्रद्धाके साथ चतुर्वेदीजीसे मिलने आये थे चौबेजीके हँसने-हँसानेसे इतने रुष्ट हुए कि उन्होंने सैकड़ों आदमियोंसे इस बातकी शिकायत की। उनका कहना था कि चौबेजी जिनका इतना नाम है, बहुत ही हलके आदमी हैं, चूँकि वे इतना हँसते-हँसाते हैं, इसलिए अवश्य ही उनका चरित्र भी भ्रष्ट है।

ऐसी घटनायें सुनकर ही कभी-कभी मुझे यह ख़याल होता है कि हमारी सरकारको तो सहृदयोंको सबसे बड़ा राजद्रोही घोषित कर देना चाहिए।

चतुर्वेदीजीके स्वभावकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे न किसीके आधीन रह सकते हैं और न किसीको अपने आधीन रख सकते हैं। 'तन मन, धन गुसाँईजीके अर्पण' सिद्धान्तके वे प्रबल विरोधी हैं। जिन दिनों वे 'विशाल भारत'के सम्पादक थे, उन दिनों अनेक विषयोंपर उनसे स्व० रामानन्द बाबूका, जो 'विशाल भारत'के मालिक थे, मतभेद हो जाता

करता था और चतुर्वेदीजी धड़ल्लेसे अपनी सम्पादकीय टिप्पणियोंमे रामानन्द बाबूके विचारोंकी आलोचना किया करते थे। इसीप्रकार टीकमगढ़में तो मैने स्वयं देखा था कि एक ओर चतुर्वेदीजी राज्याश्रयमे रहते थे और दूसरी ओर चतुर्वेदीजीकी ही कोठीपर राज्य-सरकारकी नजरोंमें निहायत खतरनाक कार्यकर्ता धडल्लेसे चायकी दावतें उडाया करते थे। राज्यके मन्त्रियो आदिने कभी-कभी इस सम्बन्धमे चतुर्वेदीजीसे कहा भी, किन्तु चतुर्वेदीजीने कभी उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया। इसमे भी विशेषता यह थी कि जिन कार्यकर्ताओंके लिए चतुर्वेदीजी राज्याधिकारियोंका विरोध सहते थे, उनसे चतुर्वेदीजीका मतैक्य नहीं था।

और यह बात तो चतुर्वेदीजीके सुपरिचितोमे कहावतकी भांति प्रसिद्ध है कि, यदि किसी व्यक्तिकी रेड मारनी है, तो उसे कुछ दिनोंके लिए चौबेजीके आधीन काम करनेको रख दीजिए। बस, कुछ ही दिनोंमे वह उन सभी गुण या अवगुणोंसे रिक्त हो जावेगा, जिनको नौकरी निभानेके लिए योग्यताकी अपेक्षा अधिक आवश्यकता पड़ती है। चतुर्वेदीजीके पास जो लोग कुछ दिन काम कर लेते है, वे फिर किसी दूसरी नौकरीमे बड़ी कठिनाईसे ही निभ पाते है।

चतुर्वेदीजी स्वतन्त्रता देनेके इस सिद्धान्तका अपने घरेलू जीवनमें भी पूर्णत. प्रयोग करते है। आप कभी उन्हें अपने पुत्रो और भाजोंके, जो उनके पास ही रहते हैं, बीच देखिये। उन्होने आजतक शायद ही कभी इनमेंसे किसीको भी पढ़ने, लिखने, परीक्षा देने, या कोई और काम करने न करनेके सम्बन्धमे 'उपदेश' दिया हो। उनको यदि शिकायत रही है तो यह कि थोथी डिग्रियोंके मोहमे यह लोग पढाईकी अधिक और स्वास्थ्यकी चिन्ता कम करते है। अपने एक लड़केको एकबार उन्होंने लिखा था, "यदि इस बार भी तुम फर्स्ट आये, तो तुम्हारी पढाई बन्द करानी पड़ेगी।" किसीके फर्स्ट आनेकी अपेक्षा, वह नित्यप्रति बैडमिन्टन खेलना है या नहीं, यह उनके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण बात है। चतुर्वेदीजी

बच्चोंको सिनेमा जाते देख, बजाय कुढ़नेके प्रसन्न होते है, यद्यपि हिन्दी-फिल्मोंके नीचे धरातलसे उन्हें काफी शिकायत है। चतुर्वेदीजी जब अपने घरपर होते है, तब उनके पुत्रों आदिको अपने मित्रोंकी आवश्यकता अनुभव नही होती।

चतुर्वेदीजी स्फूर्ति, शक्ति और उत्साहके पुजारी है। वे सदैव अपनेको युवा अनुभव करना चाहते है और शायद इसीलिए, जो लोग आयुमें उनसे काफी छोटे है, उनसे भी बिलकुल मित्रों-जैसा समान व्यवहार करते है। 'पितृ तुल्य,' 'गुरुवत्', 'वयोवृद्ध', 'पूजनीय' आदि शब्दोंसे वे शरमा जाते है और अपने लिए इनको निन्दात्मक मानते है। वे कभी किसीके सरदार बननेका प्रयास नही करते।

किसी भी प्रकारकी संकीर्णताके, चाहे वह साम्प्रदायिक हो या राष्ट्रिय, अथवा राजनैतिक सिद्धान्तोंकी हो, चतुर्वेदीजी प्रबल विरोधी है। कोई भी विचार, आदर्श या सिद्धान्त उनके निकट इसलिए 'प्रिय' या 'अप्रिय' नही हो सकता कि उसकी जन्मभूमि भारत है या कोई अन्य देश है। वे खुले रूपमें यह स्वीकार करते है कि उनकी प्रेरणाके मुख्य आधार एमर्सन, थोरो इत्यादिके ग्रन्थ रहे है। एक बार उनकी यह बात सुनकर राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघके एक उत्साही कार्यकर्त्ता तो इतने उत्तेजित हो गये कि चतुर्वेदीजीके पुत्र श्री बुद्धिप्रकाशजीको जो शायद किसीसे एक कड़ी बात भी नही कह सकते, उन्हें कोठीसे बाहर कर देना पड़ा। इस सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करते समय चतुर्वेदीजीको देश, काल पात्रका भी खयाल नही रहता।

साहित्यके मूक साधकों और ख्याति-विज्ञापनसे दूर रहकर चुपचाप जन-सेवा करनेवाले तपस्वी कार्यकर्ताओंके सम्बन्धमें लिखना चतुर्वेदीजीका सबसे प्रिय विषय है। वे प्राय कहा करते है कि प्रसिद्धतम व्यक्तियोंपर ही लिखते रहना 'चौबोंको मिठाई खिलानेके समान' है। इसी भावनासे प्रेरित होकर उन्होंने बीसियों ऐसे व्यक्तियोंके संस्मरण लिखे हैं जिनकी

साधना, तपस्याका स्तर चाहे जितना ऊँचा रहा हो, किन्तु ख्यातिमें आनेके लटकोंसे अपरिचित या उदासीन रहनेके कारण शायद ही कभी उनपर किसीकी नज़र पड़ती।

चतुर्वेदीजीकी एक अन्य विशेषता दुखी व्यक्तियोंके हृदयतक पहुँचनेकी उनकी शक्ति है। यह बिलकुल ही असम्भव बात है कि उनके घर जिस ग्वालेके यहाँसे दूध आता है, उसके परिवारमें कोई बीमार हो और चतुर्वेदीजीको उसकी सूचना न मिले। पीड़ितों, अभावग्रस्तों, सर्वहाराओं तथा दुखियोंसे मिलने और बातचीत करते समय चतुर्वेदीजीमें कृपालुताकी भावना नहीं होती, बल्कि एक निष्कपट आत्मीयता होती है।

कुछ गुण तो चतुर्वेदीजीमें ऐसे हैं, जो मात्राकी अधिकताके कारण कुछ परम व्यावहारिक व्यक्तियोंको अवगुण दिखाई दे सकते हैं। उदाहरणार्थ—चतुर्वेदीजी समयकी पाबन्दीको अधिक महत्त्व नहीं देते। वे कहा करते हैं कि 'हमारे पास अनन्त समय है और हड़बड़ीमें कोई कार्य नहीं करना चाहिए।' उनके इस आदर्शका परिणाम यह हुआ कि उनके सम्पादनमें निकलनेवाला 'मधुकर' ८-८ महीने पिछड़ा रहा। 'विशाल भारत'के सम्पादक और चतुर्वेदीजीके अनन्य मित्र श्रद्धेय पं० श्रीरामजी शर्मा तो कहा करते हैं कि चतुर्वेदीजी यदि गार्ड होते, तो एक भी ट्रेन ठीक समयपर न चलती और न जाने कितने मुसाफिर ट्रेन दुर्घटनाओंके शिकार होते। पर चतुर्वेदीजी रेलवेकी गार्डशिप और पत्रकी सम्पादकीको एक माननेके लिए तैयार नहीं हैं, अतः उनका विचार अब भी ज्यों-का-त्यों है। जब कभी हम फ़ीरोज़ाबाद-निवासियोंको यह सूचना मिलती है कि चतुर्वेदीजीने शीघ्र ही फीरोज़ाबाद आनेको लिखा है, या अमुक तारीख़को वे फीरोज़ाबादके लिए चल देंगे, तो हम विश्वास कर लेते हैं कि अगले वर्षकी इस तारीख़ तक तो चतुर्वेदीजी आ ही जायँगे, यद्यपि कभी-कभी इसपर भी हमें निराश होना पड़ा है। हाँ, चाय पीने और एनिमा लेनेके सम्बन्धमें वे समयकी पाबन्दी आदर्श रूपसे करते हैं।

चतुर्वेदीजीके स्वभावकी कुछ बातें तो बड़ी ही मजेदार हैं। उनके पास चाहे कपड़ोंके २० सैट हों, पर शायद ही उनके पास कभी दो जोड़ी उजले कपड़े मिल सकें। कहीं यात्राके समय यदि उन्हें किसी चीज़के खो जानेका सन्देह हो जाय, तो वे उसे इतनी घबड़ाहटसे खोजते हैं कि २-४ दूसरी चीज़ें खो जाती हैं। इसी प्रकार यदि कभी उनके घरमें कोई बीमार पड़ जाता है, तो उनकी परिचर्या करनी तो दूर, चतुर्वेदीजीकी परिचर्याके लिए एक और आदमीकी आवश्यकता पड़ जाती है।

चतुर्वेदीजीके पत्र, कोई भी उनसे परिचित व्यक्ति दूरसे ही पहिचान सकता है। वही मोतियों-जैसे सुन्दर अक्षर, और लाल-नीली स्याहीका रंग-बिरंगापन उनके पत्रोंकी बाह्य रूपकी विशेषता है। शोक और खेदके अवसरोंको छोड़कर वे शायद ही कोई ऐसा पत्र लिखते हों जिसमें एक-दो चटपटी पंक्तियाँ न हों। साथ ही उनके पत्रमें एक-दो योजनाएँ भी अवश्य होंगी।

बातचीतके किसी भी रसियाके लिए चतुर्वेदीजीसे बातचीत करनेका एक भी अवसर छोड़ना उनके संयमकी कठिन परीक्षा होगी। वे प्रायः अपनी ही कहते जाते हैं, फिर भी गांधीजी, गुरुदेव, एण्ड्रूज, श्रीनिवास शास्त्री-जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियोंके संस्मरण, अनेक ग्रन्थोंके उद्धरण और फिर बीच-बीचमें चतुर्वेदीजीके विनोद श्रोतापक्षको ऊबने नहीं देते। इस बात-में भी नाममात्रकी सच्चाई अवश्य है कि कभी-कभी चायपानके पश्चात् चतुर्वेदीजीका प्रवचन इतना लम्बा हो जाता है, कि उनके निकट बैठे हुए व्यक्तिकी स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है।

चतुर्वेदीजीकी विनोदवृत्ति उनकी सहिष्णुता और सजीवताका रहस्य है। 'प्रसन्न रहो और प्रसन्न रक्खो'का आदर्शवाक्य जैसे चौबीसों घंटे उनकी आँखोंके सामने रहता है। उनके परिहासमें यह निर्दोषता रहती है कि प्रायः अपने परिहासका लक्ष्य वे स्वयं अपनेको बनाते हैं। मसलन् एक रात्रिको १०-११ बजेके लगभग चतुर्वेदीजीको मैंने उनकी

घरकी ओर जाते देखा तो मैंने सहज भावसे पूछा, "क्यों दादाजी ! इतनी रातको आप कहाँसे आ रहे हैं ?"

उत्तर मिला, "हमें ऐसी बातें पसन्द नहीं। किसी विधुर आदमीसे यह पूछना कि रात्रिके समय वह कहाँसे आ रहा है, भला कोई शिष्टताकी बात है ?" यह बात सुनकर भला किसे हँसी नहीं आयगी।

चतुर्वेदीजी यूँ ही हँसते-बोलते अपने चारों ओर एक सजीव वातावरण बनाये रहते हैं। किसीके प्रति द्वेष-भावना रखकर द्वेषाग्निमें सुलगते रहना वे सबसे बड़ी मूर्खता मानते हैं और यदि किसीसे उनका झगड़ा हो भी जाता है, तो क्षमा-याचनाका एक कार्ड लिखकर उसकी ओरसे उदासीनता ग्रहण कर लेते हैं। वे कभी किसी दूसरेके जज नहीं बनते और किसी मनुष्यकी हजार भूलें और लाख अपराध भी चतुर्वेदीजीकी सहानुभूति से उसे वंचित नहीं कर सकते।

चतुर्वेदीजीका दम सैकड़ों-हजारों व्यक्तियोंके लिए एक बड़ी न्यामत है, इसमें सन्देह नहीं।

आचार्य द्विवेदीजी

सन् १८५७

होशियारपुर—भारतीय स्वाधीनता संग्रामका प्रारम्भ हो चुका है और उस भयंकर विद्रोहाग्निकी एक चिनगारी यहाँ तक आ पहुँची है। देखते-देखते उसने होशियारपुर-स्थित हिन्दुस्तानी पल्टनको प्रज्वलित कर दिया, पर ईस्ट इण्डिया कम्पनीके गोरे सिपाही बहुत सावधान निकले। उन्होंने निर्दयतापूर्वक उक्त पल्टनके अधिकांश सैनिकोंको जहाँ-का-तहाँ भून डाला। उस हृदयवेधक दुर्घटनामें कितने भारतीय जवान मारे गये, इसका ठीक-ठीक पता नहीं, पर कुछ व्यक्ति भाग भी निकले।

देखिये वह एक सिपाही सतलजमें कूद रहा है। गोलीका भोजन बननेकी अपेक्षा उसने सतलज माताकी वेगवती धारामें जल-समाधि लेना ही उचित समझा। पर "जाको राखे साइयाँ, मारि न सकिहै कोय।" वह सिपाही, जिसे फौजमें सब संगी-साथी 'लछिमनजी' के नामसे पुकारते थे, एक या दो दिन बाद बेहोशीकी हालतमें सैकड़ों कोस दूर आगे जाकर किनारे लगा। लछिमनजी होश आनेपर सँभले और हरी-हरी मोटी घासके तिनके चुन-चुनकर कुछ शक्ति सम्पादन की और माँगते-खाते साधु-वेशमें कई महीने बाद वे अपने गाम दौलतपुरमें पहुँचे।

सन् १८६४

आज पंडित रामसहाय द्विवेदी (लछिमनजी) के घरमें पुत्र-जन्मोत्सव मनाया जा रहा है। लड़केका नाम रक्खा गया है महावीरसहाय। सतलज माताके हम हृदयसे कृतज्ञ और ऋणी हैं कि उन्होंने उस संकटावसर-पर लछिमनजीको बीसियों घंटे धारण कर अपने तटपर ज्यों-का-त्यों सजीव रख दिया और घासके तिनकोंने अपना जीवन [illegible]

उस विद्रोही सैनिकके स्वाभिमानी सुपुत्रने मातृभाषा हिन्दीके भण्डारकी जो वृद्धि की, उससे हिन्दी-जगत् पूर्णतया परिचित है। यदि लछिमनजी उस दिन तोपसे भुन गये होते, अथवा सतलजमें जलमग्न, तो 'द्विवेदी युग'-के बजाय कोई अन्य युग ही आरम्भ हुआ होता !

संघर्षमय जीवन

यदि एक शब्दमें द्विवेदीजीके जीवन-चरितका वर्णन किया जाय तो वह है 'संघर्ष'। द्विवेदीजीसे अधिक प्रतिभाशाली लेखक हिन्दी साहित्य संसारमे शायद कई हुए है और भविष्यमें भी होंगे, पर उनकी कोटिका संघर्षशील व्यक्तित्व दुर्लभ ही है।

अब द्विवेदीजीके ही कुछ शब्द सुन लीजिये—

"मैं एक ऐसे देहातीका एकमात्र आत्मज हूँ, जिसका मासिक वेतन सिर्फ १० रुपया था। अपने गाँवके देहाती मदरसेमे थोड़ी-सी उर्दू और घरपर थोड़ी-सी संस्कृत पढ़कर १३ वर्षकी उम्रमें मैं ३६ मील दूर राय-बरेलीके ज़िला स्कूलमें अंग्रेज़ी पढ़ने गया। आटा, दाल घरसे पीठपर लादकर ले जाता था। दो आने महीने फीस देता था। दाल हीमें आटेके पेड़े या टिकियाएँ पका करके पेट-पूजा करता था। रोटी बनाना तब मुझे आता ही न था। संस्कृत-भाषा उस समय उस स्कूलमें वैसी ही अछूत समझी गई थी, जैसे कि मद्रासके नम्बूदरी ब्राह्मणोंमें वहाँकी शूद्र जाति समझी जाती है। विवश होकर अंग्रेज़ीके साथ फ़ारसी पढ़ता था। एक वर्ष किसी तरह वहाँ काटा। फिर पुरवा, फतेहपुर और उन्नावके स्कूलोंमें चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दुरवस्थाके कारण मैं उससे आगे न बढ़ सका। मेरी स्कूली शिक्षा वहीं समाप्त हो गई।

एक साल अजमेरमें १५ रुपया महीनेपर नौकरी करके पिताके पास बम्बई पहुँचा और तारका काम सीखकर जी० आई० पी० रेलवेमें २० रुपये महीनेपर तारबाबू बना।"

युगान्तरकारी निर्णय

लार्ड कर्ज़नके दिल्ली दरबारका ज़माना था। झाँसीमें द्विवेदीजी काम करते थे। डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिंटेण्डेण्ट साहब अपनी रातें मौजके साथ या तो क्लबमें अथवा अपने बँगलेपर बिताते थे। द्विवेदीजी दिनभर तो दफ्तरका काम करते और रातभर अपनी कुटियामें पड़े हुए उनके नाम आये हुए तार लेते और उनके जवाब देते थे। ये तार उन स्पेशल रेल-गाड़ियोंके विषयमें होते थे, जो दक्षिणसे देहलीकी ओर दौड़ा करती थीं। महीनों तक द्विवेदीजीको यह अत्याचार सहना पड़ा।

पूज्य द्विवेदीजीने लिखा था—

"मैं यदि किसीके अत्याचारको सह लूँ, तो इससे मेरी सहनशीलता तो अवश्य सूचित होती है, पर इससे मुझे औरोंपर अत्याचार करनेका अधिकार नहीं हो जाता है परन्तु कुछ समयोत्तर बानक कुछ ऐसा बना कि मेरे प्रभुने मेरे द्वारा औरोंपर भी अत्याचार कराना चाहा। हुक्म हुआ कि इतने कर्मचारियोंको लेकर रोज़ सुबह ८ बजे दफ्तरमें आया करो और ठीक दस बजे मेरे कागज़ मेरे मेज़पर मुझे रक्खे मिलें। मैंने कहा मैं आऊँगा पर औरोंको आनेके लिए लाचार न करूँगा, उन्हें हुक्म देना हुज़ूरका काम है। बस बात बढ़ी और बिना किसी सोच-विचारके मैंने इस्तीफा दे दिया। बादको उसे वापस लेनेके लिए इशारे ही नहीं, सिफारिशें तक की गईं। पर सब व्यर्थ हुआ। क्या इस्तीफा वापस लेना चाहिए? यह पूछनेपर मेरी पत्नीने विषण्ण होकर कहा 'क्या थूककर भी उसे कोई चाटता है'? मैं बोला "नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा, तुम धन्य हो।' तब इसने ८ आना रोज़ तककी आमदनीमें भी मुझे खिलाने-पिलाने और गृह-कार्य चलानेका दृढ़ संकल्प किया। सरस्वतीकी सेवासे मुझे हर महीने जो २० रुपया उजरत और तीन रुपया डाक खर्चकी आमदनी होती थी, उसीमें सन्तुष्ट रहनेका निश्चय

किया। मैंने सोचा किसी समय तो मुझे महीनेमें १५ रुपये ही मिलते थे, २३ रुपये तो उनके ड्योढ़ेसे भी अधिक है। इतनी आमदनी मुझ देहातीके लिए कम नहीं।"

द्विवेदीजीको उस समय २०० रुपये महीने मिलते थे—वेतन १५० और भत्ता पचास रुपये। जिस दिन दोसौकी नौकरीको लात मारकर २३ रुपयेकी नौकरी स्वीकार करनेका निश्चय द्विवेदीजीने किया, वह वास्तवमें हिन्दी-साहित्यके लिए एक युगान्तरकारी दिन था, और इस निर्णयके लिए वस्तुत: हम उनकी धर्मपत्नीके ऋणी और कृतज्ञ हैं, जिनकी अनुपम दृढ़ताके कारण ही द्विवेदीजी यह सत्साहस कर सके।

अद्भुत परिश्रमशीलता

ऐसे-ऐसे महानुभाव हिन्दी-जगत्‌में विद्यमान हैं, जो यह कहते थे कि द्विवेदीजी प्रतिभाशाली नहीं थे! अँग्रेजीमें एक कहावत है कि प्रतिभाके माने होते हैं नब्बे फीसदी परिश्रमशीलता और दस फीसदी स्वाभाविक स्फूर्ति, और कोई-कोई तो असाधारण रूपसे परिश्रम करनेकी शक्ति को ही 'प्रतिभा' कहते हैं। दोनो ही अर्थोंमें द्विवेदीजी प्रतिभाशाली थे। यदि किसीको यह माननेमें इन्कार हो तो फिर हम यहाँ तक कह सकते हैं कि द्विवेदीजी प्रतिभाशालियोंके पिता और पितामह थे! यदि हिन्दी-जगत्‌में कोई भी प्रतिभाशाली लेखक या कवि आज विद्यमान है तो वह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष-रूपसे द्विवेदीजीका ऋणी है। यही नहीं, आगे आनेवाली पीढ़ी भी उनके ऋणसे मुक्त नहीं मानी जा सकती।

द्विवेदीजी सरस्वतीके छै महीने आगे तकके अंको तक का मसाला अपने पास इकट्ठा रखते थे, ताकि पत्रिका वक्तपर निकल सके। परिश्रम-शीलतामें पत्रकार-जगत्‌में केवल एक ही व्यक्ति उनका मुकाबला कर सकते थे यानी स्वर्गीय रामानन्द चट्टोपाध्याय। निस्सन्देह दोनो ही घोर परिश्रमी थे।

द्विवेदीजीका व्यवस्था-प्रेम

तीन बार हमें द्विवेदीजीके निवासस्थान दौलतपुरकी तीर्थ-यात्रा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था और जो समय द्विवेदीजीकी सेवामें बीता उसे हम अपने क्षुद्र जीवनकी सर्वोत्तम घड़ियोंमें शुमार करते हैं। श्री यज्ञदत्तजी शुक्लने द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थमें द्विवेदीजीकी नियम-बद्धता पर अच्छा प्रकाश डाला था। उन्होंने लिखा था—

"उनको (द्विवेदीजीको) केवल आम खानेका ही शौक नहीं है, बल्कि लगानेका भी है। उनके लगाये हुए कलमी पचास-साठ पेड़ हैं। आमके पौधोंके सिंचन, सेवन और उनकी वृद्धि व रक्षापर वे विशेष ध्यान रखते हैं। प्रतिदिन सायंकाल वे जब अपने बागोंमें घूमने जाते हैं तब उनका भली-भाँति निरीक्षण करते हैं। यही नहीं वे निरीक्षणद्वारा इसका भी अनुमान कर लेते हैं कि किस वृक्षमें कितने फल लगे हुए हैं। इसी प्रकार वे अपने खेतोंका भी खूब निरीक्षण करते हैं। खेतोंमें टहलते हुए वे प्रत्येक खेतमें यह देखते हैं कि उसे सींचनेकी आवश्यकता है या नहीं, या उसमें कोई कीड़ा तो नहीं लग गया है। प्रति दिन खेतोंमें जाकर वे यह देखते हैं कि मजदूर भली-भाँति काम कर रहे हैं या नहीं।"

द्विवेदीजीकी मितव्ययिता तो आदर्श थी। एक बार उन्होंने मुझे खासी डाट बतलाई। जब द्विवेदीजीको मेरी फिजूलखर्चीका पता लगा तो उन्होंने कहा—"मैं तो अपने तेईस रुपये मासिक वेतनमेंसे चार रुपये प्रति मास बचा लेता था और जनाब आप पौने दो सौ रुपयेमें भी एक पैसा नहीं बचा पाते! आखिर हमें बतलाइये तो आप किस चीजपर ये पैसे उड़ा देते हैं।" बड़ी लज्जापूर्वक हमें अपनी फिजूलखर्ची स्वीकार करनी पड़ी। हमारे इस प्रमादसे द्विवेदीजी बहुत असन्तुष्ट थे। इस विषयमें द्विवेदीजीका मूल मन्त्र था यह श्लोक—

"इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता ।
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः ॥"

अर्थात्—'आमदनीसे ज्यादः खर्च न करनेमे ही पण्डिताई, चतुराई और धर्मात्मापन है' ।

द्विवेदीजीकी उदारता

द्विवेदीजी हिसाब-किताब रखनेमें इतने नियमबद्ध थे कि कोई भी व्यक्ति उनसे पूछ सकता था कि पिछले बीस वर्षमे किस दिन उन्होंने कितना पैसा पोस्टेज अथवा साग-तरकारी इत्यादि पर व्यय किया ! दैनिक व्ययका वे पैसे-पैसेका हिसाब रखते थे । पर यदि इससे कोई यह अनुमान लगावे कि द्विवेदीजी कजूस थे, तो यह उसकी महान् भूल होगी । द्विवेदीजी अत्यन्त उदार थे । उन्होंने अपने कठिन परिश्रमकी अधिकाश कमाई हिन्दू-विश्व-विद्यालयको छात्र-वृत्तियोके लिए अर्पित कर दी थी ।

अपने एक प्राइवेट पत्रमें (जो द्विवेदीजीने मुझे २२।१०।२८ को भेजा था) उन्होंने लिखा था—

"१७ वर्षकी उम्रमें मैंने रेलवेमें मुलाज़िमत शुरू की सिर्फ १५ रुपया मासिक पर । २१ वर्ष बाद जब छोडी तब सिर्फ १५० रुपया और परसनल एलाउएस ५० रुपया, कुल २०० रुपये मिलते थे । १८ वर्षतक 'सरस्वतीका' काम किया । छोड़नेके वक्त सिर्फ १५० रुपये मिलते थे । तबसे सिर्फ ५० रुपया मासिक पेंशन । कभी एक पैसा भी किसीसे हरामका नहीं लिया । मेरी रहन-सहन घर-द्वार सब आपका देखा हुआ है । कानपुरका कुटीर भी आप देख चुके हैं । इस तरह रह कर जो कुछ बचाया, वह सब प्रायः खैरात कर दिया । यथा—कई लडकोंको अपने खर्चसे पढा दिया । उनमेंसे कुछ एम० ए०, बी० ए० भी हैं । रिश्तेमें अपनी तीन भानजियोंकी शादियाँ और गौने किये । गैरोंकी भी दो लडकियाँ ब्याहीं । गाँवमें कई गरीब घरोंकी लड़कियोंकी शादियोंमें मदद

दी। कई विधवाओंका पालन किया। दो एक अब भी वृत्तियाँ पाती हैं। पिताकी इच्छाएँ पूर्ण की, गया-श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन, दान-पुण्य, मकान और कूप आदि निर्माणके रूपमे। गत वर्ष मेरे कुटुम्बकी अन्तिम स्त्री मरी, तब मैंने अन्त्येष्टि कर्म करनेके सिवा १,००० रुपये दीन-दुखियोंको बाँट दिया। कानपुरका पुस्तक संग्रह ना० प्र० सभाको पहले ही दे चुका था। एक गाडी पुस्तकें छै महीने हुए यहाँसे उसे और भेजी। दो गाड़ियाँ अभी और भेजनी हैं। १००० रुपया इस सभाको अभी-अभी जो दिये हैं, सो आप जानते ही हैं। अब भी लोकोक्तिकार*के अनुमितसे लाख-डेढ लाख या करोड-दो करोड़ जो बच रहे हैं, वे प्राय सबके सब हिन्दू-विश्व-विद्यालयको देनेवाला हूँ। पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ।"

यहाँपर यह लिख देना उचित होगा कि पूज्य द्विवेदीजीने ६,८०० रुपये हिन्दू विश्व-विद्यालयको छात्रवृत्तियोंके लिये दिये थे। द्विवेदीजीने अपने पत्रके अन्तमे लिखा था.—

"यह सब मैंने लिख तो दिया, पर डर है कि मेरे मरनेपर कहीं आप ये बातें छपवाने न दौड पड़ें। मै इसकी जरूरत नहीं समझता। लाख-दो-लाखका स्वप्न देखनेवालोंका स्वप्न मैं भंग नहीं करना चाहता।"

पूज्य द्विवेदीजीसे मैंने प्रार्थना की थी कि वे अपना जीवन-चरित्र स्वय ही लिख दें। उनका आत्मचरित हिन्दी-जगत्के लिए एक अद्भुत ग्रन्थ होता, पर जिन दिनों उनके पास मेरा यह आग्रहपूर्ण निवेदन पहुँचा

---

*एक बार लोकोक्ति-कोषके लेखक श्रीदामोदरदासजीने 'विशाल भारत' आफिसमें पधारकर हमसे यह कहा था कि द्विवेदीजीके पास तो कई लाख रुपये हैं! मैंने यह बात अपनी एक प्राइवेट चिट्ठीमें द्विवेदी-जीकी सेवामें निवेदन कर दी थी। इसीसे उद्विग्न होकर द्विवेदीजीको विस्तार पूर्वक ये बातें लिखनी पडीं।

था, उनका स्वास्थ्य बहुत खराब हो चुका था। द्विवेदीजीने अपने पत्रमें लिखा था—

"हिन्दी-लेखकोंकी दशा अच्छी नहीं। प्रकाशक उनसे भी बदतर है। रद्दी कहानियाँ ये लोग दौड़-दौड़ छापते हैं। मेरे फुटकर लेखोंकी कोई ३२ पुस्तकें हुईं। बाबू शिवप्रसादजी गुप्तने सबकी नकल करा दी। उनमेंसे कोई दस पुस्तकें पड़ी हुई हैं। कोई पूछता ही नहीं ! ऐसे लोगोंके लिए आत्मचरित लिखकर बेचनेकी इच्छा नहीं होती। हो भी तो लिखनेकी शक्ति नहीं।"

हमने इस लेखके प्रारम्भमें द्विवेदीजी तथा रामानन्द बाबूका नाम साथ-साथ लिया है। दोनों ही ऋषि-तुल्य थे, दोनों ही सम्पादकाचार्य और दोनोंका ही घनिष्ट सम्बन्ध स्वर्गीय चिन्तामणि घोषसे रहा था। यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'सरस्वती' के प्रकाशनका परामर्श रामानन्द बाबूने ही घोष बाबूको दिया था। महापुरुषोंकी तुलना करना अनुचित है। स्व० रामानन्द बाबूका ज्ञान काफी अधिक विस्तृत था, उन्हें अंग्रेज़ी पत्र 'माडर्न रिव्यू' द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कीर्ति मिली थी और उनकी साधना भी किसी हालतमें द्विवेदी जीसे कम नहीं थी। पर एक बात हमें कहनी पड़ेगी, वह यह कि द्विवेदीजीने महान् कठिनाइयोंके बीच अपने पथका निर्माण किया और हिन्दीके लिए द्विवेदीजीने जितना महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उतना महत्त्वपूर्ण कार्य शायद बड़े बाबू (स्व० रामानन्द चट्टोपाध्याय) ने बँगलाके लिए न किया होगा। द्विवेदीजी तो हिन्दीमें युग-प्रवर्तक माने जाते हैं।

स्वर्गीय बड़े बाबूकी विस्तृत जीवनी उनकी सुपुत्रीने लिख दी है। अपने कार्यको अग्रसर करनेके लिए वे श्री केदारनाथ चटर्जी तथा श्री अशोक चटर्जी और दो सुशिक्षित कन्याएँ तथा उनका विस्तृत कुटुम्ब छोड़ गये हैं। इस विषयमें द्विवेदीजी सौभाग्यशाली नहीं हुए। वे निस्सन्तान थे और हम लोग (वर्तमान हिन्दी लेखक और कवि) जो वस्तुत उनके

मानस-सन्तान हैं, उनके ऋणको चुकानेके लिए कुछ भी चिन्तित नहीं! हिन्दीमें उनके एक भी विस्तृत जीवनचरित न होना हमारे प्रमाद और शायद कृतघ्नताका भी सूचक है। इस बातमें सबसे जघन्य अपराध हम अपना ही मानते हैं, क्योंकि श्रद्धेय गणेशजीसे प्रेरणा प्रोत्साहन तथा पूर्ण सहायताके वचन मिलनेपर भी अपने प्रमादके कारण हम इस यत्नको न कर सके। हाँ, प० देवीदत्त शुक्लने 'आचार्य द्विवेदी' नामक एक ६४ पृष्ठकी पुस्तिका अवश्य लिख दी थी और वह इंडियन प्रेस, प्रयाग से मिल सकती है।

द्विवेदीजीका उत्कट हिन्दी-प्रेम

एक बार किसी सज्जनने द्विवेदीजीको अँग्रेजीमें पत्र भेज दिया। उसके उत्तरमें द्विवेदीजीने लिखा था—

"That two persons being closely related to each other, and being natives of the same province, and seeking the same mother tongue should correspond in a language of an island six thousand miles away is a spectacle for gods to see! Such an unnatural scene is possible only in a wretched country like India."

अर्थात्—"एक दूसरेके निकट सम्बन्धी और एक ही प्रान्तके निवासी तथा एक ही मातृभाषाके बोलनेवाले दो व्यक्ति छः हजार मील दूर स्थित द्वीपकी विदेशी भाषामें पत्र-व्यवहार करें यह दृश्य देवताओंके लिए दर्शनीय है! इस प्रकारका अस्वाभाविक नजारा हिन्दुस्तान-जैसे नालायक मुल्कमें ही देखा जा सकता है!

एक बार मैंने महाबोधि सोसाइटीसे मुद्रित 'महाबोधि' के एक विशेषाङ्ककी, जो स्वर्गीय धर्मपालजीकी स्मृतिमें निकाला गया था प्रति द्विवेदीजीको भेजते समय अँग्रेजीमें दो-शब्द "Complimentary

Copy" (भेंट स्वरूप) लिख दिये थे। उस पर द्विवेदीजीने ऐसी मधुर डाट लाई कि उसकी मुझे अभी तक याद है। उन्होने अँग्रेजीमे पत्र क्यो लिखा सुन लीजिये—

My dear Chaturvediji'

Many thanks for the "Complimentary Copy" of the Mahabodhi so kindly sent by you. Will you please convey to the General Secretary of the Mahabodhi Society my sincere thanks for forwarding me with a copy of this journal, issued in memory of the Rvd. Deva Mitta ?

Buddhism was born in this very country and we Hindus recognised its founder as the 9th incarnation of the Almighty God. But we had almost totally forgotten the great teacher and his ennobling teaching. It is entirely due to the lifelong efforts of the Great departed soul that we have now began to know something of the soul, elevating doctrines of Buddhism.

About 40 years ago, I had occasion to read an English version of Quran It gave me little consolation. I then ordered certain books on Buddhism (1) ललित विस्तर (2) बुद्ध चरित (3) सौन्दरनन्द (4) Light of Asia, and (5) Beal's Buddhist's Records. These books gave me a very good idea of Buddhism and its founder. Of all of them, the Sanskrit books (2) and (3) gave me indescribable pleasure.

Although they are not with me now, some portion thereof made so vivid an impression upon my mind that I can repeat them by heart even at this distance of time. When about to renounce the world, Goutam's mental struggle has been described in (2) as follows :—

त गौरव बुद्धगत चकर्ष भार्यानुराग पुनराचकर्ष ।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरन्तरङ्गेष्विव राजहंस ॥

according to Buddhism NIRVANA has been defined in the following verses in (3)

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनि गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिश न काचित् विदिश न काचित् स्नेहक्षयात्
केवलमेति शान्तिम् ॥
तथा कृती निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनि गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिश न काचिद् विदिश न काचिद् क्लेशक्षयात् केवलमेति
शान्तिम् ॥

These books are the work of ASHVA-GHOSH. This great poet and master teacher flourished even before KALIDAS He was a renowned preacher of Buddhism. He left behind him several valuable works on Buddhism. Some of them, though lost for ever in India, have been rendered in Chinese and Japanese and are found in those countries

If you will read—nay study—the above two Sanskrit books carefully, I am sure you will be as much benefited as I have been.

Your two words "Complimentary Copy" in English on the cover of the Mahabodhi journal have prompted me to scribble these lines in that foreign language of which I have so scanty knowledge and trust you will forgive me for doing so.

Thanking you and the Mahabodhi Society again for the present of the memorial issue of the journal

I remain
Yours sincerely
MAHAVIRPRASAD DVIVEDI

द्विवेदीजीकी मनुष्यता

हिन्दी-जगत्में अनेकों विद्वान् हुए हैं और होंगे। कवि तो द्विवेदीजीसे कहीं बढ़कर उस समय भी विद्यमान थे और अब भी हैं। हमारी मातृभाषाको राष्ट्रभाषा होनेका गौरव प्राप्त हो चुका है और अभी अनेक युग उसके भविष्यमें आनेवाले हैं, इसलिए द्विवेदीजीके समकक्ष युग-प्रवर्तक उत्पन्न करनेका सौभाग्य भी हिन्दी संसारको प्राप्त होगा और जहाँ तक पत्र-सम्पादनका प्रश्न है, उसकी उज्ज्वल सम्भावनाओंका एक उदाहरण द्विवेदीजीके ही एक शिष्य श्रद्धेय गणेशजीने उनके सामने ही उपस्थित कर दिया था। पर द्विवेदीजीकी तरहका कर्तव्यशील तथा संयमी मनुष्य जो अपनेपर काबू पानेके लिए इस प्रकार निरन्तर जागरूक रहे और जो अपने मार्गकी बाधाओंको असाधारण परिश्रम द्वारा दूर करनेमें इतना संलग्न हो, शताब्दीमें एकाध ही उत्पन्न हो सकता है।

निस्सन्देह द्विवेदीजी महापुरुष ही नहीं, महामानव भी थे।

जनवरी १९५०]

श्री देवमित्र धर्मपाल

"Let me die soon, let me be reborn I can no longer prolong my agony. I would like to be born again twenty-five times for the spread of Lord Buddha's Dharma."—धर्मपाल।

अभी उस दिन जब मैंने महाबोधि-सोसाइटीको फोन किया और वहाँके पुस्तकाध्यक्ष विमलानन्दजीसे पूछा—"श्री धर्मपालजीकी तबीयत कैसी है? क्या आप उनसे बातचीतके लिए समय निश्चित कर सकते हैं?" उत्तर मिला—"तबीयत पहलेसे तो कुछ अच्छी है लेकिन डाक्टरने उन्हें अधिक बातचीत करनेकी मनाही कर दी है। फिर भी आपके लिए वे आध घंटा देनेको तैयार हैं। कल आइये।"

निश्चित समयपर पहुँचा। विमलानन्दजीने कहा—"देखिये आध घंटेसे अधिक समय न लीजिए।"

मैंने कहा—"ठीक"

बातचीत प्रारम्भ हुई, और उसे समाप्त होते-होते डेढ़ घंटा लग गया। धर्मपालजी इस समय ६८ वर्षके हैं, दमेके द्वारा उनके फेफड़े खराब हो चुके हैं और शरीर जर्जरित हो चुका है। उनके लिए चलना-फिरना अत्यन्त कठिन है, और खाटपर पड़े रहना ही उनका एकमात्र काम रह गया है, पर उन्हें एक ही चिन्ता है—एक ही धुन है यह कि किस प्रकार भगवान् गौतमबुद्धकी जन्मभूमिमें बौद्धधर्मका प्रचार हो। शारीरिक कष्टोंसे वे अत्यन्त तंग आ गये हैं, फिर भी उनका उत्साह ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। बातचीतमें उन्होंने कहा—'छै-सात वर्ष तक रोगोंने मुझे इसी जगह पर नजरबन्द रक्खा। यही आफत नहीं [illegible]। [illegible] मैं

सीलोन गवर्मेण्टसे पूछता कि मेरा अपराध क्या है? तो वह जवाब देती, भारत-सरकारसे पूछो, और भारत-सरकारसे पूछता, तो वह कहती कि सीलोन-गवर्मेण्टसे पूछो! एक ही जगह रहनेके कारण मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया। पहले यात्राओंमें भी मुझे काफ़ी कष्ट सहन करने पड़े थे। खाने-पीनेका प्रबन्ध ठीक नहीं था, मेदा खराब हो चुका था। उसके ऊपर गवर्मेण्टकी यह कृपा हुई, इसने मेरी बची-खुची तन्दुरुस्ती खत्म कर दी। अब तो मैं मरना चाहता हूँ, और फिर जन्म धारण करूँगा। वर्तमान कष्टोंको बढाना नहीं चाहता। भगवान् बुद्ध धर्मके प्रचारार्थ मैं पचीस बार जन्म ग्रहण करूँगा।"

जिस समय धर्मपालजीने कहा—"बौद्धधर्मके प्रचारार्थ मैं पचीस बार जन्म ग्रहण करूँगा," मैंने उनके चेहरेकी ओर देखा। सिर मुड़ा हुआ है। मुखपर झुर्रियाँ पड़ी हुई है, जो वर्षोंकी बीमारीकी गवाही दे रही है, पर आँखोंमे वही पुरानी ज्योति झलक जाती है और मनमें वही पुराना उत्साह है, जो सन् १८९३ में था, जब कि आप शिकागोके सर्वधर्म सम्मेलन (Parliament of religions) में निमन्त्रित होकर अमेरिका गये थे। इस प्रसंगमें पाठकोंको यह बतला देना आवश्यक है कि स्वामी विवेकानन्दका वह महत्त्वपूर्ण भाषण, जिसके कारण देश-देशान्तरोमें उनकी इतनी ख्याति हुई, इसी सम्मेलनमें हुआ था। इस सम्मेलनके अधिकारियोंने भारतसे केवल दो व्यक्तियोंको निमन्त्रित किया था, एक तो सुप्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी प्रचारक श्री० पी० सी० मजूमदार और दूसरे श्री अनागारिक धर्मपाल। स्वामी विवेकानन्द अपने व्ययसे स्वयं ही गये थे। आज इस घटनाको ३९ वर्ष व्यतीत हो गये; इस बीचमे दुनिया कहाँकी कहाँ चली गई, पर धर्मपालजीने अपनी धुन नहीं छोडी।

धर्मपालजीके विचारोंसे भले ही कोई सहमत न हो,—हम भी अनेक अंशोंमें उनसे सहमत नहीं है,—उनकी प्रचार-पद्धतिमें चाहे किसीको कुछ त्रुटियाँ दीख पड़ें और उनकी धार्मिक कट्टरता आजकलके ज़मानेमें

भले ही किसीको अनुदारतापूर्ण तथा अनुपयुक्त जँचे, पर इन कमजोरियोंके होते हुए भी धर्मपालजीमें एक गुण है, वह है उनकी असाधारण लगन, और वह अत्यन्त चित्ताकर्षक है। हमारे यहाँ ऐसे आदमी बहुत कम पाये जाते हैं, जो अपने जीवनको खतरेमें डालकर गहरे पानीमें घुसते हैं और जो 'चाहे कुछ हो जाय हमें तो यह काम करना ही है', यह निश्चय करके आगे बढ़ते ही चले जाते हैं। धर्मपालजी उन अल्पसंख्यक आदमियोंमेंसे हैं, जो अपने लक्ष्यमें विश्वास रखते हैं जो अपने जीवनपर प्रयोग करते हैं और जो अपनी कल्पनाओंको मूर्तमान देखनेके लिए जी-जानसे प्रयत्न करते हैं। निस्सन्देह धर्मपालजी स्वप्न देखा करते हैं। आठ सौ वर्षसे नष्टप्राय बौद्धधर्मको भारतमें पुनर्जीवित करनेका प्रयत्न एक प्रकारसे स्वप्न देखना ही है, पर इसके साथ यह भी सच है कि संसारमें जो कुछ काम हुआ है, उसे स्वप्नदर्शी आदमियोंने ही किया है। 'Without vision a nation perishes'—'जिस जातिमें स्वप्नदर्शी नहीं, वह नष्ट हो जाती है।' धर्मपालजीने आजसे ४० वर्ष पहले सारनाथके खँडहरोंमें, जहाँ पहले सुअर चरा करते थे, एक स्वप्न देखा था। आज वह स्वप्न मूलगन्धकुटी-विहारके मनोहर रूपमें विद्यमान है। उनके स्वप्नने जगतमें मंगल कर दिया है। कौन कह सकता है कि भविष्यमें उनका भारतमें बौद्धधर्म-प्रचार सम्बन्धी स्वप्न भी सत्य न होगा? स्वप्नदर्शियोंके विषयमें भविष्यद्वाणी करना खतरनाक है, और खासकर ऐसे आदमीके विषयमें, जो अपने कार्यको समाप्त करनेके लिए पचीस बार जन्म धारण करनेका निश्चय कर चुका है! आइये, हम धर्मपालजीको जरा नजदीकसे देखें।

धर्मपालजीका जन्म १७ सितम्बर सन् १८६४ में सीलोनकी राजधानी कोलम्बोमें हुआ था। उनके पिता एक धनाढ्य जमींदार तथा व्यापारी थे, और वहाँके बौद्ध समाजमें उनका अच्छा सम्मान था। धर्मपालजीका वंश विद्या-प्रेमके लिए विख्यात था। सन् १८८० में उन्होंने

घरवालोंने 'पाली-विद्योदय-कालेज' की स्थापना की थी। धर्मपालजी स्कूलमें पढ़नेके लिए बिठला दिये गये, और सन् १८८० में मैट्रिककी परीक्षा देनेवाले थे। उन्हीं दिनों एक घटना घटी, जिसने धर्मपालजीके समस्त जीवनको ही पलट दिया। थियोसोफिस्ट सोसाइटीकी जन्मदात्री श्रीमती एच० पी० ब्लैवेट्स्की सीलोन पहुँची। बालक धर्मपालके हृदय-पर उनके व्यक्तित्वका बड़ा प्रभाव पड़ा। मैडम ब्लैवेट्स्की विद्यार्थी धर्मपालपर स्नेह करने लगी, और उन्हे वे अपने साथ अड्यार (मद्रास) भी लेती आई। धर्मपालजीकी इच्छा उन दिनों प्रेत-विद्या (Occultism) सीखनेकी थी, पर मैडम ब्लैवेट्स्कीने इसके लिए मना कर दिया। उन्होंने कहा—"धर्मपाल, तुम प्रेत-विद्या न सीखो। तुम पाली-भाषाका अध्ययन करो। उसमें तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

'पाली-अध्ययन' और 'परोपकार व्रत' इन्हीं दो बातोंपर मैडमने जोर दिया। धर्मपालजीने भी यही निश्चय कर लिया। उन्होंने पाली पढ़ते हुए बौद्ध ग्रन्थोंका अध्ययन किया, और उनके हृदयमें बौद्धधर्म-प्रचारकी भावना उत्पन्न हुई। उन्होंने अपनी पूज्य मातासे जाकर कहा—"मैं तो घर-बार छोड़कर बौद्धधर्म-प्रचारमें अपना जीवन लगाना चाहता हूँ।"

माताजी धर्मपालपर बहुत स्नेह करती थी, पर साथ ही वे स्वयं भी बड़ी धार्मिक थी, इसलिए उन्होंने कहा—"बेटा, तेरी इस बातसे मैं प्रसन्न हूँ, जैसी तेरी इच्छा हो, वही कर।"

पर पिताजीको चिन्ता हुई। उन्होंने कहा—"तुम्हीं हमारे ज्येष्ठ पुत्र हो, मेरे बाद इस कुटुम्बका बोझ कौन सम्हालेगा?"

धर्मपालजीने आदरपूर्वक कहा—"पिताजी, सब अपने-अपने कर्मोंके अनुसार फल प्राप्त करेंगे।"

तत्पश्चात् उन्होंने भी धर्मपालसे यही कहा—"अच्छा भाई, जो तेरी इच्छा हो, वही कर।"

इस प्रकार बीस वर्षकी उम्रमें वे घरसे निकल पड़े। परिवारकी तो उन्हें कुछ चिन्ता थी ही नहीं, और पिताजी भी उन्हें आवश्यकता पड़नेपर बराबर खर्च भेज दिया करते थे। पिताजीको रुपये-पैसेकी कमी नहीं थी। अपने जीवनमें उन्होंने धर्मपालको तीन लाख रुपयेसे अधिककी सहायता दी।

अड्यारमें धर्मपालजी ६ वर्ष तक रहे, और वहाँ उन्होंने अपना समय बौद्धधर्मके अध्ययन तथा अंग्रेजीका अभ्यास करनेमें व्यतीत किया। लेख लिखने तथा भाषण देनेका भी अभ्यास उन्होंने वहींपर किया। अड्यारके ये ६ वर्ष उनके लिए आगे चलकर बड़े उपयोगी सिद्ध हुए।

धर्मपालजी प्रारम्भसे ही राष्ट्रीय विचारोंके आदमी रहे हैं। आपने एक मोटर-कार रखी थी, और उसपर बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा रहता था 'Wake up Ceylon' (सीलोन जाग्रत हो)। इसी मोटर पर आप सीलोनमें यात्रा किया करते थे।

दिसम्बर सन् १८९० में वे अड्यार छोड़कर गयाके लिए रवाना हुए। २२ जनवरी सन् १८९१ को उन्होंने पहले-पहल महाबोधि-मन्दिर तथा बोधिवृक्षके दर्शन किये। मन्दिरको शैव महन्तके अधीन और स्वयं महन्त महोदयकी अनुचित कार्रवाइयोंको देखकर उनके हृदयमें बड़ी वेदना हुई, और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि हम महाबोधि-मन्दिरको फिर बौद्धोंके अधीन लानेका प्रयत्न करेंगे।

मार्च सन् १८९१ में धर्मपालजी कलकत्ते पधारे, और वहाँ पर वे स्वर्गीय नीलकमल मुकर्जीके मकानपर बेनियापुकुर गलीमें ठहरे। यहीं-पर उन्होंने अपने समयका पूर्णतया सदुपयोग करनेका निश्चय कर लिया। वे नित्यप्रति एशियाटिक सोसाइटीके पुस्तकालयमें जाकर और ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे और जो समय बचता था, उसमें मार्केस्क्वायर तथा वेलिंगटन स्क्वायरमें विद्यार्थियोंके सम्मुख भाषण दिया करते थे। लेकिन उनको यह विचार सूझा कि कालेज-स्क्वायरके निकट ही एक ऐसा स्थान

बनाना चाहिए, जहाँ विद्यार्थियोंके लिए बौद्धधर्मके महत्त्वपर भाषण हुआ करें। तत्पश्चात् उन्होंने कलकत्तेके मित्रोंकी सहायतासे सन् १८९१ मे महाबोधि-सोसाइटीकी स्थापना की, और उसके मन्त्रित्वका भार अपने ऊपर ही ले लिया। इस सोसाइटीकी स्थापनासे उनको अपने कार्यमें बड़ी सहायता मिली। इसी समय उनको गयामें एक बौद्धधर्म-शालाकी आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने बर्मा तथा सीलोनकी यात्रा करके उसके लिए चन्दा इकट्ठा किया, और जो कुछ मिला, वह सब गया-डिस्ट्रिक्ट-बोर्डको अर्पित कर दिया, जिससे वहाँ एक सुन्दर धर्मशाला बन गई। यह बौद्ध यात्रियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।

जनवरी सन् १८९३ में उन्होंने 'महाबोधि' नामक मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया, जो ३९ वर्षसे बराबर काम कर रहा है। सौभाग्यवश अकस्मात् इस पत्रकी प्रथम संख्या शिकागोके सर्वधर्म-सम्मेलनके आयोजकोंके हाथ लग गई। वे इस अंकको देखकर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तुरन्त ही धर्मपालजीको निमंत्रण भेज दिया। धर्मपालजी अमेरिका गये, और वहाँ जो भाषण उन्होंने दिये, उनकी चर्चा अमेरिका-भरके खास-खास पत्रोंमे हुई। 'सेण्ट लुई औबजर्वर'ने अपने २१ सितम्बर १८९३ के अंकमें लिखा था :—

"अपनी चौड़ी भौहोंके पीछे लम्बे घुँघराले बाल डाले हुए श्रोताओं-पर अपनी स्पष्ट तीक्ष्ण दृष्टि फेंकते हुए और लम्बी उँगलियों द्वारा अपने गुंजायमान करनेवाले स्वरपर ज़ोर डालनेवाला यह आदमी 'प्रचारक' की मूर्ति ही प्रतीत होता था, और यह जानकर कि संसारके बौद्धोंका संगठन करनेवाला और बौद्धधर्मकी ज्योतिको विश्वव्यापी बनानेका कार्य इसी मूर्तिके सुपुर्द है, दर्शकका हृदय कम्पायमान हो जाता था।"

अमेरिकाके खास-खास नगरोंकी उन्होंने यात्रा भी की। आप शिकागो-यूनिवर्सिटीके प्रधान डाक्टर हार्पर और कोलम्बिया-यूनिवर्सिटी-के प्रधान सर बटलरसे मिले, और उन दोनोंसे उन्होंने यह प्रार्थना की कि

वे अपने विश्वविद्यालयमें भारतीय विद्यार्थियोंको छात्रवृत्ति देकर निम-न्त्रित करें। उन लोगोंने इस बातको स्वीकार भी कर लिया पर उन दिनों भारतीय विद्यार्थियोंमें विदेश-यात्रा करनेके लिए विशेष उत्साह नहीं था। सन् १८९६ या १८९७ में भारतमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा। उस समय धर्मपालजी अमेरिकामें ही थे। आपने वहाँ भारतीय अकालपीड़ितों-की दुर्दशापर भाषण दिये। उनका इतना प्रभाव पड़ा कि आयोवाके अमेरिकनोंने बहुत-सा अन्न भारत भेजनेका निश्चय कर लिया, और एक जहाज भरके अन्न भेजा भी। आयोवा राज्य बहुत कुछ धनधान्य समृद्ध है। सर्वधर्म-सम्मेलनके बाद अमेरिकासे लौटते हुए धर्मपालजीकी मुलाकात होनोलूलूमें श्रीमती मेरी फोस्टरसे हुई और उस महिलाने आगे चलकर धर्मपालजीको कुल मिलाकर आठ लाख रुपये सहायतार्थ दिये।

धर्मपालजीने चार बार जापानकी यात्रा की है। पहली बार सन् १८८९ में, द्वितीय बार सन् १८९३ में तीसरी बार सन् १९०२ में और चौथी बार सन् १९१३ में। वे जापानके सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ काउंट ओकूमासे भी मिले थे। ओकूमाने धर्मपालजीसे कहा—"आप लोग अपने विद्यार्थी तो हमारे यहाँ भेजते हैं, पर विद्वानोंको क्यों नहीं भेजते? हम लोग आपके विद्वानोंसे मिलना चाहते हैं।"

धर्मपालजी जापानकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। सन् १८८९ और १९१३ के जापानमें उन्होंने जमीन-आसमानका अन्तर देखा था। जापानके महापुरुषोंने कितने कष्ट सह-सहकर अपने देशकी उन्नति की है, इसके अनेक दृष्टान्त धर्मपालजी सुनाते हैं। स्वयं काउंट ओकूमाके विषयमें उन्होंने कहा—"काउंट ओकूमाके माता-पिता इतने निर्धन थे कि उन्हें चावल भी खानेके लिए नहीं मिल सकते थे इसलिए, उनकी मा थोड़ेसे चावलोंके साथ कोई दूसरा मोटा अनाज मिलाकर उन्हें खानेके लिए दिया करती थी।

संसारके अनेक महापुरुषोंसे मिलनेका सौभाग्य धर्मपालजीको प्राप्त हुआ है, और उनसे इन महानुभावोंके विषयमें बातचीत करनेमें बड़ा आनन्द आता है। धर्मपालजी रूसके सुप्रसिद्ध अराजकवादी प्रिंस क्रोपाट-किन, संसार-प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ मैक्समूलर, 'लाइट आफ् एशिया' के लेखक सर ऐडविन आरनाल्ड इत्यादि कितने ही आदमियोंसे मिले थे।

मैंने उनसे पूछा—"प्रिंस क्रोपाटकिनसे आपकी क्या बातचीत हुई थी?"

धर्मपालजी—"मैंने जब उन्हें हिन्दुस्तानका वृत्तान्त सुनाया, उस समय उनकी लड़की भी उनके साथ थी। वह बोली—'हिन्दुस्तानी लोग अंग्रेजोंको 'शूट' क्यों नहीं कर देते?' इसपर प्रिंस क्रोपाटकिनने तुरन्त ही कहा—'नहीं, नहीं, यह ठीक नहीं। भारतीयोंको चाहिए कि वे ग्रामोंमें जाकर कार्य करें। बहुत-से भारतीय नवयुवकोंको ग्रामोंमें जाकर बस जाना चाहिए, जैसा कि हम लोगोंने रूसमें किया है।"

धर्मपालजी मैक्समूलरसे मिलने गये, और उनसे पूछा—"आप भारतवर्ष क्यों नहीं जाते?"

इस पर मैक्समूलरने जवाब दिया—"जब भारतीय ही मुझसे मिलनेके लिए यहाँ आते हैं, तो मैं भारत जाकर क्या करूँगा?"

जब मैक्समूलरके स्वर्गवासके बाद कलकत्तेमें एक सभा हुई, तो धर्मपालजी भी उसमें निमन्त्रित किये गये। अपने भाषणमें उन्होंने मैक्समूलरकी उपरोक्त बात कही, और साथ ही यह भी कह दिया कि यह अच्छा ही हुआ कि मैक्समूलर भारतमें नहीं पधारे, क्योंकि उनके दिमाग़में उपनिषदोंका भारत घूम रहा था, पर यहाँ आकर जब उन्हें कालीघाटमें बकरोंके बलिदानका दृश्य दीख पड़ता, तो वे अत्यन्त निराश होते। इस बातको सुनकर बंगाली जनता बहुत नाराज़ हुई। उस समय जस्टिस शारदा चरण मित्रने धर्मपालजीके कथनका समर्थन करते हुए कहा—"जो कुछ

इन्होंने कहा है, यह ठीक तो है। अगर मैक्समूलर यहाँ आते, तो भारतकी वर्तमान दशाको देखकर अत्यन्त निराश हो जाते।

जब धर्मपालजी के सर एडविन आर्नाल्डसे मिले थे, आर्नाल्ड साहबने उन्हें थियोसोफिकल सोसाइटीमें शामिल न होनेके लिए कहा था।

धर्मपालजी चालीस वर्षसे निरन्तर अपनी डायरी लिख रहे हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि उसके उपयोगी अंश वे प्रकाशित करा दें। उनकी डायरीके कुछ पृष्ठ हमें भी देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनसे यही प्रकट होता है कि धर्मपालजीको एक ही धुन है, एक ही फिक्र है, यानी भारतमें बौद्धधर्मके प्रचार की। जैसा कि हम कह चुके हैं, सारनाथमें मूलगन्धकुटी-विहारका निर्माण उनके चालीस वर्षके उद्योगका परिणाम था। अपनी डायरीमें उस दिनके पृष्ठमें धर्मपालजीने निम्न-लिखित वाक्य लिखा था —

"At the end I spoke expressing my delight at completion of my labours, begun forty years ago, and told that I present the Vihara to the people of India. It was a happy ending of my forty years labour in the land of Buddha."

अर्थात्—"अन्तमें मैंने अपने भाषणमें चालीस वर्ष पहले प्रारम्भ हुए अपने कार्यकी सफलतापूर्वक समाप्तिपर हर्ष प्रकट किया और उपस्थित सज्जनोंसे कहा कि यह विहार मैं भारतीय जनताको अर्पित करता हूँ। बुद्ध भगवान्की भूमिमें मेरे चालीस वर्षके परिश्रमका यह अन्त आनन्द-प्रद था।'

अभी उस दिन बैठे-बैठे वे उन विद्वानोंकी सूची बता रहे थे जिन्होंने बौद्धधर्मका विशेषरूपसे अध्ययन किया है। उन व्यक्तियोंमें [illegible] उन्होंने कहा—'देखिये, इन [illegible] विद्वानोंमें [illegible] जापानी और एक सिंहलद्वीप-निवासी [illegible]।

इन चार-पाँच भारतीयोंमें दो—यानी डाक्टर भंडारकर और श्री एस० सी० दास—का स्वर्गवास हो चुका है। हाँ, एक भारतीय विद्वान्‌ने एक बड़ी योग्यतापूर्ण पुस्तक हालमें लिखी है। उसका नाम है 'The Bodhisattva Doctrine in Buddhist Sanskrit Literature'* ('बौद्ध संस्कृत साहित्यमें बोधिसत्त्वका सिद्धान्त' लेखक लाला हरदयाल, एम० ए०, पी-एच० डी०)। इसी विद्वत्तापूर्ण निबन्धसे हरदयालजीको यूनिवर्सिटीसे पी-एच० डी० की उपाधि मिली है। सन् १९२७ में, जब मैं लन्दनकी महाबोधि-सोसाइटीमें ठहरा हुआ था, लाला हरदयाल मुझसे मिलने आये थे, और उन्होंने मुझसे यह कहा कि वे बौद्धधर्मका अध्ययन कर रहे हैं। रूसकी सोवियट सरकारने भी बौद्धधर्मके विशेष-रूपसे अध्ययनके लिए मास्कोमें प्रबन्ध किया है, पर खेदकी बात है कि भारतीय विद्वानोंने इसकी ओर समुचित ध्यान नहीं दिया।"

इसी प्रसंगमें मैंने श्रीराहुल सांकृत्यायन और उनकी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'बोधिचर्या' का जिक्र किया। इसपर धर्मपालजीने कहा—"राहुलजी बड़े विद्वान् और अच्छे कार्यकर्ता हैं। मेरी अभिलाषा थी कि वे सारनाथको अपना कार्यक्षेत्र बनावें, पर उनका विचार नालन्दामें रहकर काम करनेका है। हमारे यहाँ सारनाथमें स्थान है, पर भारतीय विद्वान् कार्यकर्ताओंका अभाव है।"

आजकल धर्मपालजीको खासतौरसे दो बातोंकी चिन्ता रहती है; एक तो यह कि ऋषिपत्तनको (सारनाथका यही प्राचीन नाम है) किस प्रकार पुनर्जीवन प्राप्त हो, और दूसरा यह कि हिन्दी-उर्दू द्वारा भारतमें बौद्ध-साहित्य किस प्रकार फैले। वे कहते हैं :—

---

*यह पुस्तक Kegan Paul, French, Tubuer and Co. Limited, Broadway House, 68-74, Carter Lane E. C, London, से मिल सकती है।

"सत्रह सौ वर्ष तक भारतमे बौद्धधर्मका शासन रहा। तत्पश्चात् पिछले आठ सौ वर्षमे बौद्धधर्मके नाशके साथ ही साथ भारतकी पराधीनताका भी युग प्रारम्भ हुआ। अब फिर समय आ गया है, जब भारतमे बौद्धधर्मके सिद्धान्तोका प्रचार किया जाय। बौद्धधर्मका सन्देश आशाका सन्देश है और आत्म-निर्भरताका सन्देश है। बुद्ध भगवान् बराबर यही उपदेश देते रहे कि अपना उद्धार स्वय ही करो। किसी देवी-देवताके भरोसे बैठे रहनेके वे सर्वथा विरुद्ध थे। वे पूर्ण वैज्ञानिक थे। किसीकी अन्ध-भक्ति और अन्ध-श्रद्धा नही चाहते थे। मनुष्यकी अद्भुत और अनन्त शक्तिको उन्होने पहचान लिया था, और वे जनताको यही उपदेश देते थे कि तुम सब कुछ कर सकते हो, स्वय बुद्ध भी बन सकते हो। 'अपण्यकसूत्र' मे एक सर्वधर्म-सम्मेलनका जिक्र आया है। प्राचीन कालके भारतीय इस प्रकारके सम्मेलन कराया करते थे, जिनमें भिन्न-भिन्न धर्मोके आचार्य अपने-अपने धर्मका समर्थन करते थे। 'अपण्यकसूत्र' में एक ऐसी ही मीटिंगका वृत्तान्त है। उसमें अनेक धर्माचार्योने अपने-अपने मत-मतान्तरोकी खूब प्रशसा की। जब बुद्ध भगवान्की पारी आई, तो उन्होने उपस्थित जनतासे कहा—"आप लोगोने सबका कथन सुन लिया। अब आपको इनमे जो कुछ अच्छा लगे, उसे ग्रहण करें। आप अपनी बुद्धिका प्रयोग करके सब धर्मोका सार ग्रहण कर ले, क्योकि आप 'विज्ञ-पुरुष' है।"

फिर धर्मपालजीने कहा—"हमें आवश्यकता है ऐसे कार्यकर्ताओकी, जो केवल भोजन-वस्त्रका व्यय लेकर भारतमें आर्यधर्मका प्रचार करे। बौद्धधर्मका प्रचार देश-देशान्तरोमें निर्धन भिक्षुओ द्वारा ही हुआ था। हमारे यहाँ लिखा है—'जातरूप रजत पतिग्गहन विरमानि शिक्षापद समादियाम'—(मैं सोना और चाँदी ग्रहण नही करता हूँ)। क्या ऐसे कार्यकर्ता हमें मिल सकेंगे ?"

इस प्रश्नपर कुछ देर तक बातचीत होती रही। धर्मपालजीकी

स्मरणशक्ति बड़ी अच्छी है। कभी श्री उदित मिश्र और आचार्य नरेन्द्र-देवजी उनसे मिले थे। उनका ज़िक्र आया। फिर धर्मपालजीने कहा—"श्री नरेन्द्रदेवजीसे क्यों न कहा जाय कि वे जब तक काशी-विद्यापीठ बन्द है, तब तक ऋषिपत्तनमें ही आकर रहे? हम लोग अपना पुस्तकालय भी अब वहीं भेजना चाहते हैं, इसलिए उनको अध्ययनका सुभीता भी हो जायगा।"

श्री धर्मपालजीसे दो बार बातचीत हुई। अस्वस्थ होते हुए भी और यह जानते हुए भी कि डाक्टरने उन्हें बातचीत करनेकी मनाई कर रखी है, उन्होंने डेढ घंटा समय हमें देनेकी कृपा की। कमरा बहुत साफ है। सामने अलमारीमें पाली भाषाके बौद्धधर्म-सम्बन्धी ग्रन्थ सुन्दर जिल्दोंमे बँधे हुए रखे हैं। सिरहानेपर बुद्ध भगवान्‌का धर्मचक्र प्रवर्तन नामक मनोहर चित्र है। सिंहाली अक्षरोंका 'धम्मपद' पासकी मेजपर सुशोभित है। बातचीतमे उसके दृष्टान्त प्राय. दिया करते हैं। उस दिन 'धम्मपद' का एक श्लोक उन्होंने कहा—

"यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छासो न प्पमज्जति,
सो इम लोकं पभासेति अब्भा मुत्तोव चन्दिमा।"

अर्थात्—'जो पहले प्रमाद करके फिर प्रमाद नहीं करता, वह इस लोकमें इस प्रकार प्रकाशित होता है, जिस प्रकार बादलोंसे मुक्त चन्द्रमा।"

श्लोक मुझे बहुत पसन्द आया। मैंने कहा—"कृपाकर इसे लिखा दीजिए।" जब बोलने लगे, तो पाली न जाननेके कारण वह ठीक-ठीक मेरी समझमें नहीं आया। इसपर उन्होंने कहा कि दूसरे कमरेमेंसे काला जिल्दवाला बँगला 'धम्मपद' ले लीजिए। जब तक हम इधर-उधर ढूंढ ही रहे थे, तब तक वे स्वयं उठकर लड़खड़ाती टाँगोंसे चले आये, वह पुस्तक हमें दे दी, और कहा—"इसमें से आप नकल कर लीजिए।"

धर्मपालजीके उत्साह और लगनको देखकर आश्चर्य हुआ, साथ ही यह डर भी लगा कि कहीं इस बातचीत और परिश्रमसे उनकी तबीयत और भी खराब न हो जाय, इसलिए प्रणाम करके मैं शीघ्र ही वहाँसे चल दिया। रास्तेमें सोचता आता था—"लगन हो तो ऐसी! जिसने पचीस बार जन्म लेकर एक ही काम करनेका निश्चय कर लिया है, उसकी दृढ़ताका क्या अन्दाज़ लगाया जा सकता है?"

मार्च १९३२]

माननीय श्रीनिवास शास्त्री

"मिस्टर शास्त्री आस्ट्रेलिया, कनाडा और न्यूज़ीलैण्डकी यात्रापर जा रहे हैं। आप उनसे जरूर मिलिये और प्रवासी भारतीयोंके विषयमे जो कुछ मसाला उन्हे दे सकें, दीजिए।" मि० पोलककी इस आशयकी एक चिट्ठीने, जो मई सन् १९२२ मे मिली थी, मुझे बड़े पशोपेशमे डाल दिया। पहला खयाल था संकोचका। मेरे-जैसे अर्द्ध-शिक्षित आदमीको माननीय श्रीनिवास शास्त्री-जैसे महापुरुषसे मिलना भी चाहिए या नहीं? किसी भिखमंगेकी जो हालत लखपती आदमीसे मिलनेके समय होती है बस, वैसी ही दशा मेरी भी थी। इसके सिवा एक कठिनाई और भी थी। अंग्रेजी तथा हिन्दी-पत्रोमें शास्त्रीजीके विषयमे लेख पढकर अपने मस्तिष्कमें उनकी जिस मूर्तिकी मैंने कल्पनाकी थी, वह बिल्कुल आकर्षक न थी।

शास्त्रीजी शिमला जा रहे थे और आगरा कैण्टसे मथुरा तक उनके साथ यात्रा करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। थोड़ी देरकी बातचीतके बाद ही बडा आश्चर्य हुआ। मनमें सोचा—"जिस 'अहंकारी', 'सरकारके खुशामदी' तथा 'हृदयहीन' व्यक्तिकी निन्दा नित्यप्रति समाचार-पत्रोंमें पढनेको मिला करती है, उनसे तो ये बिल्कुल भिन्न आदमी मालूम होते है।" अपनी मूर्खतापर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और तब यह बात मेरी समझमे आई कि अखबारोंके भरोसे किसी मनुष्यके चरित्रके विषयमें फैसला कर बैठना महज़ हिमाकत है। १० सितम्बर सन् १९२२ के 'स्वराज्य' में मि० एन० एम० बी०ने शास्त्रीजीका स्केच लिखते हुए लिखा था—"जब समाचारपत्रोमे अग्रलेख लिखनेवाले सोचते थे कि गम्भीर आर्थिक तथा सामाजिक प्रश्नोपर लिखे गये हमारे लेखोंसे

पाठक अब ऊब चुके है और कोई खास बात हमारे पास लिखनेके लिए है भी नही, तो फौरन उनकी निगाह मि० शास्त्रीपर पडती और वे कहते—'वस, मिल गया एक विषय ! शास्त्रीजीका मजाक उडाये जाओ ! उपहास तथा व्यगके लिए ये अच्छी सामग्री है ।' मेरे एक मित्र जब एक समाचारपत्रके सम्पादक हुए तो उन्होने अपना पहला लेख मि० शास्त्रीके विषयमें लिखा, क्योकि शास्त्रीजीपर लेख लिखना आसान भी था और यह प्रारम्भ भी अच्छा था !

इसका परिणाम यह हुआ है कि शास्त्रीजीके विषयमे एक अत्यन्त भ्रमात्मक धारणा साधारण जनताके मनमें बैठ गई है । पिछले चौदह वर्षोमें इन पक्तियोके लेखकको शास्त्रीजीसे मिलने और वार्तालाप करनेका सौभाग्य कितनी ही बार प्राप्त हुआ है, पत्र-व्यवहार भी बहुत दफे हुआ है, दो-तीन दिन साथ ठहरनेका मौका भी मिला है और इसलिए शास्त्री-जीके स्वभावको निकटसे अध्ययन करनेके अनेक अवसर उसे मिल चुके है, और अपने निजी अनुभवके आधारपर वह कह सकता है कि महात्मा गाधीको छोडकर शास्त्रीजी-जैसा सहृदय और सुसस्कृत व्यक्ति भारतवर्षमे शायद ही कोई दूसरा निकले ।

सबमे बडी खूबी शास्त्रीजीके चरित्रमे यह है कि वे अपनी गरीबीके दिनोको अबतक नही भूले । शास्त्रीजीको अपने वे दिन अब भी याद है जबकि उन्हे विद्यार्थी-जीवनमे छात्रवृत्ति मिलती थी और उसमेंसे फीस देनेके बाद उनके पास महीने-भर गुज़र करनेके लिए सिर्फ तीन रुपये बच जाते थे ! सुना है कि एक बार शास्त्रीजीकी पूज्य माको किसी पडो-सिनने कच्चे आम भेंटमें भेजे थे। शास्त्रीजीकी मा उनका अचार डालना चाहती थी; पर उनके पास पैसा भी न था कि वे नमक खरीद सके ! नमक-करकी निष्ठुरताका वर्णन करते हुए शास्त्रीजीने यह करुणाजनक कहानी व्यवस्थापक सभाकी एक स्पीचमें कह सुनाई थी । इससे उनकी निर्धन अवस्थापर पर्याप्त प्रकाश पडता है । शास्त्रीजी अपनी गरीबीको

नहीं भूले और आज भी वे गरीब ही हैं।

माननीय मि० नटेमनकी साठवीं वर्षगाँठके अवसरपर जो पत्र मि० शास्त्रीने उनके लडकेके पास भेजा था, उसमें उन्होंने अपनी पूज्य माताजीका ज़िक्र बडे मधुर शब्दोमें किया था—

"प्रत्येक आदमी अपनी माताके विषयमें लिखते हुए यह अवश्य कहता है कि मेरी-जैसी माता न किसीके थी, न है और न हो ही सकती है। यदि आपके पूज्य पिता मि० नटेसन इस तरहका दावा अपनी माताजीके विषयमें पेश करें तो मैं उनसे झगडा नहीं करूँगा। हाँ, सिर्फ इतना जरूर कहूँगा कि मेरी पूज्य माता भी ऐसी ही थीं। इन दोनो माताओंको —नटेसनकी माताको और मेरी माताको—अपने लड़कोंकी वजहसे जितने कष्ट उठाने पडे, उतने कष्ट उनकी स्थितिकी स्त्रियोंको प्राय: कम ही उठाने पडते हैं। गरीबीकी वजहसे उनकी कठिनाइयों तथा अभावोंमें और भी वृद्धि हो गई थी। इन दोनो माताओंने हम लोगोंको कभी भी पूरा-पूरा हाल उन तकलीफोंका नहीं बतलाया, जो बचपनमें हम लोगोंको कुछ आरामसे रखने तथा पढाने-लिखानेके लिए उन्हें उठानी पडी थीं। तुम्हारे पिता ने और मैंने साथ-साथ बैठकर कितनी बार उन अज्ञात कष्टोंकी कल्पना की है, जो हम दोनोंकी माताओंको सहने पडे थे और ऐसा करते हुए हम दोनो सिसकी भरने लगे हैं। क्या सचमुच हम दोनो वैसे ही कृतघ्न थे, जैसे कि दीख पड़ते हैं? पर बात तो दरअसल यह है कि यदि हमको बारह जीवन भी मिलते तब भी हम अपनी माताओंके प्रति उतनी कृतज्ञता प्रकट नहीं कर पाते, जितनीकी कि वे अधिकारिणी हैं। ईश्वरको धन्यवाद है कि ये दोनों माताएँ अधिक दिन जीवित रहीं और उन्होंने हम दोनोंको पहलेकी अपेक्षा अधिक सम्पन्न दशामें देखा। क्या उन दोनो बुढियाओंने अपने पिछले दिनोंमें आपसमें बातचीत करते हुए निजी तौरपर यह न कहा होगा—'हमारे लड़के आखिर उतने बुरे तो न निकले, जितने हमने सोचे थे?' क्या ही

अच्छा होता, यदि उन्होने आपसमे ऐसी बात कही होती।"

यदि शास्त्रीजी चाहते तो उच्च-से-उच्च सरकारी पद प्राप्त करना उनके लिए कोई मुश्किल बात न होती; पर देशहितके सामने उन्होंने स्वार्थका सदा ही बलिदान किया है। शास्त्रीजीको भारत-सेवक-समितिके लिए जितना परिश्रम करना पडा था, उसके विषयमे 'जन्मभूमि' के सम्पादक डाक्टर पट्टाभि सीतारमैय्याने लिखा था—

"हम जानते है कि शास्त्रीजीने अपने ऊपर जान-बूझकर लिये गये दारिद्रय-व्रतको किस प्रकार निवाहा। कभी वे दिन भी थे, जब भारत-सेवक-समितिके लिए एक-एक रुपया इकट्ठा करनेमे उन्हे अपने रक्तकी एक-एक बूंद खर्च करनी पडती थी। सौभाग्यसे अब वे दिन बीत गये और लौटनेवाले नही।"

शास्त्रीजीको भारत-सरकारके प्रतिनिधि बनकर विदेशोमें जाते हुए देखकर साधारण जनता यह अनुमान करने लगती है कि शास्त्रीजी सदासे ही सरकारके कृपापात्र रहे है। यह बात बिल्कुल गलत है। शास्त्रीजीको खुफिया पुलिसवालोने बहुत काफी तग किया है। इस विषयके अपने अनुभव सुनाते हुए उन्होने कहा था—

"जब मै सन् १९०८ में डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमेटियोका सगठन करनेके लिए भिन्न-भिन्न ज़िलोमे घूमता था, उन दिनो भारतके राजनैतिक वायुमडलपर ऐसा तुपार पडा हुआ था, खुफिया पुलिस इतनी अधिक व्यग्र थी और सरकारकी दमन-नीति इतने जोरोपर थी कि कितनी ही जगहोपर तो पबलिक मीटिंगके लिए आदमी इकट्ठा करना मुश्किल हो जाता था। 'अरे! अभी नही, अभी नहीं'—लोग यही कहते हुए सुनाई देते थे। एक घटना मुझे याद पडती है। एक उच्च पदाधिकारी थे, जो नौकरी छोड़-कर शीघ्र ही पेंशन लेनेवाले थे। वे एक बार रातको बारह बजे आकर मुझसे मिले। जब मुझे इस बातसे बडा आश्चर्य हुआ तब उन्होने कहा—'भाई साहब, मै तीन-चार दिनसे तुमसे मिलना चाहता था; पर इस जगह

तो झुण्ड-के-झुण्ड खुफिया पुलिसवाले मौजूद हैं और मुख़बिरोंकी भी भरमार है। आता तो कैसे आता? अब मेरे पेंशनके दिन नजदीक हैं, साथ ही मेरे बहुतसे बाल-बच्चे भी हैं। मैं यह नहीं चाहता कि भारत-सेवक-समितिके किसी मेम्बरकी वजहसे मैं भी धर घसीटा जाऊँ।"

सन् १९१८ में शास्त्रीजीने कौंसिलमे भाषण देते हुए कहा था—

"श्रीमान् इस बातपर मुश्किलसे विश्वास करेंगे; पर है यह बिलकुल सत्य कि दो-तीन वर्ष तक तो यह हालत रही कि खुफिया पुलिसवाले जबतक मैं घरमें रहता, तबतक मेरे घरके द्वारपर बैठे रहते और ज्यों-ही घरसे बाहर निकलता त्योंही पीछा करने लगते थे! अगर मैं इक्का किराये करता तो वे भी दूसरा इक्का लेकर मेरा पीछा करते। पूछ-ताछ करके वे पता लगा लेते थे कि मैं कहाँ जा रहा हूँ और जहाँ मैं जाता, वहीं वे भी जा पहुँचते थे। आश्चर्यकी बात यह थी कि यदि उनको कोई तेज़ इक्का न मिलता तो वे मेरे इक्केवालेको किसी तरह समझा देते थे कि वह अपने इक्केको तेज़ न हाँके!

"एक बार कोयम्बटूरमें इन अत्याचारी खुफिया पुलिसवालोंने प्रत्येक इक्केवाले और गाड़ीवालेसे कह दिया कि वे मुझे न बिठलावें! मुझे एक ज़रूरी कामके लिए जाना था और खुफिया पुलिसवाले अपने दोपहरीके आराममें खलल नहीं डालना चाहते थे! नतीजा यह हुआ कि मैं अपने स्थानपर न पहुँच सका।...माई लार्ड, कभी-कभी तो ये खुफिया पुलिसवाले कुछ दूसरे ही उपायोंका अवलम्बन करते हैं, जिससे हम लोगोंको पता लगता है कि अपने ही देशमें हमें किस प्रकार शंकाकी दृष्टिसे देखा जाता है। और सो भी किस अपराधके लिए? स्वदेशसे प्रेम करनेके कारण! एक बारकी मुझे याद है कि रेलवे पुलिसने मुझे मामूली पुलिसके सुपुर्द कर दिया। हम लोग गुलामोंकी तरह सुपुर्द किये जाते हैं। एक मर्तबा बड़ी दिल्लगी रही। एक आदमी आया, उसने मुझे दिखाकर मामूली पुलिसके हवाले कर दिया। दुर्भाग्यवश

मैं उस वक्त भीड-भाड़में उन आदमियोंके बीच, जो मुझसे कम अपराधी थे, गुम हो गया। पुलिसवालोंने मुझे तो न पहचान पाया और गलतीसे मेरे एक मित्रको मेरी जगह समझ लिया! नतीजा यह हुआ कि जो दो आदमी मेरे पीछे लगे फिरने चाहिए थे, वे उनके पीछे लग गये! मैंने समझा कि चलो, मुझे छुटकारा मिला। पर पीछे मेरे मित्रने मुझे बतलाया कि उन्होंने पुलिस-विभागके अध्यक्षसे शिकायत कर दी है। परिणाम यह हुआ कि पुलिसवालोंने अपना पुराना शिकार फिर पहचान लिया।"

सन् १९१८ तक यह हालत थी कि शास्त्रीजीके यहाँ कोई आदमी आता था तो उसका नाम पुलिसवाले लिख लेते थे और उसे भी तंग करते थे। अब शायद यह स्थिति नही होगी, क्योंकि शास्त्रीजी वृद्ध हो गये है और भागकर कही जा भी नही सकते। सरकार इस बातको अच्छी तरह जानती है कि शास्त्रीजी उन आदमियोंमें से नही है, जो खरीदे जा सकते है। समय-समय पर उन्होंने सरकारको कडी-से-कडी बाते सुनाई है। उनकी रौलट बिल वाली स्पीच अब भी लोगोंके कानोंमे गूंज रही है।

"You may enlarge your councils, you may devise wide electorates, but the men that will then fill your councils will be toadies, timid men, and the bureaucracy armed with these repressive powers will reign unchecked under the appearance of a democratic government."

शास्त्रीजीके ये शब्द चिरस्मरणीय है। उनकी बंगलोरवाली स्पीच भी बड़ी भावपूर्ण थी। इसके बाद भी जब-जब अवसर आया है, शास्त्रीजीने सरकारको खरीखोटी सुनानेमें कसर नही छोड़ी।

लिबरल पार्टीमें यदि कोई नेता ऐसा है, जिसकी सहानुभूति उग्र और प्रगतिशील दलवालोंसे है तो वे मि० शास्त्री ही है। कितने ही

लोगोंको इस बातकी आशंका रही है कि मि० शास्त्री भीतर-ही-भीतर स्वयं गरम दलके पक्षपाती हैं। अपने एक भाषणमें, जो सन् १९२३ में पूनामें दिया था, उन्होंने कहा था—

"मि० गोखलेको अन्त तक यह आशंका बनी ही रही—पूर्णरूपसे इसे उन्होंने कभी भी नहीं छोड़ा—कि राजनीतिमें मेरा झुकाव गरम दलवालोंकी ओर है और मैं छिपा हुआ गरम दलवाला हूँ।"

लखनऊ-कांग्रेसके अवसरपर गरम दल और नरम दलका मेल करानेमें शास्त्रीजीका जबरदस्त हाथ था और अब भी कोई-कोई लिबरल कार्य-कर्ता शास्त्रीजीपर व्यंग किया करते हैं कि यह तुम्हारी ही करतूत थी, अब तुम्हीं उसका फल भोगो!

बात दरअसल यह है कि शास्त्रीजीके जीवनमें नरमी और गरमीके ज्वार-भाटे आया करते हैं। अपने ६-७-३२ के एक पत्रमें उन्होंने मुझे लिखा था—

"मैं अपनी नरमीके लिए बिल्कुल शर्मिन्दा नहीं हूँ; लेकिन कभी-कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब कि मैं यह सोचने लगता हूँ कि मुझे अपनी नरमीके इस गुणको भूल जाना चाहिए, और वर्तमान मौक़ा ऐसा ही है। इंग्लैण्डके अनुदार दलवालोंने हम लोगोंको बेतरह धता बताई है। मेरा हृदय तो कहता है—'छोड़ो इस झंझटको,' लेकिन मेरा मस्तिष्क मुझे सावधान करता हुआ कहता है—'भाई! असहयोग तो तुम्हारी नीतिके विरुद्ध है! लोकप्रियताकी कुछ भी परवा न करो और इस कठिन परिस्थितिमेंसे जो कुछ निकल सके, उतना ही हित स्वदेशके लिए कर लो।' पर मेरी सहज बुद्धि मुझसे कानमें कहती है—'क्यों ज्यादा फ़िक्र करते हो? तुम्हें पूछता ही कौन है? तुम क्या करते हो अथवा क्या नहीं करते, इसकी सुईके नोकके बराबर भी परवा कौन करता है?"

इन पत्रसे शास्त्रीजीकी विनम्रतापर भी काफी प्रकाश पड़ता है।

शास्त्रीजी जैसा महापुरुष तो अपने मनको समझाता है, 'तुम हो किस खेतकी मूली ? तुम्हे पूछता ही कौन है ?' और हम लोगोका, जिनमें उनकी योग्यता तथा सेवाका सहस्राश भी नही है, दिमाग़ आसमानपर ही बना रहता है !

यह बात ध्यान देने योग्य है कि भाषण-शक्तिके ख़यालसे शास्त्रीजीकी गणना ससारके इने-गिने व्याख्यानदाताओंमें की जाती है। अगरेज़ोमे ऐसे धाराप्रवाह भाषण देनेवाले व्यक्ति ससारमें पाँच-छ भी मुश्किलसे मिलेंगे। ससारकी किसी भी सुसस्कृत-से-सुसस्कृत मडलीको शास्त्रीजी अपनी भाषण-शक्तिसे प्रभावित कर सकते है। लीग आव नेशन्समे जिस वर्ष आप सम्मिलित हुए थे, उस वर्ष विशेषज्ञोने आपके भाषणको सर्वोत्तम बतलाया था। एक प्रसिद्ध लेखकने अपनी पुस्तक "दी सैकिड ईयर आव दी लीग", मे लिखा था—

"भाषण-शक्तिके ख़यालसे विजय भारतवर्षके द्वितीय प्रतिनिधि अर्थात् मि० शास्त्रीको ही मिली।"

'डेलीन्यूज़' ने शास्त्रीजीके भाषणके विषयमे लिखा था—

"The highest example of finished oratory it has listened to since it opened a week ago"

आस्ट्रेलियाके प्रधान-मन्त्री मि० ह्यूजेज़ने यहाँ तक कहा था—"मि० शास्त्री हमें शुद्ध अगरेज़ी बोलना सिखा सकते है।" और वाशिंगटन-परिषदमे आपके व्याख्यानोकी ऐसी धाक जमी कि अनेक पत्रोंके संवाददाताओको यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि अंगरेज़ तथा अमेरिकन प्रतिनिधियोमें इतनी अच्छी अंगरेज़ी कोई नही बोल सकता !

शास्त्रीजीसे बातचीत करनेमें बडा आनन्द आता है। महामना मालवीयजी जब बात करते है तो उसमें उपदेशोकी भरमार रहती है—उनका निष्कलक पवित्र जीवन स्वयं सबसे बड़ा उपदेश है। मि० चिन्तामणिसे बातचीत करना ख़तरेसे ख़ाली नही। जैसे कि कोई चतुर शिकारी

मौक़ा देखकर ख़रगोशपर शिकारी कुत्ते छोड़ देता है, वैसे ही चिन्तामणिजी तथ्यों और सत्याओंका ववंडर छोड़कर वातचीत करनेवालेको चकित कर देते हैं। महात्मा गांधीसे वातचीत करते हुए उनका महत्त्व कभी नहीं भुलाया जा सकता, यद्यपि वे अपनी हास्य-प्रवृतिसे दर्शकको निश्चिन्त करनेमें कोई कसर नहीं उठा रखते। पर शास्त्रीजीकी वातचीत इन सबसे निराली है। उसका वायुमंडल सर्वथा घरेलू होता है। उसके माधुर्यके स्वादको वे ही लोग जानते हैं, जिन्होंने उसकी कभी अनुभूति की है।

एक वार मुझे मज़ाक सूझा। मैंने धृष्टतापूर्वक शास्त्रीजीसे कहा—"शास्त्रीजी, अव मैंने विदेश-यात्राके लिए सारा साज़ो-सामान इकट्ठा कर लिया है।" शास्त्रीजीने पूछा—"क्या-क्या?" मैंने उत्तर दिया—"एक तो अवकी वार सेफ्टीरेज़र ख़रीद लिया है।" शास्त्रीजीने कहा—"तुमने मेरा किस्सा सुना है। मैंने पहले-पहल सेफ्टीरेज़र कव और कैसे ख़रीदा था?" मैंने कहा—"कृपया सुनाइये।" शास्त्रीजीने कहा—'भारत-सेवक-समिति'में प्रवेश करनेके पहले और उसके कुछ दिनों वाद तक भी मैं दाढ़ी वनानेके मामलेमें विल्कुल लापरवाह रहा करता था। लोगोंसे मिलनेमें भी संकोच करता था। यही ख़याल करता था—'हुँ, कौन रोज़-रोज़ दाढ़ी छीलता फिरे।' एक वार जव मैं पूनामें था, मि० गोख़लेने मुझे वुला भेजा। सेवामें हाज़िर हुआ। मि० गोख़लेने कहा—'एक वड़ा ज़रूरी काम है, वह यह कि आप वाज़ार जाकर एक सेफ्टीरेज़र ख़रीद लाइये।' मैंने पूछा—'क्या अभी ज़रूरत है? तो अभी लाता हूँ।' मि० गोखलेने कहा—'अवकी वारके लिए तो मैंने इन्तज़ाम कर लिया है, यानी आपकी हजामत वनानेके लिए नाई वुला भेजा है! वात यह है कि आज वम्वईके गवर्नर पूना आनेवाले हैं, उनसे आपका परिचय कराना है और आप तो वाल वनानेसे रहे! इसलिए मैंने अवकी वार तो नाईको वुला लिया है। इसके वाद

आप अपने लिए सेफ्टीरेज़र खरीद लीजिए।' " इस किस्सेको सुनाते हुए शास्त्रीजीकी मधुर मुस्कराहट दर्शनीय थी। फिर आप बोले—"मि० गोखले कभी-कभी कहते थे—शास्त्री आदमी तो अच्छा है, पर नियमानुसार वह अपने बाल नही बनाता !"

गप लडानेका शास्त्रीजीको शौक है। अपनी बाते बडे मज़ेमें सुनाते है और दूसरोकी बडे धैर्यके साथ सुनते है। क्या मजाल कि एक भी अपशब्द अपने विरोधियोंके विषयमें उनके मुखसे निकले ! शास्त्रीजी छोटे-से-छोटे कार्यकर्ताके व्यक्तित्वका सम्मान करते है, अपना मज़ाक खुद उडानेमें सकोच नही करते और उनकी किसी भी बातमे दम्भ या वडप्पनकी बू नही आती। इन्ही कारणोसे शास्त्रीजीका सम्भाषण इतना आकर्षक बन गया है।

सम्भाषण तथा पत्र-लेखन दोनो कलाएँ एक-दूसरे मे मिलती-जुलती है और दोनोके लिए ही समान गुणोकी आवश्यकता है, क्योकि पत्र-लेखन भी तो आखिर दूर बैठे हुए आदमीसे कागज़-कलम द्वारा बातचीत ही है। हमारे पास शास्त्रीजीकी करीब चालीस चिट्ठियाँ सुरक्षित है। प्रत्येक पत्र सुसस्कृति, सद्भाव तथा प्रेमपूर्ण व्यवहारका नमूना है। क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे कुछ हिन्दीके-लेखक-बन्धु शास्त्रीजीसे पत्र-लेखन-कलाकी शिक्षा प्राप्त करे ! हमारे यहाँ कितने ही पत्र-लेखक ऐसे है, जिनकी चिट्ठियाँ वज्रपातसे कम भयकर नही होती ! लिफाफेपर उनके हस्ताक्षर देखकर रुह काँपने लगती है और यद्यपि ईश्वर-प्रार्थनामें हमारा विश्वास नही है, तथापि उस समय बरबस ये शब्द मुँहसे निकल ही जाते है—"या खुदा ! इस आफतसे बचा।" पर शास्त्रीजीके पत्रोका क्या कहना !

एक बार शास्त्रीजी शिक्षकोकी एक मीटिंगमे सभापति हुए। मैंने लिख भेजा कि मै भी शिक्षक रह चुका हूँ। यह मेरा पुश्तैनी पेशा है, क्योकि मेरे पूज्य पिताजीने ५५ वर्ष तक ग्राम-स्कूलोमें अध्यापकका कार्य किया

है, पर मैंने तो तंग आकर इस पेशेको छोड़ दिया। शास्त्रीजीने पत्रोत्तरमें लिखा—

"किसी शिक्षकको शर्मिन्दा होनेकी ज़रूरत नहीं। हाँ, यदि वह अपना पेशा ईमानदारीके साथ न कर सका हो, तब तो बात ही दूसरी है। यहाँ मेरे अब्राह्मण अमित्र मुझपर व्यंग करते हुए हमेशा कहा करते हैं—'अरे! शास्त्री तो भूतपूर्व स्कूल-मास्टर हैं!' और इस प्रकार वे शिक्षक-वृत्तिके प्रति अपनी घृणा प्रकट करते हैं; पर मुझे सदा ऐसा प्रतीत होता है कि इस वाक्यमें लज्जाजनक शब्द 'भूतपूर्व' है। मैंने शिक्षाका उच्च कार्य छोड़ा ही क्यों? और मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या शिक्षकका कार्य छोड़नेके बाद मैंने उससे कोई अच्छा काम भी किया है?'

अपने घोर विरोधियोंको 'अमित्र' कहनेमें शास्त्रीजीने अपनी स्वभावगत कोमलताका ही परिचय दिया है।

एक बार बहुत दिनों तक मैं उनकी सेवामें पत्र नहीं भेज सका। शास्त्रीजीने इसका उलाहना बड़े मधुर ढंगसे दिया था—

"मुझे अब भी आशा है कि आपका पत्र आता होगा। शायद आप मेरे लिए परामर्शोंसे युक्त एक लम्बी चिट्ठी तैयार कर रहे हैं, इसलिए उस पत्रका मैं दूना स्वागत करूँगा।"

यह पत्र शास्त्रीजीने अफ्रीकामें भारतीय एजेण्ट बनकर जानेके पहले लिखा था। स्थानाभावके कारण हम शास्त्रीजीके पत्रोंके अंश यहाँ उद्धृत नहीं कर सकते। हमारे जैसे साधारण कार्यकर्ताके प्रति भी इन पत्रोंमें जो सौहार्द तथा प्रेम प्रकट किया गया है, उससे शास्त्रीजीका महत्त्व ही सिद्ध होता है।

सार्वजनिक जीवन एक ख़तरनाक चीज़ है। कितने ही मौके ऐसे आते हैं, जब अपने विरोधीपर कसकर दो हाथ जमानेकी इच्छा अत्यन्त प्रबल हो जाती है, जब व्यंग करनेमें आनन्द आता है, पर इन तीस वर्षोंके सार्वजनिक जीवनमें शास्त्रीजीने अपनी सुसंस्कृतिको कभी हाथसे

नहीं जाने दिया। विरोधियोंको नीचा दिखानेकी प्रवृत्ति उन्होंने अपने पास भी नहीं फटकने दी। नरम दलवालोंपर प्रायः यह आक्षेप किया जाता है कि वे अपनी आर्थिक उन्नति या पद-लोलुपताके कारण सरकारके साथ सहयोग करते हैं, पर शास्त्रीजी इन प्रलोभनोंसे सदा ही दूर रहे हैं। अफ्रीका भी वे सरकारी एजेण्ट बनकर महात्माजीकी प्रेरणासे ही गये थे।

शास्त्रीजीने लोकप्रियताकी कभी परवा नहीं की। यदि उनकी अन्तरात्माने कभी समझा कि देश गलत रास्तेपर जा रहा है तो उसका उन्होंने स्पष्टतया विरोध ही किया है। इतने लम्बे सार्वजनिक जीवनमें अपने व्यक्तित्वकी रक्षा इतने माधुर्यके साथ करनेमें बहुत कम लोग समर्थ हुए होंगे। पर अब जमाना बदल चुका है। देशको इस समय न तो अंगरेजी भाषण-शक्तिकी जरूरत है और न सुसंस्कृतिमय सहनशीलताकी। देशके नवयुवक अपने नेताओंमें क्रान्तिकारी मनोवृत्ति चाहते हैं और शास्त्रीजी उससे कोसों दूर हैं। नवयुवक समझते हैं कि देशके स्वाधीन हो जानेपर शास्त्रीजी जैसे सुसंस्कृत नेताओंका उपयोग हो सकता है, पर वर्त्तमान संग्रामके लिए वे अनुपयुक्त हैं। कुछ भी क्यों न हो, शास्त्रीजीने अपना कर्तव्य ईमानदारीके साथ निभाया है। जब स्वाधीनता-संग्राम सफलतापूर्वक समाप्त हो जायगा, आजकलकी राजनैतिक दलबन्दियाँ खत्म हो जायेंगी और लोग अपने-अपने राजनैतिक विरोधियोंके चरित्रपर न्याय तथा उदारतापूर्वक विचार करने बैठेंगे उस समय उन्हें शास्त्रीजीकी देशभक्ति उज्ज्वल एवं असन्दिग्ध प्रतीत होगी। शास्त्रीजी इससे ज्यादा कुछ चाहते भी नहीं।

अप्रैल १९३६]

प्रिन्सिपल सुशीलकुमार रुद्र

भारतवर्षमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई इत्यादि अनेक धर्मो तथा जातियोंके मनुष्य रहते हैं। जो लोग इसे देशका दुर्भाग्य समझते हैं, वे भूल करते है, क्योंकि यदि यहाँ केवल एक ही जाति अथवा धर्मके मनुष्य रहते तो उसे वह अमूल्य गौरव प्राप्त न होता, जो भविष्यमें उसे मिलनेवाला है—यानी सब धर्मोंके अनुयायियोंमें एकता स्थापित करनेका सौभाग्य। जो लोग यह समझते हैं कि हिन्दुस्तानमें साम्प्रदायिक झगड़े अनन्त काल तक जारी रहेंगे, हिन्दू-मुसलमान आपसमे योंही लड़ते-झगड़ते रहेंगे, वे न तो परमात्मामें विश्वास रखते हैं और न इस देशके उज्ज्वल भविष्यमें ही। ये सब झगड़े क्षणस्थायी हैं और अज्ञानताके दूर होते ही इनका लोप हो जायगा। आवश्यकता इस बातकी है कि हम लोग एक-दूसरेको समझनेकी कोशिश करें। जो महानुभाव सारे जगत्को एक धर्मके झंडेके नीचे लानेका स्वप्न देख रहे हैं—चाहे वे मुसलमान हों या आर्यसमाजी—एक ऐसे संसारमें रह रहे हैं, जो अव्यावहारिक और काल्पनिक हैं। भारतका उद्धार सबको एक धार्मिक चक्कीके नीचे पीस डालनेसे नहीं होगा। इस तरहकी एकता बिल्कुल निर्जीव होगी। जरूरत इस बातकी है कि हम एक-दूसरेके गुणोंकी ओर ध्यान दें, एक-दूसरेकी विशेषताओंको पहचानें और साथ ही इतनी सहिष्णुता रखें कि अपनेसे भिन्न विचार और मत रखनेवालोंको झूठा और बेईमान न समझें। भिन्नता इस संसारमें सदासे रहती आई है और सदा रहेगी। इस भिन्नतामें एकता स्थापित करना ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य है और इस एकताको स्थापित करनेका श्रेय अधिकांशमें हमारी मातृभूमिको ही प्राप्त होगा।

अभी तक हम हिन्दू लोग हिन्दुस्तानी ईसाइयोंको तुच्छ दृष्टिसे

देखते आये हैं और वे लोग भी अपनेको साहव समझकर हमसे घृणा करते रहे है। यह प्रवृत्ति दोनो समाजोंके लिए हानिकारक प्रमाणित हुई है, और इसके दूर करनेका प्रयत्न होना चाहिए। इसका सर्वोत्तम उपाय यह है कि सुशिक्षित हिन्दू और सुशिक्षित ईसाई एक-दूसरेसे सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करें और फिर अपने समाजके साधारण मनुष्योंके हृदयमें जो गलत भावनाएँ उत्पन्न हो गई हैं, उन्हें दूर करें। दोनो समाज एक दूसरे सम्प्रदायोंके महापुरुषोको पहचानें और उनका सम्मान करें। इस प्रकार शिक्षित जनताकी प्रवृत्ति वदलनेपर साधारण जनसमुदायके भी भाव वदल जायँगे। इसी उद्देश्यसे ईसाई-समाजके ही नही, भारतवर्पके—एक महापुरुष प्रिन्सिपल सुशीलकुमार रुद्रके जीवन-चरितकी दो-चार वातें यहाँ लिखी जाती है।

सुशीलकुमार रुद्रका जन्म सन् १८६१में एक वगाली मिशनरीके घरमें हुआ था। २५ वर्पकी उम्रमें सन् १८८६में आप दिल्लीके सेंट स्टीफन्स कालेजमें प्रोफेसर नियुक्त हुए और ३७ वर्प तक वडी योग्यतासे आपने इस कार्यको निभाया। आज दिल्ली और पजाव प्रान्तमें सैकडो ही ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति मिलेंगे, जिन्हे प्रिन्सिपल रुद्रके शिष्य होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। रुद्र महोदय उन शान्त कार्यकर्ताओंमेंसे थे, जो विज्ञापनसे दूर भागते है और जो जनताकी वाहवाहीकी अपेक्षा अपने पवित्र अन्त-करणकी स्वीकृतिको ही अधिक महत्त्व देते है। प्रिन्सिपल रुद्रका जीवन स्वार्थ-त्याग, तप और प्रेमका जीवन था। उनकी स्त्रीका उसी समय, जव उनकी उम्र अधिक नही थी, देहान्त हो गया था। वे तीन वच्चे छोडकर मरी थी, दो लडके और एक लडकी, और उनका पालन-पोपण करना भी कठिन था, पर प्रिन्सिपल रुद्रने फिर विवाह नही किया।

जिस समय दीनवन्धु ऐंड्रूज भारतमें आये (२० मार्च, १९०४), उस समय श्री० रुद्र सेण्ट स्टीफन्स कालेजमें प्रोफेसर थे। मि० ऐण्ड्रूज भी उसी कालेजमे आकर अध्यापक नियुक्त हुए। आज मि० ऐण्ड्रूज इतनी

सफलताके साथ जो भारतीय प्रश्नोपर भारतीय दृष्टिसे विचार कर सकते है, इसका मुख्य श्रेय प्रिन्सिपल रुद्रको ही मिलना चाहिए। वे एक जगह लिखते है—

"श्रीयुत रुद्र महाशयकी मित्रताके बिना मै इतनी जल्दी यह बात कदापि न समझ सकता कि पराधीन जातिके होनेके कारण हिन्दुस्तानियों-को अपने जीवनमें कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ना है। बाल्यावस्थामें मेरे पिताजीने मुझे यही बतलाया था कि इगलैण्डने भारतके साथ महान् उपकार किये है। मुझे यही शिक्षा दी गई थी कि हिन्दुस्तान इगलैण्डका अत्यन्त ऋणी है, लेकिन श्री० रुद्रके साथ रहनेपर मुझे पता लगा कि मैने इतिहासका अध्ययन बिलकुल असत्य मार्गसे किया है। अब मै समझने लगा कि इगलैण्डने घोर स्वार्थके साथ हिन्दुस्तानका धन चूसा है, और पराधीन भारतको हर तरहके असंख्य अपमान सहनेके लिए मजबूर किया है। जब मै विलायतसे आया ही था, मैने कालेजकी डिबेटिंग सोसाइटीमें अत्यन्त उत्साह-पूर्वक उन उपकारोका वर्णन किया था, जो इगलैण्डने हिन्दुस्तानपर किये है। एक बार इस डिबेटिंग सोसाइटीमें 'भारतीय निर्धनता' विषयपर बहस हुई थी। लड़के कहते थे कि अंग्रेजोंके राज्यमे हिन्दुस्तान बराबर निर्धन होता जाता है। मैने बडे जोरदार शब्दोमें उन लडकोंके इस सिद्धान्तका विरोध किया था। आज मै स्वप्नमें भी इस प्रकारकी भूल कदापि नही कर सकता, लेकिन उस वक्त मेरे ख्यालात ही दूसरे थे। उस समय मै समझता था कि मेरे विचार बिल्कुल ठीक है। मालूम नही कि उस समय श्रोताओंपर मेरी इन बातोका क्या प्रभाव पड़ा होगा। अवश्य ही उन्होंने मुझे बड़ा अहकारी समझा होगा। ईश्वर-कृपासे श्री० रुद्र मुझे सर्वोत्तम मित्र मिल गये थे। जब वे समझ जाते कि मैने कोई भूल की है तो फ़ौरन् ही मेरी भूल मुझे बतला देते थे। वे मेरे साथ घंटो तक बहस किया करते थे, और जब तक वे मेरे भ्रमात्मक विचारोंको दूर नहीं कर देते थे, तबतक उन्हे चैन नही

पड़ता था। मेरे विचार उन दिनों बिल्कुल साम्राज्यवादियोंकी तरहके थे। आज जब मैं उन पुरानी बातोंको याद करता हूँ तो मुझे श्री० रुद्रकी अमूल्य मित्रताका पता लगता है। उन दिनों मेरे साम्राज्यवादी होनेपर भी भारतीयोंने मुझपर सन्देह नहीं किया, इसका मुख्य कारण श्री० रुद्रकी मित्रता ही थी। वे हर तरहसे मेरी अपेक्षा अधिक योग्य थे। वे मेरे मित्र ही नहीं, बल्कि मेरे शिक्षक भी थे। उनके चरणोंके निकट बैठकर मैंने उनसे बहुत-सी बातें सीखी थीं। यदि श्री० रुद्र मेरे शिक्षक न होते तो मेरे अहंकार-पूर्ण भाव शायद ही छूटते। संसारमें सुशील-कुमार रुद्रकी तरहके मित्र दुर्लभ ही हैं।"

महात्मा गान्धीजीने श्री० रुद्रके स्वर्गवासपर 'यंग इण्डिया'में लिखा था—"बहुतसे आदमी यह बात नहीं जानते कि प्रिन्सिपल रुद्रने ही हमें सी० एफ० ऐण्ड्रूजको दिया। ये दोनों जुड़वाँ भाइयोंकी तरह थे, और दोनोंका सम्बन्ध एक आदर्श मित्रताका नमूना था।"

जब सेण्ट स्टीफन्स-कालेजके प्रिन्सिपलका पद खाली हुआ, तो लाहौरके लार्ड बिशपने मि० ऐण्ड्रूजसे प्रिन्सिपल बननेके लिए अनुरोध किया। उन्होंने जवाब दिया—"श्री० रुद्र मुझसे बहुत पुराने हैं। उन्हें प्रिन्सिपल बनाइये। यदि आप उनके अधिकारको छीनकर किसी दूसरेको प्रिन्सिपल बनावेंगे, तो मैं इस्तीफा दे दूँगा।" इस प्रकार श्री० रुद्र प्रिन्सिपल बने।

मि० ऐण्ड्रूजने अपने संस्मरणोंमें प्रिन्सिपल रुद्रसे सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना बतलाई थी। भारत आनेके कुछ ही समय बाद गरमियोंके दिनोंमें मि० ऐण्ड्रूज शिमलाके निकट सनावरके फौजी विद्यालयके प्रिन्सिपल बनकर चले गये थे। वे लिखते हैं—

"जिन दिनों मैं सनावरमें उस फौजी विद्यालयके प्रिन्सिपलका काम करता था, उन्हीं दिनों वहाँके एक लड़कियोंके स्कूलमें एक लेडी सुप्रिण्टेण्डेण्ट नियुक्त हुई थी। जिस घरमें मैं रहता था, उसी घरमें रहनेके लिए उसे भी जगह दी गई थी, लेकिन जबतक मैं प्रिन्सिपल था, वह घर वास्तवमें

मेरा ही था। मैंने श्री० रुद्रको, जो उस समय दिल्लीमें थे, लिख दिया था—'आप गरमीके दिनोमें यहाँ आकर मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये।' मुझे इस बातका स्वप्नमे भी खयाल नही था कि वह लेडी इस बातपर आपत्ति करेगी। जब उस लेडीने सुना कि मेरे एक हिन्दुस्तानी मित्र आनेवाले है तो उसने मुझसे कहा—'मै किसी हिन्दुस्तानीके साथ एक मेजपर बैठकर खाना हर्गिज़ नही खा सकती।' मैंने उससे कहा—'आपकी यह बात क्रिश्चियन धर्मके बिलकुल प्रतिकूल है। आपको इतना अनुदार नही होना चाहिए।' जैसे-तैसे समझा-बुझाकर मैंने उसे राजी किया, लेकिन जब यह लेडी सनावरसे शिमला गई तो वहाँके ऐंग्लो इण्डियन लोगोने उसे बहका दिया। इन लोगोने उस लेडीसे कह दिया था—'इस मामलेमें हर्गिज़ मत दबना।' मै बड़ी आफतमें था। वह लेडी मेरी अतिथि थी, और सुप्रिण्टेण्डेण्ट होनेकी वजहसे उस घरमें रहनेका उसका कुछ अधिकार भी था। मै दिलमें सोचता था, 'जब श्रीयुत रुद्र इस लेडीकी इस बातको सुनेंगे तो वे क्या खयाल करेंगे?' मैंने फिर भी उस लेडीको समझाया, लेकिन वह भला क्यो मानने लगी! बड़ी मुश्किलमें जान थी। इधर मै अपनी नौकरीसे इस्तीफा नही दे सकता था, क्योंकि मै बिशप साहबसे काम करनेके लिए प्रतिज्ञा कर चुका था और उधर मै अपने प्रिय मित्र श्रीयुत रुद्रके साथ यह विश्वासघात भी नही कर सकता था। आखिरकार मैंने यह सब मामला श्रीयुत रुद्रको लिख भेजा और साथ ही यह भी निवेदन कर दिया—'अगर आप उचित समझें तो मै अपनी जगहसे इस्तीफा देनेके लिए तैयार हूँ।' श्रीयुत रुद्रने बडी उदारता-पूर्वक मुझे लिखा—'आप हर्गिज़ ऐसा न कीजिए। मै कदापि किसी लेडीको कष्ट नही देना चाहता।' परिणाम यह हुआ कि श्री० रुद्र गरमियोके दिनोमें सनावर नही आये। इस घटनासे मुझे अत्यन्त खेद हुआ। सबसे ज्यादा दुःख मुझे इस बातका था कि इस मामलेमे मुझे दब जाना पड़ा। यद्यपि यह कार्य मैंने श्री रुद्रकी पूर्ण

अनुमतिसे किया था, लेकिन इस घटनाने मेरी आँखें खोल दीं। इस घटनाने मुझे सिखला दिया कि पराधीनताके कारण हिन्दुस्तानियोंको कितने अपमान सहने पड़ते हैं। भारतवर्षकी पराधीनताकी बात मेरी आत्मामें जमकर बैठ गई और मैं अच्छी तरह समझ गया कि हिंदुस्तानियों और अंग्रेजोंमें इस प्रकारका भेद करना ईसाई धर्मके बिल्कुल प्रतिकूल है। मेरी आत्मा मुझे अपराधी ठहराती थी, लेकिन उस अवसरपर मैं कुछ कर नहीं सकता था। यदि महात्मा गान्धीजी-जैसी प्रबल आत्मा मुझमें होती तो मैं अन्त तक लड़ता-झगड़ता, लेकिन आखिरकार दिन-रात सोचनेके बाद श्री० रुद्रकी अनुमतिसे मैंने दब जाना ही ठीक समझा।"

प्रेम और सहानुभूति श्री० रुद्रके विशेष गुण थे। विद्यार्थियोंपर उनका जितना प्रभाव था और विद्यार्थी जितना उन्हें प्रेम करते थे, उतना किसी दूसरे अध्यापकको नहीं। सेण्ट स्टीफेन्स कालेजके अध्यापक मि० सी० बी० यंगने 'बम्बई क्रानीकल'में लिखा था—"हम लोगोंको जो प्रिन्सिपल रुद्रके साथ पढ़ाते थे, यह देखकर सचमुच ईर्ष्या होती थी कि लड़के उन्हें इतना अधिक प्रेम कैसे करते हैं! हम लोगोंके बड़े-बड़े लेक्चर और कठोर-से-कठोर दण्डोंसे जो असर लड़कोंपर नहीं पड़ता था, वह उनके एक शब्द या छोटेसे इशारेसे पड़ जाता था। छात्रोंपर उनका रौब भी काफी था और वे उनसे प्रेम भी करते थे।"

हिन्दुस्तानी ईसाइयोंपर यह अपराध लगाया जाता है कि उनमें देश-प्रेमकी मात्रा बहुत कम होती है। यद्यपि यह स्थिति अब बहुत-कुछ बदल चुकी है, पर प्रिन्सिपल रुद्र प्रारम्भसे ही बड़े देशभक्त थे और इसमें सन्देह नहीं कि उनके व्यक्तित्वने हिन्दुस्तानी ईसाइयोंकी मनोवृत्तिको स्वदेश-प्रेमकी ओर प्रेरित करनेमें बड़ी भारी मदद दी है। प्रिन्सिपल रुद्रका देश-प्रेम दिखावटी नहीं था। प्रोफेसर एन० के० सेनने उनके विषयमें लिखा था—

"प्रिन्सिपल रुद्र राजनीतिमे साम्प्रदायिक मताधिकारके बिल्कुल विरुद्ध थे और बड़े साहस-पूर्वक उन्होने हिन्दुस्तानी ईसाइयोंके अपने लिए अलग राजनैतिक अस्तित्व माँगने और साम्प्रदायिक चुनाव चाहनेका घोर विरोध किया था। वे कहते थे कि ऐसा करना हिन्दुस्तानी ईसाई-समाजके लिए सत्यानाशका कारण होगा।"

महात्मा गान्धीजीने 'यग इडिया'में लिखा था—

"प्रिन्सिपल रुद्र राजनीतिका अध्ययन बड़ी उत्सुकता और सावधानीके साथ करते थे। गरम-दलवालोमें उनके बहुतसे मित्र थे। यद्यपि वे इस मित्रताका प्रदर्शन नही करते थे, पर साथ ही वे उसे छिपाते भी नही थे। सन् १९१५से, जबसे मैं अफ्रीकासे हिन्दुस्तानको लौटा, जब कभी मैं दिल्ली जाता तो प्रिन्सिपल रुद्रके मकानपर ही ठहरता था। जबतक मैंने सत्याग्रहकी घोषणा नही की थी, तबतक तो कोई बात नही थी, पर रौलट-ऐक्टके मामलेमें सत्याग्रहकी घोषणा करनेके बाद मैंने प्रिन्सिपल रुद्रसे कहा—'मेरे आपके घरपर ठहरनेसे आपकी पोजीशनमें फर्क आ सकता है और आपके मित्रोकी स्थिति भी खराब हो सकती है, इसलिए आप मुझे दूसरी जगह ठहरने दीजिये।' बहुतसे अग्रेज उनके मित्र थे, ऊँचे अफसरोंसे भी उनकी मित्रता थी, उनका सम्बन्ध एक शुद्ध विलायती मिशनसे था और अपने कालेजमें वे प्रथम ही हिन्दुस्तानी थे, जो प्रिन्सिपलके पदपर नियुक्त हुए थे। इन सब बातोंका खयाल करके ही मैंने उनसे यह प्रार्थना की थी कि मुझे दूसरी जगह ठहर जाने दीजिये। इसका जो जवाब प्रिन्सिपल रुद्रने दिया, वह उन्हींके उपयुक्त था।

"मेरा धर्म उससे कही अधिक गम्भीर है, जितना कि बहुत-से आदमी खयाल करते हैं। मेरे कुछ विचार तो ऐसे हैं, जिन्हे मैं अपने जीवनका आधार कह सकता हूँ। इन विचारोंको मैंने गम्भीर और दीर्घकालीन प्रार्थनाओंके बाद स्थिर किया है। मेरे अग्रेज मित्र मेरे इन विचारोंको

भलीभाँति जानते हैं। आपको अपने यहाँ एक सम्मानित मित्र और अतिथिके तौरपर ठहरानेमें कोई गलतफहमी नहीं हो सकती और अगर कभी ऐसा मौका आवे भी कि मुझे दो चीजोंमेंसे एक चुननी पड़े, यानी एक ओर तो अंग्रेजोंपर मेरा जो प्रभाव है वह, और दूसरी ओर आप, तो मैं क्या चीज चुनूँगा, उसे मैं खूब जानता हूँ। तुम मुझे छोड़कर जा नहीं सकते।" तब मैंने कहा—"मुझसे मिलनेके लिए तो बीसियों तरहके आदमी आया करते हैं और अगर मैं दिल्लीमें आपके यहाँ ठहरा तो आपका घर तो एक तरहकी सराय हो जायगा!" प्रिन्सिपल रुद्रने जवाब दिया—"सच बात तो यह है कि मुझे इन आदमियोंका आना-जाना बहुत अच्छा लगता है। आपके मित्र भी, जो आपसे मिलनेके लिए आते हैं, मेरे लिए प्रिय हैं। मुझे इस बातसे प्रसन्नता होती है कि आपको अपने घर ठहराकर मैं अपने देशकी थोड़ी-सी सेवा कर रहा हूँ।"

महात्माजी आगे चलकर लिखते हैं—

"पाठक शायद इस बातको न जानते होंगे कि वायसरायको जो खुली-चिट्ठी मैंने खिलाफतके विषयमें लिखी थी, वह प्रिन्सिपल रुद्रके ही घर बैठकर लिखी थी। प्रिन्सिपल रुद्र और चार्ली ऐण्ड्रूजने उन चिट्ठीका संशोधन किया था। प्रिन्सिपल रुद्रके आतिथ्य-पूर्ण घरपर ही मैंने असहयोगकी कल्पना की थी और उसका विचार दृढ़ किया था।"

जब 'मैनचेस्टर-गार्डियन'का विशेष संवाददाता प्रिन्सिपल रुद्रसे आकर मिला था तो प्रिन्सिपल रुद्रने उससे कहा था—

"आज शिक्षित भारतीयोंकी नस-नसमें राष्ट्रियताकी शक्ति व्याप्त हो रही है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात जो मुझे जँचती है, वह है हिन्दुस्तानी ईसाइयोंकी मनोवृत्तिका परिवर्तन। बीस वर्ष पहले सिरसे लेकर पैरतक हिन्दुस्तानी ईसाई राष्ट्रियताके विरोधी थे, पर आज हिन्दुस्तानी ईसाई-समाजमें ऐसे-ऐसे नवयुवक पाये जाते हैं, जो राष्ट्रिय हिन्दुओंसे भी अधिक गरम विचारोंके हैं और हम ईसाइयोंमें जो सर्वश्रेष्ठ

है, वे ही राष्ट्रियताकी ओर अधिक आकर्षित हुए है। दत्त और पाल[1] को ही लीजिये।...अनेक नवयुवक तो ऐसे है, जिन्हें अंग्रेजोंकी शकल ही नही सुहाती। यह देखकर मुझे बुरा लगता है, क्योंकि जब मै बालक था, हमारे हृदयमें अंग्रेजोंके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। महात्मा गान्धीजीको भी यह देखकर बुरा मालूम होता है। महात्मा गान्धीसे बढकर अंग्रेजोंका दूसरा कोई प्रशंसक और मित्र नही है, पर वे भी नवयुवकोंके विचारोंको बदलनेमें असमर्थ है। अब भी समय है, यदि सरकार चाहे तो नवयुवकोंकी श्रद्धा अंग्रेजो तथा उनके न्यायमें कायम रख सकती है। पर अगर अब भी अंग्रेज जाति कठोरहृदय बनी रहे तो पुरानी मित्रताका स्थान खून-खराबी और अराजकता ले लेगी।"

जब प्रिन्सिपल रुद्र सोलनमें अपनी मृत्युशय्यापर पडे हुए थे, उस समय मि० ऐण्ड्रूज़ उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगे थे। एक दिन मि० ऐण्ड्रूज़ लार्ड लिटनके यहाँ, जो उन दिनो स्थानापन्न वायसराय थे, भोजन करने गये। उस समय प्रिन्सिपल रुद्रने उनसे कहा कि मेरा एक सन्देश लार्ड लिटनसे कह देना—

"आप सच्चे ईसाई सज्जन बन जाइये और ग़रीबोंपर रहम कीजिये। यदि आप इतना करेंगे, तो मेरे देशवासी आपका अनुगमन करेंगे।" इन्ही दिनो महात्माजीको भी, जो कई बार प्रिन्सिपल रुद्रके स्वास्थ्यके विषयमें चिट्ठी और तार द्वारा पूछ चुके थे, उन्होंने लिखवा भेजा था— "अभी बहुत दिनो तक ब्रिटिश जाति और ब्रिटिश नौकरोंकी हमें जरूरत पड़ेगी। हमारा कर्तव्य है कि हम अधिकाधिक ग़रीबोंके विषयमें चिन्तन करें और उनकी सुधि लें।"

लाला लाजपतरायजीने अपने पत्र 'पीपुल'के पाँचवी जुलाईके अंकमें लिखा था—

---

[1]डाक्टर एस० के० दत्त और मि० के० टी० पाल।

"यद्यपि मि० रुद्र ईसाई थे और दूसरी पीढ़ीके ईसाई थे, पर उनमे हिन्दुओंके कई गुण अच्छी मात्रामें पाये जाते थे—यानी नम्रता, मिलनसारी और अटूट अतिथि-सत्कार। ईसाई-समाजमें वही पहले आदमी थे, जिन्होने ईसाइयोंके पृथक् निर्वाचन और पृथक् अधिकारोंके खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द की। वे चाहते थे कि उनका ईसाई समाज राष्ट्रके जीवनके साथ सम्मिलित हो। दिल्लीमे यद्यपि वे शान्ति-पूर्वक अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे, पर हिन्दू-मुसलमानोमें झगडा होनेपर उनका काम दोनो दलोमे मेल करानेका ही होता था। अपने मिशन-कालेजमे, जिसके कि वे प्रिन्सिपल थे, उन्होने एक हिन्दूको वायस-प्रिन्सिपल बना दिया था। इसके बाद उन्होंने कोषाध्यक्षके पदपर एक हिन्दूको ही नियुक्त किया था। कालेजकी प्रबन्धकारिणी समितिमें भी हिन्दू और मुसलमान चुने जाते थे। यद्यपि कट्टर ईसाई लोग इन सुधारोंका विरोध करते थे, पर उन्होंने इस बातकी कभी परवाह नही की। उन्होने यह निश्चित कर लिया था कि सेण्ट स्टीफेन्स-कालेजमे किसी तरहका साम्प्रदायिक भेदभाव नही रह सकता। यह उनकी सस्थाकी अनिवार्य विशेषता थी और इस विशेषताको कायम रखनेके प्रश्नपर वे बिल्कुल दबते नही थे। सबको समान दृष्टिसे देखना और जातीय तथा साम्प्रदायिक भेदभावसे दूर रहना, उनके ईसाई-धर्मका एक सिद्धान्त था और अपने धार्मिक सिद्धान्तको वे भला कैसे छोड़ सकते थे? यही कारण था कि उनके जमानेमें सेण्ट स्टीफेन्स कालेज करीब-करीब राष्ट्रिय-कालेज ही बन गया था और सब सम्प्रदायोकी एकता तथा सम्मिलित शक्तिके सच्चे सिद्धान्तोंके अनुसार उसका सचालन होता था।"

कालेजमें इतने लोकप्रिय होनेके कारण उनके दो गुण थे. एक तो उनकी निस्वार्थता और दूसरे उनका सच्चा ईसाईपन। आठ यूरोपियन—आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिजके ग्रेजुएट—उनके नीचे काम करते थे और इस बातमें अपना गौरव मानते थे कि उन्हें प्रिन्सिपल रुद्र जैसे महानुभावकी

अध्यक्षतामें काम करनेका अवसर मिलता है। जब शाही कमीशन भारतमें आया था और श्री० ऐण्ड्रूजने उसके सामने गवाही दी थी तो मि० गोखलेने मि० ऐण्ड्रूजसे जिरह करते हुए यह बात खास तौरसे पूछी थी कि यूरोपियन लोग प्रिन्सिपल रुद्रके अधीन काम करनेमे किसी तरहकी आना-कानी तो नही करते। उस समय मि० ऐंड्रूजने यही उत्तर दिया था कि हम लोगोको इतनी अधिक प्रसन्नता किसी और चीजसे नही होती, जितनी प्रिन्सिपल रुद्रके अधीन काम करनेसे होती है। ब्रिटेनके वर्तमान प्रधान मन्त्री रैमजे मैकडानेल्ड भी उस समय इसी शाही कमीशनके सदस्य थे और उन्होंने भी मि० ऐण्ड्रूजसे यही सवाल किये थे। लार्ड आर्डलिगटन पर इस बातका बड़ा प्रभाव पड़ा था।

प्रिन्सिपल रुद्रका एक बड़ा गुण उनकी असाधारण नम्रता थी। महात्माजीने 'एक शान्त सेवक' शीर्षक लेखमें उनके इस गुणका वर्णन करते हुए लिखा था—

"भारतकी खास बीमारी उसकी राजनैतिक पराधीनता है और इसी कारणसे भारतभूमि केवल उन्हींको जानती-पहचानती और उन्हींका सम्मान करती है, जो खुले आम नौकरशाहीके साथ संग्राम करते हैं— उस नौकरशाहीके साथ जो फौज और जहाजी बेडा, रुपया पैसा और कूटनीतिकी चालोंसे अपनेको सुरक्षित करके हमारे साथ लड़ रही है। भारतभूमि इसी कारणसे स्वभावत. अपने उन पुत्रोको, जो चुपचाप नि स्वार्थभावसे और अपने आपको मिटाते हुए राजनैतिक क्षेत्रके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रोमे कार्य कर रहे हैं, कम पहचानती है। सेण्ट स्टीफेन्स कालेजके प्रिन्सिपल रुद्र इसी तरहके मातृभूमिके नम्र सेवकोमेंसे थे।"

प्रिन्सिपल रुद्र सच्चे ईसाई थे, पर उनका ईसाई-धर्म उदार था। जब कभी उनपर कोई संकट आ पडता, तो वे अपने अन्त.करणसे केवल एक प्रश्न करते—"प्रभु ईसामसीह इस स्थितिमे क्या करते?" उनका अन्त करण जो उत्तर देता, बस उसीके अनुसार कार्य करते, चाहे

उनके अफसर उसे पसन्द करें या नहीं, उससे जनता नाराज़ हो या खुश। महायुद्धके समयमे उनके तीनो बच्चे—दोनो लड़के और लड़की—विलायतमे थे। लड़की इग्लैण्डमे थी और दोनो लड़के फ्रान्समें और छोटा लडका तो युद्धमे लड रहा था। उन दिनो लडाईके भयंकर समाचार आ रहे थे और हताहतोकी सूचियाँ पत्रोमे निकल रही थी, पर प्रिन्सिपल रुद्र कभी विचलित नही हुए। हमेशा प्रसन्नचित्त ही दीख पड़ते थे। महात्माजीने ठीक ही लिखा था—"उनके सब कार्योका आधार धर्म था।"

११ जून सन् १९२५को श्री० रुद्र सोलनमें बीमार हुए। उनके सुपुत्र प्रोफेसर सुधीरकुमार रुद्र तथा उनकी पुत्रवधू उस समय उनके निकट थे। जो कुछ इलाज हो सका, किया गया; पर उनकी हालत सुधरी नही। अकस्मात् उसी दिन, जिस दिन मि० रुद्र बीमार हुए थे, श्री० ऐण्ड्रूज़ वहाँ जा पहुँचे और बराबर उनकी सेवा-शुश्रूषा करते रहे। प्रात-काल और सायंकालके समय वे प्रिन्सिपल रुद्रकी खाटके निकट बैठकर ईश्वर-प्रार्थना करते थे। एक दिन बीमारीके समयमे दिल्लीके सुप्रसिद्ध नागरिक श्री रघुबीरसिंह वहाँ पहुँचे। वे प्रिन्सिपल रुद्रके पुराने शिष्य थे। अपने शिष्यको देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। यद्यपि उस दिन उन्हे अत्यन्त कष्ट था और मुँहसे आवाज़ भी नही निकलती थी, पर उनका हृदय उमड़ आया और वे बोले—"रघुबीर, मेरे प्यारे लडके, तुम खूब आये! मुझे बडी खुशी है। मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे आनेसे मुझे बडा हर्ष है। तुम क्या आये, मेरे लिए तो मानो दिल्ली नगर ही आ गया। तुममे मैं दिल्ली नगर देखता हूँ, सम्पूर्ण दिल्ली नगर! तुममें मैं दिल्ली नगरका भविष्य देखता हूँ, दिल्लीके नवयुवकोको देखता हूँ। दिल्लीके लिए कार्य करो, दिल्लीमें शिक्षाका प्रचार करो, दिल्लीको धार्मिक बनाओ। ईश्वर तुम्हे खुश रखे और तुम फूलो-फलो।'

जिस शिक्षकने अपने जीवनके ३७ वर्ष दिल्लीमें शिक्षा-प्रचार करनेमे

लगा दिये, उनके हृदयमें अपने नगरके प्रति प्रेम होना स्वाभाविक ही था। एक दूसरे सज्जनसे उन्होंने कहा—"इस संसारसे जानेके लिए मैं बिल्कुल तैयार हूँ, जाते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता भी है। मुझे बिल्कुल दुःख नहीं है, थोड़ा-सा भी खेद नहीं, रंजका नामोनिशान नहीं। जबसे मैं अपनी माताके पेटमें आया, तबसे आजतक परमात्मा मुझपर प्रसन्न ही रहा है। मुझपर उनकी सदा कृपा ही रही है। मुझे किसी तरहका दुःख नहीं। मैं खूब प्रसन्न हूँ।" ये शब्द उन्होंने तब कहे थे, जब उन्हें साँस लेनेमें भी कठिनाई होती थी! अपने अन्तिम शब्द उन्होंने डाक्टरसे कहे थे—

"डाक्टर, अन्तिम नमस्कार, जो कुछ तुमने मेरे लिए किया, उसका बदला देनेके लिए मैं जीवित नहीं रहूँगा। नमस्कार! ईश्वरकी लीला अद्भुत है, अद्भुत है!"

२१ जूनके प्रातःकाल उनका स्वर्गवास हो गया। दिल्लीवालोंके कितने ही तार आये कि उनका शव दिल्ली लाया जाय, पर मि० ऐण्ड्रूज़-की यही सलाह थी कि शान्तिपूर्वक बिना भीड़भाड़ और दिखावेके उनको दफनाना ठीक होगा। उनके सुपुत्र प्रोफेसर रुद्र लिखते हैं—"हम लोग उन्हें समाधिस्थलको ले चले। यद्यपि आदमियोंकी संख्या थोड़ी ही थी, पर हम जानते थे कि हमारे साथ कितने ही आदमियोंका हृदय है। उस थोड़ेसे समुदायमें भी तरह-तरहके आदमी थे। कुछ अंग्रेज थे। कुछ तो मित्र थे और अनेक बिलकुल अपरिचित, कुछ स्कूलोंके लड़के थे, बाज़ारके आदमी थे, पोस्टमैन थे और कितने ही नौकर-चाकर ग़रीब थे! ये सभी लोग हमारे साथ प्रार्थनामें सम्मिलित हुए।"

गरीब लोगोंको वे ज़िन्दगी-भर नहीं भूले। भला, गरीब उन्हें आखिरी वक्तपर क्यों भूलते?

प्रिन्सिपल रुद्र एक हज़ार रुपये सेण्ट स्टीफेन्स कालेजके प्रिन्सिपलको

इसलिए दे गये कि उसके ब्याजसे हर साल कालेज और छात्र
छोटे-छोटे नौकरोंको भोज दिया जाय !

परमात्मा करे कि भारतीय ईसाई-समाजमें प्रिन्सिपल रुद्र जैसे
भक्त, छात्र-हितैषी, दीन-सहायक और सच्चे सेवक उत्पन्न हों, जो र
मुख उज्ज्वल करें तथा मातृभूमिका गौरव बढावे।

सितम्बर १९२९]

दीनबन्धु ऐण्डूज़

सर्वज्ञ परमात्मा भी कभी-कभी भौगोलिक भूल कर बैठता है। सुप्रसिद्ध अमेरिकन दार्शनिक एमर्सनके विषयमें अंग्रेजी विश्वकोषमे लिखा है, "एमर्सन एक बुद्धिवादी ब्राह्मण थे।" एक दूसरे लेखक Percival Chubb ने एमर्सनके निबन्धोकी भूमिकामे लिखा है—

"एमर्सनके बाज़-बाज़ विचार इतने ऊँचे उठते है कि हम उन्हे 'ब्राह्मण' कह सकते है।" उन्हे पढ़कर एक शिक्षित हिन्दू कह सकता है—'एमर्सन एक भौगोलिक भूल थे। उनका जन्म तो भारतवर्षमे होना चाहिए था।" यही बात विलायतके सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय एडवर्ड कार्पेण्टरके विषयमें कही जा सकती है, पर दूर जानेकी ज़रूरत क्या है? भारतमें ही आपको परमात्माकी दो चलती-फिरती भौगोलिक भूल दीख सकती है एक तो भारत-भक्त ऐण्डूज़ और दूसरी श्रीमती सरोजिनी नायडू। पहलेका जन्म कही काशी या प्रयागमे होना चाहिए था, दूसरेका पेरिस या न्यूयार्कमें। दोनोका अन्तर प्राच्य और पाश्चात्य मनोवृत्तिका अन्तर है। यहाँ दोनोकी तुलना करके किसीको छोटा-बड़ा कहना हमारा उद्देश्य नही है। पहलेके हम भक्त है, दूसरेके प्रशसक। यदि कोई हमसे पूछे कि प्राच्य और पाश्चात्यमे कितना अन्तर है तो हम यही उत्तर देगे कि जितना शान्तिनिकेतन स्थित वेणुकुजकी पर्णकुटी और अशान्त बम्बईके ताजमहल होटलके २०) रोज़वाले किरायेके कमरेमे! भौगोलिक भूलके कारण दीनबन्धु ऐण्डूज़का जन्म भारतके बजाय इंग्लैण्डके उत्तरी भागमें न्यू कॅसिल ऑन टाइन नामक नगरमें १२ फरवरी सन् १८७१ में हुआ था। आपके पितामह जान ऐण्डूज़ एक सुप्रसिद्ध शिक्षक थे। वे इतने सीधे थे कि अपने विद्यार्थियोको कभी नही पीटते थे। कहा जाता है कि एक बार उनके बहुत-से विद्यार्थियोने

उनके पास जाकर निवेदन किया था—"आप हमपर हद-से-ज्यादा कृपा करते हैं । अब आप इस बेतसे हमारी खबर लिया कीजिए ।"

मि० ऐण्ड्रूजके पिताका नाम जान एडविन ऐण्ड्रूज और माताका नाम मेरी शारलोट था । इस दम्पत्तिके चौदह सन्तान हुई, पाँच लडके और नौ लडकियाँ । इनमें तीन लडकियोका देहान्त हो गया, शेष ग्यारह अब भी जीवित है । मि० ऐण्ड्रूज अपने माता-पिताकी चतुर्थ सन्तान हैं । इतने बड़े कुटुम्बके पालन-पोषणमें उनके माता-पिताको बहुत कठिनाई उठानी पड़ी ।

मि० ऐण्ड्रूजकी माताके नाम कुछ धन-सम्पत्ति थी । उसका जो मुख्य ट्रस्टी था, वह उनके पिताजीका बडा मित्र था । वह ट्रस्टी बडा बेईमान निकला और इसने सट्टा खेलकर सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी । उस समय मि० ऐण्ड्रूज नौ वर्षके थे । उस समयकी दुर्घटनाका जिक्र करते हुए उन्होने कहा था—

"पिताजीने बैंकके मैनेजरके नाम तार देकर पूछा कि मेरी माताके नाम बैंकमें कितना रुपया बाकी है ? वहाँसे जवाब आया कि कुछ भी नही । इस समाचारको पाकर पिताजीके हृदयको जो धक्का लगा, उसकी याद मैं जिन्दगी-भर नही भूल सकता । पिताजीको इसलिए और भी अधिक दुःख था कि वह रुपया मेरी माताका था । इसके सिवा एक ऐसे मित्रने, जिसको वे सबसे अधिक प्रेम करते थे, उनके साथ इस प्रकार विश्वासघात किया था । पिताजी दुःखके कारण बिल्कुल चुप रहे । मेरी माँने ही यह सम्पूर्ण बात मुझे सुनाई । माँको उतना दुःख अपनी सम्पत्तिके नष्ट होनेका नही था, जितनी उन्हें पिताजीके लिए चिन्ता थी । जब सन्ध्या हुई तो हम सबने मिलकर नित्यके नियमानुसार प्रार्थना की । पिताजीने बाइबिलका वह वाक्य पढ़ा—'यदि मेरा कोई शत्रु इस प्रकार विश्वासघात करता तो मैं उसे सहन कर सकता था, लेकिन यह कार्य तूने—मेरे परिचित मित्र ने—किया, जिसपर मेरा इतना अधिक विश्वास था ।' इस वाक्यको पढनेके

वाद पिताजी बिल्कुल चुप हो गये। उस समय मैंने देखा कि वे अपने आँसुओंको रोकनेकी चेष्टा कर रहे हैं। उसके वाद हम सबने घुटने टेक-कर प्रार्थना की। पिताजीकी उस दिनकी सम्पूर्ण प्रार्थनाका तात्पर्य यही था—'हे परमात्मा, मेरे मित्रने जो अपराव किया है, तदर्थ उसे क्षमा कीजिए। उसके हृदयमें ऐसी प्रेरणा कीजिए कि वह अपनी भूलको समझ-कर पश्चात्ताप करे और उत्तमतर रीतिसे अपना जीवन व्यतीत करे।' अपने पिताजीकी यह प्रार्थना मुझे जीवन-भर याद रहेगी। वे हम सबको समझाया करते थे—'देखो, तुम लोग अपने हृदयमें मेरे मित्रके प्रति द्वेष-भाव मत रखना। मैं मानता हूँ कि उसने घोर अपराव किया है, लेकिन मुझे आशा है कि वह आगे चलकर अपने अपरावको स्वीकार कर लेगा।' लोगोंने उनसे कहा भी कि आप इसपर मुकदमा चलाइए, पर पिताजीने उन लोगोंको डाँट वता दी।"

माताजीके इस रुपयेके व्याजसे कुटुम्बके पालन-पोपणमें वड़ी मदद मिलती थी और उसके अभावसे सबको वड़ी तकलीफ होने लगी। निर्धन आदमियोंकी वस्तीमें एक मकान लेकर सबको रहना पड़ा। मि० ऐण्ड्रूज और उनके भाई-वहनोंको खानेके लिए सूखी रोटी छोड़कर और कुछ नहीं मिलता था, पर इस दुर्घटनासे सारे कुटुम्बका प्रेम-बन्धन और भी दृढ़ हो गया। मि० ऐण्ड्रूज कहते हैं—"यह हम लोगोंके लिए सर्वश्रेष्ठ दैवी आशीर्वाद था कि हम अत्यन्त निर्धन हो गये।" इसमें सन्देह नहीं कि आज मि० ऐण्ड्रूज सैकड़ो गरीब आदमियोंके दु.खोंके समझने तथा दूर करनेमें जो समर्थ हो सके हैं, उसका मुख्य कारण यही है कि वे गरीबीके तमाम दु.खोंको भोग चुके हैं और अब भी गरीब ही हैं।

नौ वर्षकी उम्र तक मि० ऐण्ड्रूजको उनके माता-पिताने घरपर ही पढाया और फिर बर्मिंघमके किंग एडवर्ड हाई स्कूलमें दाखिल करा दिया। क्लासमें सबसे छोटे वालक होनेके कारण स्कूलके वड़े लड़के उन्हें अक्सर तंग किया करते थे। मि० ऐण्ड्रूज अपनी कक्षाके सर्वश्रेष्ठ विद्या-

र्थियोमेंसे थे। स्कूलमें दाखिल होनेके बाद ही उनकी फीस माफ हो गई और एक पौण्ड प्रतिमासकी छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। जब स्कूल छोड़कर वे कालेजमें गये तो पचास पौण्डकी वार्षिक छात्रवृत्ति उन्हे मिली। विश्वविद्यालयमे चार वर्ष पढनेके बाद उन्हे अस्सी पौण्डकी वार्षिक वृत्ति मिली थी। मि० ऐण्ड्रूजके माता-पिताको उनकी शिक्षाके लिए कुछ भी खर्च नही करना पडा था। इन वजीफोंसे वे अपना सब खर्च चला लेते थे और अपने भाई-बहनोकी भी कुछ मदद किया करते थे। मि० ऐण्ड्रूजको लैटिन और ग्रीक भाषाकी कविता करनेका बडा शौक था। गणितमे उनका मन कभी नही लगता था, उससे वे घृणा करते थे। साहित्यसे उन्हे अत्यन्त प्रेम था और वे पुस्तकालयमे बहुत-सा समय बिताया करते थे। लडकोने उनकी पढनेकी प्रवृत्तिको देखकर उन्हे 'प्रोफेसर' की उपाधि दे रक्खी थी। बहुत पढ़नेके कारण वे कुछ झुककर चलते थे—कमर बिलकुल सीधी करके नही, इसलिए लड़के उन्हे चिढाया करते थे—"लो, ये आये प्रोफेसर साहब!" जब उन्होने कैम्ब्रिज विश्व-विद्यायलकी सर्वोच्च परीक्षा दी तो वे उसमें बडी योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण हुए। उनके परीक्षकोने उनसे कहा था—"पिछले दस वर्षमें केवल एक विद्यार्थीके नम्बर आपसे अधिक आये थे।"

मि० ऐण्ड्रूज केम्ब्रिज-यूनिवर्सिटीके पैम्ब्रोक-कालेजके फैलो बना लिये गये और थियोलाजी विभागके वायसप्रिंसीपल भी बन गये। यदि वे उसी कालेजमें बने रहते तो केम्ब्रिज-यूनिवर्सिटीमें उच्च-से-उच्च पदतक पहुँच सकते थे, पर उन्हे वह जीवन पसन्द नही आया और उसके बजाय उन्होंने लन्दनके गन्दे मुहल्लोंके गरीब भाई-बहनोकी सेवाका कार्य उत्तमतर समझा। उनके जीवनके चार वर्ष वालवर्थ (दक्षिण-पूर्व लन्दन) और सण्डरलैण्डके मजदूरोंके बीचमें कार्य करते हुए बीते। उन दिनो विलायतमें मजदूरोको प्रति सप्ताह पच्चीस शिलिंग वेतन मिलता था। मि० ऐण्ड्रूजने दस शिलिंग प्रति सप्ताहपर अपनी गुजर करना शुरू किया, क्योंकि वे

अविवाहित थे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि दस शिलिंग सप्ताहके पहले ही खत्म हो जाते थे और उन्हें भूखे रहना पड़ता था। गरीबोंको पेट भरनेमें जो कठिनाई होती है, उसका उन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया। चार वर्षतक इस प्रकारका जीवन व्यतीत करनेके बाद उनका स्वास्थ्य खराब हो गया और डाक्टरोंकी सलाहसे आपको यह कार्य छोड़ देना पड़ा।

भारतके प्रति मि० ऐण्ड्रूजका प्रेम बाल्यावस्थासे ही था। कहीं किसी किताबमें उन्होंने पढ़ा था कि हिन्दुस्तानके आदमी भात बहुत खाते हैं, इसलिए आप भी अपनी मासे ज़िद करके भात बनवाते थे, और कहते थे, "मैं हिन्दुस्तानको जाऊँगा।" मा बहुत हँसती और कहती— "चार्ली, तुम किसी-न-किसी दिन हिन्दुस्तान ज़रूर जाओगे।" माताकी यह भविष्यवाणी आगे चलकर सत्य सिद्ध हुई और मि० ऐण्ड्रूज २० मार्च १९०४ को भारत आ पहुँचे। २० मार्चको वे अपना द्वितीय जन्मदिवस मानते हैं। इस प्रकार वे 'द्विज' हैं! लन्दनसे विदा होते समय वे उस बस्तीमें, जहाँ उन्होंने गरीबोंके बीच साढ़े तीन वर्ष तक काम किया था, गये। वहाँकी एक प्रेमी भोली-भाली बुढ़िया उनसे बोली—"ऐण्ड्रूज! मैंने सुना है कि हिन्दुस्तानके आदमी नरमांस-भक्षी हैं, आदमियोंको खा जाते हैं! मैं दिन-रात तुम्हारे लिए ईश्वरसे प्रार्थना करती रहूँगी कि वे कहीं तुम्हें खा न जावें।"

मि० ऐण्ड्रूज केम्ब्रिज-मिशनके मिशनरी बनकर भारत आये थे और आते ही सेण्ट स्टीफेन्स-कालेजमें अध्यापक हो गये। यह कालेज मिशनरियोंका है। साल भर बाद अधिकारियोंका विचार हुआ कि मि० ऐण्ड्रूजको प्रिन्सिपल बना दिया जाय। पंजाबके लार्ड बिशपने मि० ऐण्ड्रूजसे कहा—"किसी अंग्रेजको ही प्रिन्सिपल बनना चाहिए, क्योंकि हिन्दुस्तानी माता-पिता अंग्रेज प्रिन्सिपल पर ही विश्वास करेंगे। हिन्दुस्तानी प्रिन्सिपल कालेजमें अनुशासन भी न रख सकेगा और संकटके समय वह

विद्यार्थियोंमें दब जायगा, इसलिए आप प्रिन्सिपल बनना स्वीकार कर लीजिए।" मि० ऐण्ड्रूजने जवाब दिया—

"श्रीयुत सुशीलकुमार रुद्र इस कालेजमें बीस वर्षसे प्रोफेसर हैं और वे इस पदके सर्वथा योग्य हैं। उन्हींको प्रिन्सिपल बनाइये। अगर वर्ण-भेदके कारण वे प्रिन्सिपल नहीं बनाये गये और कोई अंग्रेज प्रिन्सिपल बनाया गया तो मैं इस कालेजसे त्याग-पत्र दे दूंगा। मैं वर्ण-भेदकी नीतिको कदापि सहन नहीं कर सकता।" परिणाम यह हुआ कि मि० रुद्र ही प्रिन्सिपल बनाये गये। यह घटना जहाँ मि० ऐण्ड्रूजकी न्यायप्रियता और स्वार्थत्यागको प्रकट करती है, वहाँ उनसे उनके स्वभावकी कुंजी भी मिल जाती है। वे कहा करते हैं कि यदि कोई अंग्रेज भारतकी कुछ भलाई करना चाहे तो उसे धन, पद और नेतृत्वके प्रलोभनोंसे बचना चाहिए, उसे सेवक बनना चाहिए, लीडर या शासक नहीं। मि० ऐण्ड्रूज-को अपने कार्यमें पिछले छब्बीस वर्षमें जो सफलता मिली है, उसका मूल कारण यही है कि उन्होंने धन, पद और नेतृत्वके प्रलोभनोंसे अपनेको सदा ही बचाया है।

मि० ऐण्ड्रूजके भारतमें आते ही ऐंग्लो इण्डियन लोगोंने उन्हें उपदेश देना शुरू किया था—"कभी किसी हालतमें किसी 'नेटिव' से मत दबना और किसी नेटिवके दिलमें यह ख्याल भी न पैदा होने देना कि वह तुमसे ऊँचा है। हिन्दुस्तानी लोग नीच जातिके हैं और हम लोग अपनी तलवारके बलपर हिन्दुस्तानमें राज्य करते हैं। आप हिन्दुस्तानियोंके साथ मेहरबानीका बर्ताव भले ही करें, लेकिन हमेशा सावधान रहें और अंग्रेजपनके गौरवको आप कभी न छोड़ें।"

पर मि० ऐण्ड्रूजने इन सदुपदेशोंकी ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया, और उन्होंने वर्ण-विद्वेषको दूरसे ही नमस्कार कर दिया। मि० ऐण्ड्रूजका झुकाव राष्ट्रिय आन्दोलनकी ओर होने लगा। सन् १९०६ की कलकत्तेकी कांग्रेसमें वे दर्शककी भाँति आकर सम्मिलित हुए। मि० गोखलेने आपका

परिचय इसी कांग्रेससे प्रारम्भ हुआ था। जब सन् १९०६ में लाला लाजपतरायको देश-निकालेका दण्ड दिया गया तो मि० ऐण्ड्रूजने अपने एक व्याख्यानमें सरकारके इस कार्यकी निन्दा की। सेण्ट स्टीफेन्स कालेजकी डिबेटिंग सोसायटीमें भी आपके सभापतित्वमें इस आशयका निन्दात्मक प्रस्ताव पास हुआ। मिशनरी लोग घबराये, क्योंकि कालेज मिशनवालोंका था और उसे सरकारसे मदद मिलती थी। जब लालाजी छूटकर आये तो कालेजके लड़कोंने प्रिन्सिपल रुद्रकी अनुपस्थितिमें मि० ऐण्ड्रूजसे कहा—"हमारे पूज्य नेता लाला लाजपतरायजी छूट आये हैं, इसलिए कालेजमें हम रोशनी करना चाहते हैं। आपकी क्या सम्मति है?" मिस्टर ऐण्ड्रूजने जवाब दिया—"ज़रूर, आप लोग पूरी-पूरी दिवाली मनाइये।" दिवाली मनाई गई। इस कारण ऐंग्लो-इण्डियन लोग मि० ऐण्ड्रूजसे और भी ज्यादा चिढ गये। मि० ऐण्ड्रूज इस बातको अच्छी तरह समझ गये कि मिशनरी कालेजकी नौकरी करते हुए वे राष्ट्रिय आन्दोलनमें भाग नहीं ले सकते। इसलिए सन् १९१४ में आपने यह नौकरी छोड़ दी।

जब सन् १९१३ में दक्षिण अफ्रीकामें महात्मा गान्धीजीका सत्याग्रह-संग्राम चल रहा था, उस समय राजर्षि गोखलेने उसकी सहायताके लिए भारतमें बहुत-कुछ आन्दोलन और चन्दा किया था। मि० ऐण्ड्रूजने उस समय गोखलेकी बड़ी सहायता की और अपनी ज़िन्दगीभरकी कमाईके जो चार हज़ार रुपये उनके पास थे, वे सब उन्होंने गोखलेको चन्देमें दे दिये। इसके बाद वे गोखलेके आदेशानुसार दक्षिण अफ्रीकाको भी गये थे। वहाँ जाकर उन्होंने जनरल स्मट्सके साथ समझौता करानेमें महात्माजीको बड़ी सहायता दी थी। स्वयं महात्माजीने अपने एक भाषणमें कहा था—"मुझसे केप-टाउनमें लोगोंने कहा और मुझे निःसन्देह इस बातपर विश्वास है कि जिन-जिन राजनीतिज्ञों और प्रधान मनुष्योंसे ऐण्ड्रूज मिले, उन सबके हृदय ऐण्ड्रूजके विचारोंसे प्रभावित हो गये थे।"

दक्षिण अफ्रिकासे मि० ऐण्ड्रूज विलायत गये और वहाँसे लौटकर सन् १९१४ में दिल्ली आ पहुँचे। जून १९१४ में आप शान्तिनिकेतन आ गये और तबसे शान्तिनिकेतन ही आपका घर है। उस समय मि० ऐण्ड्रूजके स्वागतमें कविवर श्री रवीन्द्रनाथने जो कविता बनाई थी वह यहाँ दी जाती है—

'प्रतीचीर तीर्थ होते प्राण-रसधार,
हे बन्धु, एनेछो तुमि, कोरि नमस्कार।
प्राची दिल कण्ठे तव वर माल्य तार,
हे बन्धु, ग्रहण करो, कोरि नमस्कार!
खुलेछे तोमार प्रेमे आमादेर द्वार,
हे बन्धु, प्रवेश करो, कोरि नमस्कार!
तोमारे पेयेछि मोरा दान रूपे जाँर,
हे बन्धु, चरणे ताँर कोरि नमस्कार!"

मि० ऐण्ड्रूजने मातृभूमि भारतकी सेवाके लिए जो-जो कार्य पिछले छब्बीस वर्षमें किये हैं, समाचारपत्रोंके पाठक उनसे कुछ-न-कुछ परिचित ही हैं। इन सब कार्योंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शर्तबन्दीकी कुली-प्रथाका बन्द कराना है। यह प्रथा सन् १८३५-३६ से जारी थी और उसके कारण सहस्रों भारतीय स्त्रियोंके सतीत्वका नाश और भारतीय पुरुषोंका नैतिक पतन हुआ था। दासत्व प्रथाके इस नवीन संस्करणको बंद कराना आसान काम नहीं था, क्योंकि सर्व-शक्तिशाली गोरे प्लाण्टर और पूँजीपति इसके समर्थक थे पर मि० ऐण्ड्रूजके निरंतर उद्योग और आन्दोलनसे यह प्रथा उठ गई। यद्यपि उन्हें इसमें भारतीय नेताओंसे काफी सहायता मिली, तथापि मुख्य कार्य उन्हींका था। इसके लिए दो बार उन्हें फिजीकी यात्रा करनी पड़ी थी।

प्रवासी भारतीयोंके तो आप पूरे-पूरे सहायक हैं और उनकी दशा सुधारनेके लिए आपने संसारके प्रायः सभी भागोंमें जहाँ भारतीय बसे

हुए है, यात्रा की है। फिजी, आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूज़ीलैण्ड, पूर्व अफ्रीका दक्षिण अफ्रीका, ट्रिनीडाड, ब्रिटिश-गायना, सुरीनाम, मलाया, सीलोन इत्यादि उपनिवेशोंके पच्चीस लाख निवासी जितने अंशोंमे आपके ऋणी है, उतने किसी दूसरेके नही। शान्तिनिकेतन और राष्ट्रिय शिक्षाके लिए जो कार्य आपने किया है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नही। मजदूर-आन्दोलनमें भी आपका जबरदस्त हाथ रहा है। पंजाबके मार्शल-लाके बाद आपने वहाँ पहुँचकर बड़ा काम किया था।

अकाल, बाढ, हड़ताल आदिके समय आपने दीन-दुःखियोंकी जो सेवा की है, उससे समाचारपत्रोंके पाठक परिचित ही है। आपकी सेवाओंका विस्तृत वर्णन स्थानाभावके कारण यहाँ नही किया जा सकता।

मि० एण्ड्रूज़के व्यक्तित्वमें एक अद्भुत आकर्षण है। सहृदयता, सच्चाई, सहिष्णुता और सरलताका ऐसा सुन्दर सम्मिश्रण केवल एक ही स्थानमे पाया जा सकता है, यानी भारतीय माताओंमें। अनेक भारतीय नेताओंने मि० ऐण्ड्रूज़की प्रशंसा की है। महात्माजीने लिखा है —"सी० एफ० ऐण्ड्रूज़से बढकर ज्यादा सच्चा, उनसे बढकर विनीत और उनसे अधिक भारत-भक्त इस भूमिमे कोई दूसरा देश-सेवक विद्यमान नही।" श्रीविजयराघवाचारीने नागपुर-कांग्रेसके सभापतिके पदसे कहा था—"रेवरेण्ड ऐण्ड्रूज़में हावर्ड और काउपर दोनोंकी मानव-जाति-सेवाका भाव सम्मिलित है।" लालाजीने कलकत्तेकी स्पेशल कांग्रेसमें कहा था—"केवल एक अंग्रेज ऐसा है, जिसका नाम हमें कृतज्ञतापूर्वक लेना चाहिए, वह है मि० ऐण्ड्रूज़ और वह हमारे घरके ही है।" पर इन प्रशंसाओंसे मि० ऐण्ड्रूज़के व्यक्तित्वकी असलियतपर विशेष प्रकाश नही पड़ता। महात्माजीने एक बार बातचीतमे कहा था—"ऐण्ड्रूज़ तो पुरुष-वेशमें स्त्री है। उनका हृदय स्त्रियोंके हृदयकी तरह कोमल है।" यह एक वाक्य मि० ऐण्ड्रूज़के व्यक्तित्वको प्रकट करनेके लिए पर्याप्त है। उनके हृदयकी कोमलता—उनकी सहृदयता ही उनके जीवनकी सफलताका

मूल कारण है। यह सहृदयता ही उन्हें भारतीयोंके दुःख दूर करनेके लिए संसार-भरमें घुमाती है और यही उनसे अधिक-से-अधिक परिश्रम कराती है। मि० ऐण्ड्रूजको अपनी मातृभूमि इग्लैण्डसे भी अत्यन्त प्रेम है, पर उनका यह स्वदेश प्रेम उच्च कोटिका है। स्वदेश-प्रेमी होना आसान है, लेकिन जिस समय अपना देश ग़लत रास्तेपर जा रहा हो, उस समय स्वदेश-विरोधी होना कठिन है।

बाइबिलमें एक जगह लिखा है—"परमात्माका राज्य बच्चोंके लिए है," अर्थात् भोले-भाले आदमी ही उसके अधिकारी है। मि० ऐण्ड्रूजमे यह भोलापन काफी अधिक मात्रामें पाया जाता है और उनको धोखा देना आसान है, इस कारण वे राजनैतिक नेता होनेके सर्वथा अयोग्य हैं। उनका मुख्य कार्य सुलह कराना है—पूर्व और पश्चिममें, मजदूरो और पूँजी-पतियोमें, प्रजा और सरकारमे, महात्मा गान्धी और कविवर रवीन्द्रनाथमे। मि० ऐण्ड्रूजके हृदयकी कोमलता उनके व्यक्तित्वकी प्रबलताके मार्गमे बाधक है। वे सदा महात्माजी या कविवरका आश्रय ढूंढते है और पहलेके शिष्य और दूसरेके दूत बननेकी निरन्तर लालसाने उनके व्यक्तित्वकी स्वाधीनताको कुछ धक्का अवश्य पहुँचाया है।

मि० ऐण्ड्रूजकी परिश्रमशीलता अद्भुत और आश्चर्यजनक है। उन्होने विवाह नही किया और सच्चरित्र होनेके कारण उनकी सारी शक्तियाँ संचित रही है, पर इस बातका उन्हे खेद अवश्य है कि वे विवाह नही कर सके। एक बार मैंने उनसे धृष्टता-पूर्वक यह प्रश्न किया कि आपने विवाह क्यो नही किया? उसके उत्तरमे उन्होने कहा था—

"विवाहित जीवनको मै सदा ही स्त्री-पुरुषोंके लिए प्राकृतिक और स्वाभाविक जीवन समझता रहा हूं। गृहस्थ-जीवन ही सर्वोत्कृष्ट जीवन है। अविवाहित रहनेसे मेरे जीवनका विकास रुक गया और एकागी बन गया। पुरुष जीवनका एक महत्त्वपूर्ण अग 'पितृत्व' है और मै जीवनभर इस पितृत्वके पवित्र गौरवको नही समझ सकूंगा। मैं राष्ट्रिय आन्दोलनमे

भाग लेनेका निश्चय कर चुका था, इस कारण मिशनकी नौकरीका कुछ ठिकाना नहीं था। रुपये-पैसे पास नहीं थे, घर-गृहस्थी कैसे चलती ? इसलिए आर्थिक कारणोंसे मैं विवाह नहीं कर सका।"

'पितृत्व' के गौरवको वे भले ही न जानें, पर 'मातृत्व' के सर्वोच्च गुण कोमल स्नेहको वे खूब समझते हैं। यह प्रेम उन्होंने अपनी दयालु मातासे पाया है। मि० ऐण्ड्रूजकी माता जब विलायतमें मृत्यु-शय्यापर पड़ी थीं, तब उन्होंने मि० ऐण्ड्रूजको भारतसे अपने पास बुलाया था। मि० ऐण्ड्रूज उन दिनों राजर्षि गोखलेके साथ कार्य कर रहे थे। उन्होंने लिखा—'दक्षिण अफ्रीकामें भारतीय स्त्री-पुरुष बड़े संकटमें हैं। आज्ञा हो तो उनकी सेवामें जाऊँ, नहीं तो आपकी सेवामें आऊँ।" उन्होंने जब भारतीय स्त्री-पुरुषोंके कष्टका वृत्तान्त पढ़ा तो उनका हृदय द्रवित हो गया और अपनी कुछ चिन्ता न कर उन्होंने मि० ऐण्ड्रूजको लिख भेजा था—

"दक्षिण अफ्रीका जाकर भारतीयोंकी सहायता करो, और जबतक तुम्हारा कार्य समाप्त न हो, मत लौटो।" मि० ऐण्ड्रूजने माताजीकी आज्ञाका पालन किया। इधर वे दक्षिण अफ्रीका गये, उधर माताका स्वर्गवास हो गया ! तबसे स्नेही माताका यह सहृदय पुत्र 'भारत-माता' को ही अपनी माता समझकर उनकी सेवामें निरन्तर लगा हुआ है। जब अनेक अंग्रेज गवर्नरों, वायसरायों और साम्राज्यवादियोंके नाम साम्राज्यके साथ विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो जायेंगे, उस समय भी इस एक अंग्रेजका नाम भावी भारतसन्तानके कृतज्ञता-पूर्ण हृत्पटलपर अमिट रूपसे लिखा रहेगा।

नवम्बर १९३०]

श्री सी० वाई० चिन्तामणि

"चिन्तामणिजीसे नहीं मिलोगे ?"—ये शब्द एक दिन श्री कृष्णराम मेहताने, जब मैं उनके निकट ठहरा हुआ था, मुझसे कहे। बात सन् १९१९ या १९२०की है। 'लीडर' उन दिनों साउथ रोडसे निकलता था। कोरमकोर हिन्दीवालोंमें जो एक अवांछनीय दुर्गुण अपनेको छोटा समझनेकी प्रवृत्ति, पाया जाता है, वह मुझमें भी था, इसलिए सिटपिटा गया। इसके सिवा अँग्रेजी बोलनेका अभ्यास भी बहुत कम था। राजकुमार-कालेज (इन्दौर) के प्रिन्सिपल द्वारा पूछे जानेपर—when did you come Mr Benarsi Das ?—मेरे मुँहसे निकल गया था—'I came tomorrow. पर जब तुरन्त ही खयाल आया कि tomorrow के मानी तो आनेवाले कलके है, तो मैंने हड़बड़ाकर कहा—'Yesterday, Yesterday, Yesterday.' इसलिए मुझे डर था, यदि कहीं ऐसी ही भूले मि० चिन्तामणिके सामने हो गई तो सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा, 'लीडर'में मेरे लेख छपने बन्द हो जायँगे। यह सोचकर मैंने मेहताजीसे यही कहा—"मुझे तो श्रद्धेय चिन्तामणिजीसे मिलनेमें सकोच होता है। उनका समय कीमती है, और फिर मैं बात भी क्या करूँगा ? अभी रहने दीजिए। फिर कभी देखा जायगा।" पर मेहताजी न माने और चिन्तामणिजीके कमरेमें ले ही गये।

पाँच मिनटके अन्दर ही मुझे पता लग गया कि मैं एक अत्यन्त सहृदय व्यक्तिके सम्मुख उपस्थित हूँ। करीब आध घंटे बातचीत हुई। उस दिनको मैं अपने जीवनका एक स्मरणीय दिवस मानता हूँ।

श्री विश्वनाथप्रसादजीने (जो उन दिनों 'लीडर'के सहायक सम्पादक थे,) मेरी पुस्तक 'प्रवासी भारतवासी'का उसी समय ज़िक्र कर दिया और ऐसे शब्दोंमें किया, जिससे प्रकट होता था कि अलंकार-शास्त्रसे अनभिज्ञ होते हुए भी उन्होंने अत्युक्ति अलंकार अवश्य सीख लिया है। चिन्तामणिजीने उसी समय कहा—"प्रवासी भारतवासीके बारे में हम अग्रलेख' लिखेंगे।"

मेरी क्षुद्र पुस्तकके विषयमें 'लीडर'में अग्रलेख निकलेगा, इस विचारसे मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ'। इसके सिवा चिन्तामणिजीने कहा—"बराबर 'लीडर'के लिए लिखते रहिये।" उनके उत्साहप्रद शब्दोंने मुझे आश्चर्यमें डाल दिया। महान् पुरुषोंके व्यक्तित्वके कितने ही पहलू हुआ करते हैं और उनमें परस्पर विरोध भी हो सकता है। पत्रकार-शिरोमणि चिन्तामणि और राजनैतिक नेता चिन्तामणिमें अन्तर हो सकता है और सम्भवतः उनके पालिटिकल विरोधियोंको उनका जो रूप दीख पड़ता है, वह बहुत मनोहर नहीं है; पर हमें इस अवसरपर उनके सम्पादकीय गुणोंपर ही एक दृष्टि डालनी है।

पिछले वर्षोंमें इन पंक्तियोंके लेखकको न-जाने कितनी बार चिन्तामणिजीसे बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है और 'लीडर'के एक क्षुद्र लेखककी हैसियतसे तथा अपने व्यक्तिगत मामलोंमें भी उनसे कितनी ही बार काम पड़ा है पर प्रत्येक अवसरपर चिन्तामणिजीने सहायता ही दी है। उनके अहसानका मधुर बोझ भारी ही होता गया है और प्रथम-मिलनके अवसरपर उनकी सहृदयताकी जो छाप मेरे हृदयपर पड़ी थी, उसमें निरन्तर गम्भीरता ही आती गई है।

साधारणतः पत्रकारोंके जीवनमें—और खास तौरपर हमारे जैसे

'ढाई कालमका यह अग्रलेख कुछ दिनों बाद 'लीडर'में छपा भी था।

मामूली हिन्दी-लेखकके जीवनमें—ऐसे संकटमय दिनोंका आना स्वाभाविक ही है, जब सहानुभूतिकी अत्यन्त आवश्यकता होती है और जब एक पैसेका मूल्य एक रुपयेसे भी अधिक हो जाता है। इन पंक्तियोंका लेखक उन दिनोंकी याद कदापि नही भूल सकता, जब 'लीडर' और उनके सम्पादक मि० चिन्तामणिकी कृपासे दो-ढाई वर्ष तक अनेक प्राणियोंका, जिनमें कई अब इस संसारमें नही है, भरण-पोषण हुआ था।

स्वय अधिक-से-अधिक कष्टमें होते हुए भी वे अपने तुच्छातितुच्छ सहयोगियोको नही भूलते। कुछ वर्ष पहलेकी बात है। चिन्तामणिजी बहुत बीमार थे। दो बार पैरका आपरेशन कराना पड़ा था। अत्यन्त निर्बल हो गये थे। चलना-फिरना तो असम्भव था ही लिखना-पढना भी बिल्कुल बन्द था। जब उन्होंने मेरी एक गार्हस्थिक दुर्घटना और आर्थिक संकटका वृत्तान्त अपने सुपुत्र श्री बालकृष्णरावसे सुना तो तुरन्त पत्र भिजवाया। श्री बालकृष्णरावने उन्हींके शब्द मुझे लिख भेजे—

"Write to Pandit Benarsi Das that the columns of the 'Leader' are open to him as ever and that any contributions he may send will very gladly be published....and I shall thus be able to do my bit for one whom...." इसके आगे जो शब्द चिन्तामणिजीने लिखाये थे, उनको यहाँ उद्धृत करनेकी धृष्टता मैं नहीं करूँगा। सिर्फ इतना ही कहूँगा कि २८ अप्रैल १९३०के 'भारत'में श्रीयुत 'वामन'ने, जो राजनैतिक पुरुषोंके स्केच लिखनेमें हिन्दी-जगत्‌में अद्वितीय है, चिन्तामणिजीकी उदारताके विषयमें जो कुछ लिखा था, वह अक्षरश. सत्य है। वामनजीके शब्द ये है—"अपने छोटोंको आगे बढानेके तथा प्रोत्साहित करनेके लिए श्री चिन्तामणिजी जितने उत्सुक रहते है, उतना मैंने और किसी दूसरे नेताको नही देखा।'

चिन्तामणिजी भारतीय पत्रकारोमें अग्रगण्य है। यदि हमारे देशके

छः सर्वोत्तम पत्रकारोंकी सूची बनाई जाय तो उसमे भी चिन्तामणिजीका नाम काफी ऊँचा रहेगा। दैनिक पत्र-सम्पादन वे जिस योग्यतासे कर सकते है, उस योग्यतासे शायद ही कोई भारतीय पत्रकार कर सके, फिर भी किसी छोटे-से-छोटे पत्रकार या लेखकसे मिलते समय वे कभी अपना बड़प्पन नही दिखाते। एक दिन कलकत्तेमे, जब वे मद्रासके लिबरल फेडरेशनसे लौटे थे, उन्होंने एक ऐन्ट्रेंस तक पढ़े हुए विद्यार्थीसे कहा—"लेख लिखनेका अभ्यास क्यों नहीं करते ? डरो मत। कोई मुश्किल बात नहीं। मेरे पास लिखकर भेज दिया करो। एडीटरके नाम भेजोगे तो मुझे नही मिलेगा। मेरे घरके पतेपर भेजना। मैं संशोधन कर दूँगा।" चिन्तामणिजीके ये शब्द सुनकर पहले तो मुझे आश्चर्य हुआ, फिर मुझे खयाल आया कि स्वयं चिन्तामणिजीको भी विश्वविद्यालयोकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेका सौभाग्य (या दुर्भाग्य ?) प्राप्त नही हुआ था। चिन्तामणिजी अपनी गरीबीको नही भूले। वे समझते है कि समयपर प्रोत्साहन देनेसे कितने ही साधनहीन युवक लेखक बनाये जा सकते है। अजनबी पत्रकारोंसे भी वे जिस तरह दिल खोलकर मिलते है उसे देखकर आश्चर्य होता है। कुछ वर्ष पहले जब चिन्तामणिजी लोथियन-कमेटीके सिलसिलेमे कलकत्ते आये थे, अपने एक पत्रकार बन्धुको लेकर मैं उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। बातचीतके सिलसिलेमे हम लोगोंने चिन्तामणिजीसे प्रार्थना की कि आप अपने संस्मरण लिखकर छपाइये। चिन्तामणिजीने विनम्रतापूर्वक कहा—"मनमें उत्साह नही होता। ऋणग्रस्त होनेके कारण इस प्रकारका कार्य और भी कठिन हो जाता है। इसके सिवा अवकाश भी नही मिलता।" उस समय मेरे मुँहसे निकल गया—" कर्ज़दार तो मैं भी हूँ।" मेरे पत्रकार बन्धु बोल उठे—"और मैं भी।' चिन्तामणिजीने तुरन्त कहा—"Then let us form a debtor's association !"—'तो आओ, हम लोग मिलकर एक कर्ज़दार-समिति ही क्यो न बनावें ?' इस मज़ाक़पर खूब हँसी हुई।

चिन्तामणिजीने अपने बहुमूल्य समयका घंटा-सवा-घंटा हमें दिया। यद्यपि वे रातको बारह बजे तक कमेटीका काम करते रहे थे और दोपहरके भोजनके बाद विश्रामकी आवश्यकता भी थी, पर उन्होंने सवा घंटेकी बातचीतमें ज़रा भी शिथिलता ज़ाहिर न होने दी और अपनी वाक्पटुताने हमें चकित कर दिया। कहना न होगा कि हमारे पत्रकार बन्धुपर चिन्तामणिजीकी सहृदयताका बड़ा प्रभाव पड़ा।

इस सिलसिलेमें यह कहना भी आवश्यक है कि श्रीयुत चिन्तामणिजीने अपने सिद्धान्तोंके सामने धन, वैभव तथा पद-गौरवकी कभी चिन्ता नहीं की। इस विषयमें वे 'मैनचेस्टर गार्जियन'के सम्पादक सी० पी० स्काटसे बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। महात्मा गांधीसे लगाकर भारतके छोटे-बड़े सभी नेता चिन्तामणिकी योग्यताके कायल रहे हैं। मौलाना महम्मदअलीने तो उन्हें '*भारतीय राजनीतिका चलता-फिरता विश्वकोष*' कहा था। भारतीयोंके लिए भारतमें जो ओहदे खुले हुए हैं, उनमें शायद ही कोई ऐसा हो, जिसपर बैठकर चिन्तामणि उसका गौरव न बढ़ा सकें; पर उन्होंने अपने राजनैतिक सिद्धान्तोंके सामने इन सबको तुच्छ ही समझा। साधारण जनताको और कितने ही राजनैतिक नेताओंको भी चिन्तामणिजीका असहयोग-विरोधी रूप अत्यन्त अप्रिय लगा था, पर हमें तो उनके उस रूपमें पत्रकारोंके लिए भी एक सुन्दर उपदेश निहित दीख पड़ता है। दुनियामें भेड़ोंकी संख्या ही अधिक है और ऐसे आदमी बहुत कम हैं, जो अपनी अन्तरात्माकी ध्वनिके अनुसार अपने सिद्धान्तोंपर अटल रहें और जो उसके सामने अपनी लोकप्रियताको सर्वथा नगण्य समझें। भेड़ियाधसान प्रवृत्तिका विरोधी एक पत्रकार उन सहस्रों पत्रकारोंसे कहीं अधिक आदरणीय है, जो 'जैसी चले बयार, पीठ तब तैसी दीजे'के सिद्धान्तका अनुकरण करते हैं। रोमां रोलांने एक जगह लिखा है—

"A man's first duty is to be himself, to remain himself, at the cost of self-sacrifice."

अर्थात्—'प्रत्येक मनुष्यका यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अपनापन न खोवे, अपना व्यक्तित्व कायम रखे, चाहे कितना ही बड़ा आत्म-त्याग उसे क्यो न करना पड़े।' चिन्तामणिजीने चिन्तामणिपन कभी नही खोया, चाहे सरकार रुष्ट हो, या जनता क्रुद्ध हो। सच तो यह है कि लिबरल-दलमें तो उन्हींका दम गनीमत है, उन्हींका व्यक्तित्व सजीव है, और चाहे चिन्तामणिजी इस बातसे नाराज़ हो, उनके जीवनके साथ लिबरल-दलका भी खातमा हो जायगा, क्योंकि भारतीय राजनैतिक आत्माके लिए लिबरल-चोला बहुत पुराना पड गया है और चिन्तामणिजी प्रेतात्माओंको भले ही बुला सकें,' भारतीय राजनीतिकी आत्माको लिबरल-चोला कभी न पहना सकेंगे। राजनैतिक ज्ञान और अध्ययनमें लिबरल-दल बहुत ठोस होनेपर भी उसमें साहस, त्याग और सर्वसाधारणके निकट पहुँचनेकी क्षमता नही है। हाँ, 'भारत-सेवक-समिति' अवश्य ही कुछ सीमा तक इसका अपवाद है।

पर हमे यहाँ चिन्तामणिजीके राजनैतिक विचारोंकी आलोचना नही करनी, हमे तो उनके व्यापक व्यक्तित्वके एक पहलूपर, बल्कि यो कहना चाहिए कि उस पहलूके केवल एक अंगपर ही, कुछ प्रकाश डालना है। दैनिक पत्र-सम्पादनके लिए कितनी योग्यता चाहिए, इसका हमे कुछ अन्दाज नही। हाँ, दैनिक 'अभ्युदय'मे अपने २१ दिनके अनुभवसे हम कह सकते है कि यह काम बहुत ही बेतुका और वाहियात है। दैनिक 'अभ्युदय'में 'प्रवासी भारतवासी', 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' और 'साहित्य-सेवियोंकी कीर्ति-रक्षा'—इन तीन विषयोंपर अग्रलेख लिख चुकनेके बाद हमारा दिमाग़ बिल्कुल खाली हो गया और कुछ समझमें

'चिन्तामणिजीका विश्वास Spiritualism में रहा है।—लेखक

ही न आया कि अब क्या लिखा जाय ! अब हमारी अकलमें आया कि यह काम अपने बूतेका नही । अब हम समझे कि चिन्तामणिजी 'लीडर'का काम करते-करते क्यो तपेदिकके मरीज़ बन गये थे और कृष्णरामजी मेहता क्यो कम उम्रमे ही बूढे हो गये है ! इसलिए यद्यपि हम चिन्तामणिजीके प्रशसक है, तथापि हमारी नित्यनैमित्तिक दैनिक प्रार्थना यही रहती है कि चाहे हमे कुम्भीपाक या रौरव भले ही मिले, पर दैनिक पत्रमे काम न करना पडे ।

हमारे बहुतसे पाठकोको यह न मालूम होगा कि चिन्तामणिजीको क्षयरोग किस प्रकार हुआ था । 'लीडर'का कार्य नकद पाँच हज़ार रुपये और पचास हज़ारके वादेसे प्रारम्भ हुआ था । मि० चिन्तामणि और मि० एन० गुप्त 'लीडर'के सयुक्त-सम्पादक बनाये गये । मिस्टर गुप्त तो थोडे दिन बाद न-जाने क्यो छोडकर चले गये, सारा बोझा आ पडा चिन्तामणिजीके सिर । प्रबन्ध करना, सम्पादन करना और पूँजी भी जुटाना ! उस समय चिन्तामणिजीको २४ घटेमे अठारह-अठारह घटे काम करना पड़ता था । सप्ताह-के-सप्ताह इसी तरह काम करते बीत जाते थे । प्राय उन्हें ही प्रूफ देखने पडते, पत्रके लिए रिपोर्टरका काम करना पडता, सहायक-सम्पादक और मैनेजरका काम उन्हीके सुपुर्द था और अग्रलेख तो वे लिखते ही थे ! अक्सर ऐसा मौका आया करता था कि चिन्तामणिजीको कम्पोज़ीटरोके विभागमे फोरमैनीका काम भी करना पडता था ! आर्थिक कठिनाइयोका बोझा सिरपर था ही । नतीजा यह हुआ कि चिन्तामणिजीका स्वास्थ्य बिल्कुल खराब हो गया और डाक्टरोने यह करार दे दिया कि उन्हें क्षयरोग हो गया है । जब चिन्तामणिजीने छुट्टी माँगी और पूज्य पडित मालवीयजीको उनकी भयकर बीमारीका पता लगा तो उनकी आँखोमे आँसू भर आये, और उन्होने कहा—"The choice lies between killing Chintamani in the Leader and killing the Leader without Chintamani"

—"अब दो ही मार्ग हैं; या तो 'लीडर'का काम कराते-कराते चिन्तामणिको मार डालना अथवा उन्हें छुट्टी देकर 'लीडर'की ही अकाल मृत्यु करना।"

चिन्तामणिजीको छुट्टी दे दी गई और वे विजगापट्टम चले गये। देशका यह सौभाग्य था कि चिन्तामणिजीको विजगापट्टममें आराम हो गया और फिर वे अपने कामपर लौट आये। उस समय 'लीडर'की ग्राहक-संख्या बहुत कम थी और आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही खराब। बस, 'लीडर'के दिन गिने जा रहे थे। एक बार तो यहाँ तक निश्चित हो गया कि पन्द्रह-बीस दिन बाद अमुक तारीखको 'लीडर' बन्द कर दिया जायगा और उसका कारबार लखनऊके बाबू गंगाप्रसाद वर्माको सौंप दिया जायगा, और वे 'लीडर'का नाम अपने पत्र 'ऐडवोकेट'में सम्मिलित कर लेंगे। सौभाग्यसे 'लीडर'को यह दिन देखनेका मौक़ा ही नहीं आया।

'लीडर'ने संयुक्त-प्रान्तके राजनैतिक जीवनके लिए जो कार्य किया है, उसकी प्रशंसा उसके राजनैतिक विरोधियोंको भी करनी पड़ती है। उसके तीक्ष्ण कटाक्षोंसे तंग आकर युक्तप्रान्तीय सरकारने अपनी सन् १९२७की वार्षिक रिपोर्टमें लिखा था—

"लीडर प्रान्तीय सरकारके विरुद्ध निरन्तर प्रचार किया करता है। गवर्नमेन्टके पास कोई साधन नहीं है, जिससे वह इस पत्रके आक्षेपोंका उत्तर दे सके।"

जो लोग चिन्तामणिजीकी लिबरल राजनीतिकी कटु आलोचना करते हैं, वे उपर्युक्त बातको भूल जाते हैं। जो महानुभाव चिन्तामणिजीसे और उनके महान् कार्यसे कुछ भी परिचित नहीं हैं, वे जब उनकी कठोर निन्दा करने लगते हैं, तो चित्तको बड़ी ग्लानि होती है। कोई कहता है—'अजी, वे तो यू० पी०के—हिन्दुस्तानी—हैं भी नहीं!' कोई कहता है—'वे हिन्दी-विरोधी हैं।' कोई कहता है—'वे देशद्रोही हैं।' ऐसे सज्जनोंको हमारा उत्तर यही है कि यदि चिन्तामणिजी 'हिन्दुस्तानी' नहीं, तो संयुक्त-प्रान्तके पाँच करोड़ आदमियोंमें कोई भी हिन्दुस्तानी नहीं, और यदि वे

देशभक्त नहीं तो 'देशभक्ति'की परिभाषा ही बदल देनी पड़ेगी। रही उनके हिन्दी-विरोधकी बात, सो उनके विषयमें यही कहना पर्याप्त होगा कि उन्होंने अपने लड़कोंको हिन्दी ही पढ़ाई है।

जरा नीचे लिखी कविताके प्रवाह और प्रसादगुणपर ध्यान दीजिए—

"मुझे ले चल वायुके वेग वहाँ,
जहाँ प्रीति बुरी कही जाती नहीं ;
जहाँ प्रेमीकी पागलपने समता,
कवियोंकी कला दिखलाती नहीं।
खिलती हुई प्रेम-कली जहाँ स्नेहके,
मेंह बिना मुरझाती नहीं,
वहीं ले चल प्रेमीकी आँखें जहाँ,
कल पाती सदा कलपाती नहीं।
सुमनावलि-धारा सुधाकी जहाँ,
बरसाती सदा, तरसाती नहीं ;
कमनीय कलाधर कौमुदीमें
हैं सरोजनी मंजु लजाती नहीं।
जहाँ सुन्दर ज्योति दिवाकरकी,
कुमुदोंके कलाप सुलाती नहीं ;
जहाँ पखड़ियोंकी सुकोमलता,
सुमनोंकी कड़ाई छिपाती नहीं।
जहाँ प्रीति प्रतीतिके पथ पुनीतमें,
भीति है काँटे बिछाती नहीं,
कलिका जहाँ आशाकी फूलनेके
पहले कभी तोड़ ली जाती नहीं।"

ये सुन्दर पद्य चिन्तामणिजीके सुपुत्र श्री बालकृष्णरावके हैं। इन्होंने

प्रान्तके नवयुवक कवियोंमें कितने ऐसे हैं, जो इतनी सफलताके साथ कविता कर सके? श्री बालकृष्ण राव चिन्तामणिजीके हिन्दी-प्रेमके सजीव रूप हैं और प्रत्यक्ष प्रमाण भी।

हमें वह दिन अच्छी तरह याद है, जब श्रीयुत पद्मसिंहजी शर्मा श्रीचिन्तामणिजीकी बीमारीमें उनसे मिलनेके लिए गये थे। चिन्तामणिजीने तुरन्त ही श्री बालकृष्णरावको, जो उस समय घरमें थे, बुलाया और कहा—"इनसे परिचय कर लो। ये हिन्दीके धुरन्धर लेखक प० पद्मसिंह शर्मा हैं।"

चिन्तामणिजीकी स्मरणशक्ति अद्भुत है। उनके स्मृति-पटलपर जो बातें अंकित हो जाती हैं, वे आसानीसे नहीं मिट सकतीं। हमने सुना था कि जब पं० पद्मसिंहजी शर्माके स्वर्गवासपर 'लीडर'-कार्यालयसे निकलनेवाले 'भारत'ने कुछ अनुचित ढंगसे लिखा था, उस समय चिन्तामणि-जी बहुत नाराज हुए थे। दाद देनेमें विशेषज्ञ इन दोनों महारथियोंका पारस्परिक परिचय करानेका सौभाग्य भी इन पंक्तियोंके लेखकको ही प्राप्त हुआ था।

चिन्तामणिजीका सबसे सुन्दर रूप वह है, जब वे अपनी मित्र-मंडलीमें बैठे हुए गप लड़ाते हैं। सम्भाषण-शक्तिमें उनके मुकाबलेमें हिन्दुस्तानमें शायद ही कोई निकले, यद्यपि उनकी बातचीतमें वह माधुर्य नहीं, जो माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजीकी बातचीत में है। चिन्तामणि-जीकी बातचीतको सुनकर हमें नील नदीके रिपन फाल (जलप्रपात)की याद आ जाती है। सन् १९२४ में हमने जिजा (युगाण्डा) में इस जलप्रपात-को निकटसे देखा था और आश्चर्यके साथ मन्त्रमुग्धसे खड़े रह गये थे। चिन्तामणिजीकी बातोंमें तथ्य और संख्याएँ इतनी जल्दी एकके बाद एक आती रहती हैं कि आदमी रौबमें आ जाता है। इस विषयमें वे माननीय शास्त्रीजीसे भिन्न हैं। शास्त्रीजीके साथ बात करते हुए आदमी उनके अत्यन्त निकट पहुँच जाता है। सम्भवतः इसका कारण

यह है कि शास्त्रीजी मनुष्यत्वको प्रथम स्थान देते हैं और चिन्तामणिजी राजनीतिको।

चिन्तामणिजीकी बातचीतके कितने ही फिकरे ऐसे होते हैं, जिनकी याद बहुत दिनों तक बनी रहती है। कानपुरके हिन्दी साहित्य सम्मेलनके बाद पं० पद्मसिंह शर्माके साथ मैं उनकी सेवामें लखनऊमें उपस्थित हुआ था। उन दिनों वे मन्त्री थे। बातचीत करते हुए मेरे मुँहसे एक बात निकल गई। "गवर्नमेण्टके प्रति आपका क्या रुख है?"

चिन्तामणिजीने तुरन्त ही जवाब दिया "सरकारके प्रति मेरा जो रुख है उसका सार तीन शब्दोंमें आ सकता है, 'जहन्नममें जाय सरकार।'"

एक बार हम अपने एक सजातीय मित्रके साथ जो चिन्तामणिजीसे अच्छी तरह से परिचित हैं, रेलकी यात्रा कर रहे थे। उस समय हमारे साथ श्री के० ईश्वरदत्तकी लिखी 'स्पार्क्स एण्ड फ्यूम्स' नामक पुस्तक थी, जिसमें चिन्तामणिजीका एक स्केच छपा था। स्केचमें एक वाक्य था—

"From an obscure reporter on Rs 35/- he rose by dint of sheer merit to the editorship of a daily, the ministership of a province and the leadership of a party"

अर्थात्—"केवल अपनी योग्यताके कारण चिन्तामणिजी, जो पहले ३५ रुपये महीनेपर एक अज्ञात रिपोर्टर थे, एक दैनिक पत्रके सम्पादक, एक प्रान्तके मन्त्री और एक पार्टीके लीडर बन गये।"

चिन्तामणिजीका स्केच हम पढ़ ही चुके थे कि छिउकीका स्टेशन आ गया। देखते क्या हैं कि चिन्तामणिजी वहाँ विद्यमान हैं! वे बम्बई जा रहे थे। हमारे मित्रने चिन्तामणिजीसे कहा कि हम लोग आप ही का वृत्तान्त पढ़ रहे थे। उन्होंने पूछा, "आपने क्या पढ़ा?" हमारे मित्रने कहा कि आपने पहले-पहल ३५) रुपयेकी नौकरी की थी। चिन्तामणिजी तुरन्त बोले, "लेखक महाशयने भूल की है। पैंतीस नहीं, तीस!"

स्वर्गीय गोखलेकी पुण्य तिथिके दिन एक बार वे कलकत्तेमे उपस्थित थे। महाराष्ट्र क्लबमें उनका भाषण हुआ। उस मीटिंगमें डब्ल्यू० सी० बनर्जीके भतीजे भी मौजूद थे। भाषण देते समय भतीजे साहबके मुँहसे यह निकल गया कि उनके चाचा साहब कांग्रेसके अधिवेशनके पहले तथा सातवें अधिवेशनके सभापति हुए थे। चिन्तामणिजीने तुरन्त ही बड़े धीरेसे कहा, "सातवें नही, आठवें!"

उनकी भाषणशक्ति और तर्कशैलीका क्या कहना है! कौन्सिलके निर्जीव शरीरमें उनके भाषण एक प्रकारका जीवन-सा डाल देते है। यदि वे एसेम्बलीमें मेम्बर होते तो उनकी तेजस्वी वक्तृत्व शक्तिका मुकाबला वहाँ शायद ही कोई कर पाता। बाज़-बाज़ अक्लमन्द लोग इस बातकी निन्दा करते है कि कांग्रेसवाले उन्हे एसेम्बलीमें क्यो नही जाने देते। इसका जवाब यह है कि पहले तो सिद्धान्तका सवाल है और फिर कौन समझदार आदमी अपने दलके ९८ फीसदी वक्ताओंके तेजको तिरोहित करानेकी जबरदस्त भूल करेगा?

चिन्तामणिजीकी आँखोमें लिहाज़ है और इस लिहाज़के कारण उन्हे कभी-कभी ऐसे काम करने पड़ते है, जिन्हे वे हृदयसे नापसन्द करते है। एक बार उन्होने कहा—"सरकारी नौकरीके लिए सिफारिश करना मुझे सख्त नापसन्द है; पर महीनेमें तीस आदमियोकी सिफारिश मुझे करनी पड़ती है।"

एक बार इन पंक्तियोंके लेखकके क्षुद्र जीवनमे भी ऐसा अवसर आया कि एक नीम सरकारी जगहके लिए अर्जी भेजनी पड़ी। चिन्तामणिजी एक आदमीकी सिफारिश, उसी नौकरीके लिए, पहले कर चुके थे, पर मेरी चिट्ठी पहुँचते ही उन्होने इतने ज़ोरदार शब्दोमें सिफारिशकी चिट्ठी लिखी कि उस चिट्ठीसे मुझे जितना सन्तोष हुआ, उतना नौकरी मिलनेपर भी न होता!

लिबरल दलमें प्रवासी भारतीयोंके लिए कमेटी बनवानेके प्रस्ताव

पर, कांग्रेस तथा लिबरल दलमें प्रवासी भारतीयोंके विषयपर सहयोगके सबधमें और इनके सिवा और भी अनेक अवसरो पर जब-जब चिन्तामणिजीसे प्रार्थना की गई, उन्होंने सहर्ष उसे स्वीकार ही नही किया, बल्कि उत्साहित भी किया।

चिन्तामणिजीके राजनैतिक विचारोंसे भले ही कोई सहमत न हो उनकी राजनैतिक कार्यपद्धतिको भी लोग निन्दनीय समझ सकते है, और अपने विरोधियोकी छीछालेदर वे जिस ढगसे करते है, उसमे भी किसी-किसीको अनौचित्य दीख सकता हो, पर इस बातसे कोई इनकार नही कर सकता कि चिन्तामणिजीके व्यक्तित्वमे एक अजीब निरालापन है और वे एक ईमानदार पत्रकार है।

कहावत है कि ऊँट जबतक पहाडके नीचे नही जाता, तबतक अपनेको बहुत ऊचा समझता है। मालूम नही कि हमारे इन रेगिस्तानी दोस्तोंके मनमें पहाडके निकट जानेपर क्या भाव उत्पन्न होते होगे, पर यदि हिन्दी पत्रोके सम्पादक चिन्तामणिजीके निकट जायें तो वे मनमे यही ख्याल करेगे कि चिन्तामणिजी दरअसल सम्पादकाचार्य है और वे हमे अभी वर्षो तक सम्पादन-कला सिखला सकते है। चिन्तामणिजी हिन्दी भाषाके महत्त्वको भली भाँति समझते है, टूटी-फूटी हिन्दी बोल भी लेते है, पर अब इस उम्रमे उनसे यह आशा करना कि वे कभी धाराप्रवाह हिन्दीमे भाषण दे सकेगे, सरासर अन्याय होगा। हाँ, चिन्तामणिजी हिन्दीकी एक जबरदस्त सेवा और भी कर सकते है, वह यह कि वे अपने ४० वर्षके संस्मरण पहले हिन्दीमे प्रकाशित करावे। भारतवर्षका कोई भी पत्रकार इतने बढ़िया और उपयोगी संस्मरण नही लिख सकता, जितने चिन्तामणिजी, और उनकी यह पुस्तक भावी पत्रकारोंके लिए सदर्भ ग्रथका काम देगी।

अखिल भारतीय पत्रकार सम्मेलनने उन्हे अपना सभापति चुनकर अपनेको गौरवान्वित किया है इसमे सन्देह नही।

अगस्त १९३५]

आचार्य गिड्वानी

मैदान-निवासियोंके लिए कभी-कभी पर्वत-यात्रा करना अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग नीची सतहपर रहते हैं, उन्हे यदा-कदा उच्च भूमिपर जाकर प्राकृतिक सौन्दर्यका निरीक्षण करना चाहिए। भौतिक संसारकी यह बात विचारोंके जगत्के लिए भी कही जा सकती है। साधारण आदमियोंको —जो विचारोकी नीची सतहपर रहते है—उच्च विचारवाले सज्जनोका सत्संग उतना ही आवश्यक है, जितना मैदान-निवासियोंके लिए पर्वत-यात्रा।

जब-जब आचार्य गिड्वानीजीसे मिलनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है, तब-तब उपर्युक्त कथनकी सत्यता हमारी समझमें आ गई है। उनके वार्तालापमे वही आनन्द आता है, जो शीतल-मन्द समीरके सेवनमे। उनकी विचार-धारा और वाग्धारा निर्मल निर्झरके कल-कल निनादकी याद दिलाती है। उनका मस्तिष्क दलबन्दीके कोलाहलमे उतना ही ऊँचा उठा रहता है, जितना पर्वतशृंग आसपासकी भूमिसे। उनका सत्संग एक प्रकारका सैनिटोरियम है, जहाँका सांस्कृतिक वायुमंडल क्षुद्र विचारोंके कीटाणुओंके लिए घातक है; इसीलिए हमारे हृदयमे दो आकांक्षाएँ बराबर बनी रहती है—एक तो यह कि आतपकालमें कही पर्वत-यात्रा की जाय, और दूसरी आपतकालमे गिड्वानी जैसे सुसंस्कृत व्यक्तिका सत्संग।

महात्मा गाधी और माननीय श्रीनिवास शास्त्री—जैसे महापुरुषोकी बात हम नही कहते, पर भारत के नवयुवक नेताओमें गिड्वानीजीसे अधिक सुसंस्कृत व्यक्ति शायद ही कोई दूसरा हो। उनका रहन-सहन, शब्दयोजना, बातचीत और विचारशैली सभी उच्चकोटिके है, और इन

सबके ऊपर उनका त्याग भी प्रथम श्रेणीका है। इस प्रकार उनके व्यक्तित्वमे एक अजीव आकर्षण है। आज जब वे कराँची सेण्ट्रल जेलमें तप कर रहे हैं उनके विषयमें दो-चार बाते पाठकोको सुनाना अप्रासंगिक न होगा।

असूदमल टेकचन्द गिड्वानीका जन्म ११ सितम्बर सन् १८९० ई० को हैदराबाद (सिन्ध) में हुआ था। शिक्षा और सस्कृतिकी दृष्टिसे हैदराबाद सिन्धके सभी नगरोसे आगे बढा हुआ है। वहाँके सास्कृतिक वातावरणमें सिन्धी लोगोके लिए एक विशेष आकर्षण है। गिड्वानीजीने अपने एक पत्रमें लिखा था—"I love Hyderabad as I love only one other place and that is Oxford. There is a wonderful repose about both" अर्थात्—मुझे दो स्थानोसे विशेष प्रेम है, एक तो हैदराबादसे और दूसरे आक्सफोर्डसे। दोनोमे ही एक विचित्र प्रकारका शान्तिमय वायुमडल है।

गिड्वानीजीके बाबा सिन्धी-भाषाके एक कवि थे और सिन्धके मीर लोगोंके आश्रयमे रहा करते थे। गिड्वानीजीके पिता भी बडे साहित्य-प्रेमी थे, पर उन्हे अपनी साहित्यिक प्रवृत्तिके विकासके लिए उपयुक्त अवसर नही मिला। उनके जीवनके पैंतीस वर्ष एन० डब्ल्यू० रेलवेके छोटे-छोटे स्टेशनोपर स्टेशन-मास्टरी करते व्यतीत हुए। कहानी कहनेका उन्हे बडा शौक था। उनकी कल्पनाशक्ति इतनी प्रबल थी कि उनकी कहानियाँ बडी आश्चर्यजनक और प्रभावशाली होती थी।

बाल्यावस्थामें गिड्वानीजी रेलके इजिनोपर या माल-गाडियोंमें अथवा ट्रालीपर बैठकर आसपासके स्टेशनोपर इधर-से-उधर घूमा करते थे। प्रकृति-निरीक्षणकी रुचि उनके हृदयमे सम्भवत तभीसे उत्पन्न हुई। पैंतीस वर्ष रेलकी नौकरी करनेके बाद गिड्वानीजीके पिताजीको पेंशन मिली, और वह कुल जमा ७० रु० महीनेकी! वह पेन्शन

ही मौका था, जब ब्रिटिश न्याय-प्रियताका यह अनोखा आदर्श गिड्वानी-जीके हृदयमें खटका।

गिड्वानीजीकी माता आमिल-वंशकी लड़की थीं। उनके पिता और पितामह तहसीलदार थे, और हैदराबादमें उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पिछली एक शताब्दीमें आमिल-वंशी सिन्धी लोगोंकी प्रान्त-भरमें बड़ी धाक रही है। जब गिड्वानीजी कुल तीन वर्षके ही थे कि उनकी माताका देहान्त हो गया, और उन्हें उनके नानी और मामाने पाला-पोसा। अपने जीवनकी शिक्षा तथा सफलता-के लिए वे अपनी ननसालके ऋणी हैं।

गिड्वानीजीकी प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा नवलराय हीरा-चन्द एकेडमी नामक स्कूलमें हुई, और सन् १८९५ से १९०६ तक वे वहीं पढ़ते रहे। उनके इस कालके विद्यार्थी-जीवनमें कोई उल्लेख योग्य बात नहीं हुई। हाँ, एक महत्त्वपूर्ण घटना जरूर घटी। सन् १९०३ मे उनकी मित्रता श्री वधूमल ज्ञानचन्द चैनानी नामक एक प्रतिभाशाली नवयुवकसे हो गई। वधूमलके जीवन-कार्यका प्रारम्भ दस वर्षकी अवस्थामें हुआ और अन्त बीस वर्षकी अवस्थामें! पर इस अल्पकालमें ही वे अपने व्यक्तित्वकी छाप अपने साथियोंपर डाल गये। वधूमल और उनके साथियोंने अपनी समितिका नाम 'हिन्दू-कुमार-मण्डली' रख छोड़ा था और वधूमल कभी-कभी उसे 'Children's Theosophical Society' भी कहा करते थे। लिखने-पढ़नेके बाद जो कुछ समय इन बालकोंके पास बचता था, उसे वे उस मंडलीमें ही बिताते थे। सिन्धका यह सर्वप्रथम युवक-संघ था, और निःसन्देह सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ। इस संघके जितने सदस्य थे, उन्होंने अपने प्रान्तके जीवनके लिए कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य किया। इन्हीं दिनोंमें थियासोफीके सिद्धान्तोंका गिड्वानीजीपर बड़ा प्रभाव पड़ा और अब भी उनके विचार कुछ-कुछ उधरकी ओर झुके हुए हैं, यद्यपि प्रमुख थियासोफिस्टोंके राजनैतिक विचारों और गिड्वानीजीके राज-

नैतिक विचारोंमें काफी अन्तर रहा है। एक बार गिड्वानीजी महात्माजीसे बातचीत कर रहे थे। गुजरात-विद्यापीठमें धार्मिक शिक्षा किस प्रकारकी होनी चाहिए, यह विषय उपस्थित था। गिड्वानीजीने अपने विचार महात्माजीके सम्मुख रखे। उन्हें सुनकर महात्माजीने आश्चर्यके साथ कहा—"But this is a kind of Theosophy !" "आप तो लड़कोंको थियासोफी पढ़ायेंगे!" गिड्वानीजीको इस प्रश्नसे प्रसन्नता हुई, क्योंकि गिड्वानीजीकी शिक्षाका आदर्श सुप्रसिद्ध थियासोफिस्ट मि० एरण्डेल और डाक्टर कज़िन्सके आदर्शोंसे मिलता-जुलता है।

सन् १९०७ से १९११ तक गिड्वानीजीने कालेजकी शिक्षा प्राप्त की। १९१० में आपने बी० ए० पास किया और १९११ में एम० ए०। इन पाँच वर्षोंमें उनका प्रथम वर्ष बम्बईके एलफिन्सटन-कालेजमें बीता, जहाँ सैयद अब्दुल्ला ब्रैल्वी (सम्पादक 'बाम्बे क्रानिकल') और महादेवभाई देसाई उनके सग पढ़ते थे। ये दोनों सहपाठी एक दूसरेको बिलकुल भूल गये थे कि दस वर्ष बाद अकस्मात् दिल्ली स्टेशनपर उनकी मुलाकात हो गई। महादेवभाई देसाई महात्माजीके साथ यात्रा कर रहे थे। गिड्वानीजी महात्माजीसे मिलने स्टेशनपर आये, वे महादेवभाईका चेहरा पहचान कर बोले—"तुम तो महादेव देसाई हो?" महादेवभाई भी पहचानकर तुरन्त बोले—"और तुम असूदमल टेकचन्द गिड्वानी?" सिन्ध-कालेज करांचीमें गिड्वानीजीकी गणना अच्छे विद्यार्थियोंमें की जाती थी, और उन्हें प्राय पुरस्कार और छात्रवृत्तियाँ मिलती रहती थीं। कालेजकी पत्रिकाका सम्पादन भी वे ही करते थे। यह सब होते हुए भी कालेजकी पढ़ाईमें उनका हृदय नहीं था। एम० ए० पास करनेके बाद गिड्वानीजीका विवाह हुआ। जो लोग रानी बहनको जानते हैं, वे यह समझते हैं कि अपने शान्तिमय गृह-जीवनके लिए वे किसके ऋणी हैं। गिड्वानीजी उन इने-गिने आदमियोंमें हैं, जो अपने जीवनको हथेलीपर रखकर उसपर प्रयोग करते हैं। क्रिकेटके किसी बढ़िया खिलाड़ीको गेंद उछालनेके

जो आनन्द आता है, गिड्वानीजी अपने जीवनको खतरेमे डालनेमे वही आनन्द अनुभव करते है। ऐसे खतरनाक आदमीकी धर्मपत्नी होनेमें किसी साधारण स्त्रीको विशेष आनन्द नही मिल सकता, पर गंगा बहनकी असाधारणता इसीमे है कि वे उन सब संकटोको, जो उनके पतिके जीवन-सम्बन्धी प्रयोगोंके कारण उनपर आये है, धैर्य-पूर्वक सहन करती रही हैं। जब गिड्वानीजी नाभा-जेलकी छोटी कोठरीमें अपने कष्टमय दिन व्यतीत कर रहे थे, और बराबर यह समाचार आते थे कि उनकी तौल ८ पौंड, १० पौंड, १५ पौंड घट गई है—एक बार तो यह घटी तीस पौंड तक पहुँच गई थी—उन दिनो गगा बहन गुज-रात-विद्यापीठमे थी। यद्यपि उनके चेहरेपर चिन्तामय गम्भीरता थी, पर फिर भी वे अपना कार्य धैर्य-पूर्वक करती रहती थी, और हम लोग उन्हे प्राय विद्यापीठकी लाइब्रेरीमें एक कोनेमें बैठी हुई हिन्दी-पुस्तक पढते देखते थे।

आज भी यदि आप करांची जाये, तो वहाँ कड़ी धूपमें छै महीनेके बच्चेको गोदमें लिए हुए गगा बहन किसी शराबकी दुकानपर धरना देती हुई दीख पडेंगी।

एम० ए० पास करनेके बाद गिड्वानीजी आई०सी०एस०की परीक्षा देनेके उद्देश्यसे विलायत गये, लेकिन आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके कुछ देश-भक्त भारतीयोके संसर्गमें आनेके बाद उन्होने अपना यह विचार छोड दिया। इनमे सबसे मुख्य थे मि० हसन शहीद सुहरावर्दी। ये विद्वान् होनेके साथ-साथ देश-भक्त, कवि और नाटककार भी थे। रूसी राज्यक्रान्तिके दिनोंमें उन्होने जो कार्य किया अथवा नाटक और कलाके क्षेत्रमें उनकी जो कृति हुई, उससे देशके बहुत कम लोग परिचित है। उनके छोटे भाई सुहरावर्दी भी—जो कलकत्ता कारपोरेशनके डिप्टी-मेयर रह चुके हैं—गिड्वानीजीके साथ ही रहते थे और उनके घनिष्ठ मित्र थे। आक्सफोर्डमें गिड्वानीजीको मेजिनीके ग्रन्थोंके पढनेका शौक

हुआ। चार वर्ष बाद आक्सफोर्डसे एम० ए० परीक्षा पास करके वे भारतवर्षको लौटे, और यहाँ सन् १९१६ मे इलाहाबादके म्योर सेण्ट्रल कालेजमे आई० ई० एम० मे प्रोफेसर नियुक्त हो गये।

जीवनके प्रयोग

आक्सफोर्डसे गिड्वानीजी यह दृढ विचार करके लौटे थे कि यथाशक्ति स्वाधीनता-सग्राममे भाग लेंगे। म्योर सेण्ट्रल कालेजका वायुमण्डल इसके लिए उपयुक्त नही था। अनेक जिम्मेदारियोंके कारण वे एक साथ राजनैतिक क्षेत्रमे नही आ सकते थे, इसीलिए उन्हे यह सरकारी नौकरी करनी पडी, पर उन्होने अपने विचारोको छिपाया नही। थोडे दिनो बाद बीकानेरके महाराजके प्राइवेट-सेक्रेटरीका पद खाली हुआ। आपने इसके लिए प्रार्थनापत्र भेज दिया। कालेजके अधिकारियोने मनमें सोचा कि चलो एक आफत टली, एक ख़तरनाक आदमीसे पिंड छूटा। गिड्वानीजीको आशा थी कि एक उन्नतिशील देशी राज्यके अनुभव उन्हे राजनैतिक ज्ञान-प्राप्तिके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होंगे, पर उनकी यह आशा शीघ्र ही निराशामें परिणत हो गई। चार महीनेमे ही उन्हे देशी राज्योका खोखलापन प्रकट हो गया और वे वहाँसे छोडकर चले गये। इसके बाद कुछ सप्ताह वे मेयो-कालेज अजमेरमें अध्यापक रहे और वहाँसे सन् १९१८ मे दिल्लीके रामजस-कालेजमें प्रिंसिपल बनकर चले आये।

उन दिनो रामजस-कालेजको एफ० ए० की परीक्षाके लिए भी सरकारसे स्वीकृति नही मिली थी। गिड्वानीजीके आते ही उनके प्रयत्नसे उसे दो वर्षके भीतर ही आर्ट और साइन्स दोनोंके लिए बी० ए० तककी स्वीकृति मिल गई। गिड्वानीजीको योग्य व्यक्तियोकी अच्छी पहचान है, और वे इधर-उधरसे सग्रह करके उन्हे अपनी सस्थामे रखना जानते हैं। यही कारण था रामजस-कालेजकी सफलताका।

सन् १९२० ई० में आपने रामजस-कालेजके प्रिंसिपलके पदसे त्याग-

पत्र दे दिया और महात्माजीके असहयोग-आन्दोलनमें सम्मिलित हो गये। स्वामी श्रद्धानन्दजीकी प्रेरणासे ही उन्होंने ऐसा किया था। दिल्ली छोड़कर आप गुजरात आ गये और गुजरात-विद्यापीठके निर्माणमें आपका जबरदस्त हाथ रहा। विद्यापीठमें ही उनके अधीन रहकर कई वर्ष तक कार्य करनेका सौभाग्य इन पंक्तियोंके लेखकको प्राप्त हुआ था, और यह बात बिना किसी संकोचके कही जा सकती है कि विद्यापीठके वायु-मण्डलपर गिड्वानीजीके व्यक्तित्वकी गहरी छाप पड़ी थी। शिक्षा, संस्कृति और स्वाधीनताकी दृष्टिसे अहमदाबादका गुजरात-महाविद्यालय गुजरातके किसी भी फर्स्ट क्लास कालेजसे कहीं बढ़कर था, और वहाँका पुस्तकालय तो अन्य पुस्तकालयोंसे बहुत ऊँचे दर्जेका था।

जब आप गुजरात-विद्यापीठमें थे, उस समय त्यागमूर्ति प० मोतीलालजीका तार मिला कि जवाहरलालजीके साथ नाभा जाओ। आप वहाँ गये और पकड़ लिये गये तथा नाभाकी जेलमें आपको लगभग साल-भर तक रहना पड़ा। इस बीचमें आपका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया।

महात्माजीने आपको प्रेम-महाविद्यालय वृन्दावनका अध्यक्ष बनाकर भेजा, और यहाँ आप लगभग दो वर्ष रहे। आपके प्रयत्नसे प्रेम-महाविद्यालयमें एक नवीन जीवनका संचार हो गया। उसकी कार्यकारिणी समितिमें कांग्रेसवालोंका प्राधान्य करना आपके ही सदुद्योगका फल था। प्रेम महाविद्यालयसे आप करांचीके म्युनिसिपल बोर्डके शिक्षाध्यक्ष बनकर अपने प्रान्तको वापस गये। वर्तमान आन्दोलनके प्रारम्भ होनेपर भला आपको बिना कार्य किये कैसे चैन मिल सकता था? अतएव आपने पिकेटिंग करना शुरू किया, और अब आप साल-भरके लिए जेल भेज दिये गये हैं।

गिड्वानीजीका व्यक्तित्व

जैसा कि हम बतला चुके हैं, गिड्वानीजी बड़े विचारशील हैं, और

विचारोंकी जिस सतहपर वे विचरते हैं, वह काफी ऊँची है। अमेरिकन दार्शनिक एमर्सनने महापुरुषकी व्याख्या इन शब्दोंमें की थी— "I count him a great man who inhabits a higher sphere of thought, into which other man rise with labour and difficulty." अर्थात्—"मैं उसे महापुरुष कहता हूँ, जो विचारोंकी इतनी उच्च सतहपर रहता हो, जहाँ दूसरे आदमी बड़े परिश्रम और कठिनाईसे ही पहुँच सकें।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि गिड्वानीजी एमर्सनके बड़े भक्त हैं, एमर्सनके कितने ही वाक्य इन्हें कण्ठस्थ हैं और उनके 'Self reliance' (आत्म-निर्भरता) नामक निबंधको वे एक ऐसी अमूल्य चीज समझते हैं, जिसे प्रत्येक नवयुवकको पढ़ना चाहिए। हमारे देशके नवयुवक नेताओंमें बहुत कम ऐसे हैं, जो स्वतन्त्र विचार कर सकते हों। गिड्वानीजीका एक बड़ा गुण उनकी स्वतन्त्र विचारशैली है। कहींपर एक अंग्रेज शिक्षा-विशेषज्ञका व्याख्यान था। गिड्वानीजी भी सुननेके लिए गये थे। आपसे भी बोलनेके लिए कहा गया। आप बोले और बहुत अच्छा बोले। उस अंग्रेजने गिड्वानीजीको बधाई देते हुए कहा—"क्या आपने बर्ट्रेण्ड रसैल की हालमें छपी शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ी है?" गिड्वानीजीने कहा—'नहीं तो।' उस वक्ताको ताज्जुब हुआ क्योंकि गिड्वानीजीके विचार रसेलके, जो अंग्रेज विचारकोंमें शिरोमणि हैं, विचारोंसे बहुत कुछ मिलते-जुलते थे।

गिड्वानीजीकी व्याख्यानशैली उच्चकोटिकी है स्वर बड़ा गंभीर है और उनके व्याख्यानोंमें मानसिक भोजनका काफी मसाला रहता है। अमेरिकासे लौटनेके बाद लाला लाजपतरायजी दिल्लीकी स्पेशल कांग्रेसमें सम्मिलित हुए थे। गिड्वानीजीका भी उसमें भाषण हुआ था। लालाजीने अधिवेशनके विषयमें अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था कि कांग्रेसमें सर्वोत्तम भाषण गिड्वानीजीका ही था।

उनकी भाषणशैली माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजीकी शैलीकी अनुगामिनी है, श्रीमती सरोजिनी नायडूकी शैलीकी नही।'

गिड्वानीजीके चरित्रकी सबसे बडी खूबी उनके मधुर वार्तालाप और मिलनसारीमें दीख पड़ती है। उनका आतिथ्य हृदयग्राही है। इसमें सन्देह नही कि अपनी बातचीतसे वे सुसंस्कृत-से-सुसंस्कृत आदमी पर जबरदस्त असर डाल सकते है। दलबन्दीके प्रति उनके हृदयमें घृणा है। विरोधियोंके प्रति भी कटुवाक्योंका प्रयोग करना वे अनुचित समझते है और अपने साथियोंकी कमजोरियोंके प्रति उनके हृदयमे अधैर्य न होकर सहानुभूति ही है। यदि जवाहरलालजी अपनी अनुपम कर्तव्यनिष्ठा और कठोर शासनसे साथियोपर प्रभाव डालते है, तो गिड्वानीजी अपने मधुर व्यक्तित्व और उदार-विचारशैलीसे। गिड्वानीजीमें जिस चीज़की कमी है, वह है शारीरिक परिश्रम करने योग्य स्वास्थ्यकी। उन्होंने काफी कष्ट सहे है, पर कष्ट सहके वे शरीरसे निर्बल हो गये है। यदि उनके आत्मिक बलके साथ उच्च शारीरिक स्वास्थ्य भी होता, तो फिर क्या कहना था!

गिड्वानीजी कष्टोमे भी प्रसन्न रहना जानते है। वृन्दावनमें उनका स्वास्थ्य प्राय. अच्छा नहीं रहता था। वहाँ आसपासका वायुमडल अनुदार विचारोंके साथ-साथ मलेरियाके कीटाणुओंसे भी परिपूर्ण था। वे कई बार बीमार पड़े। जब उनके मित्रोने कहा कि आप इस स्थानको छोड़कर चले जाइये, यहाँ आपका स्वास्थ्य ठीक नही रहता। आपने यही जवाब दिया—"Life's work lies where you find yourself and not where you wish to be." अर्थात्—"जहाँ परिस्थितिने तुम्हे ला पटका है, वही तुम्हारा कर्तव्य-क्षेत्र है, वह नही, जहाँ तुम जाना चाहो।"

पर वृन्दावनमे अनेक कष्टोंके होते हुए भी उनके लिए एक आकर्षण था, वह वृन्दावनका सन्ध्याकालीन दृश्य और सूर्यास्त। वे अक्सर कहा करते

थे—"मेरे सब कष्टोंके लिए यह दृश्य मानो पुरस्कार है !" जो आदमी इस प्रकार कल्पनाके साम्राज्यमे रहता है, वह भला कैसे दुःखी हो सकता है ? छोटी-छोटी चीज़ोसे प्रसन्नता प्राप्त करना ही बड़प्पनकी निशानी है ।

गिड्वानीजी स्वभावतः शान्त प्रकृतिके आदमी है और उनकी आकांक्षाएँ भी इसी प्रवृत्तिकी सूचक है । आपकी एक आकांक्षा है कि छोटे-छोटे बच्चोंके लिए एक आश्रम स्थापित किया जाय, और सिंधके प्रसिद्ध सन्त दयाराम गीदूमलके नामपर आपने एक आश्रम स्थापित किया भी था । सिन्धी भाषाके आप अच्छे लेखक है और उन्होंने कई पुस्तके भी सिन्धी भाषामे लिखी है । उनकी एक पुरानी आकांक्षा यह भी है कि ६ महीनेकी छुट्टी लेकर दो महीने डाक्टर ब्रजेन्द्रनाथ शील, दो महीने टी० एल० वास्वानी और दो महीने मि० ऐण्ड्रूज़की सेवामें रहा जाय ।

गिड्वानीजीके मधुर व्यक्तित्वको उनके त्याग और देश-भक्तिने आकर्षक बना दिया है । वह दिन मुझे अभी तक नही भूला । दिल्लीके स्टेशनपर गाडीका इन्तजार कर रहा था कि अकस्मात् कुछ दूरीपर खादीका कुरता पहने हुए एक दुर्बल-सा आदमी दीख पडा । चेहरा कुछ परिचित-सा मालूम होता था । कुछ निकट जाकर देखा, तो मालूम हुआ कि गिड्वानीजी है ! वे तौलमे तीस पौंड घट गये थे और पहचाने भी नही जाते थे । कहाँ उनका गुजरात-विद्यापीठका चमकता हुआ चेहरा और कहाँ नाभा-जेलके बादका सूखा हुआ चोला ! पहचानते ही हृदय भर आया और इस बार चरण छूकर मैने उनका अभिवादन किया यद्यपि मैं उन्हे पहले नमस्कार ही किया करता था ।

एक दूसरा दृश्य भी देखिये । 'सिन्ध हेरल्ड' के २१ जूनके अंकमे सम्पादकने लिखा था —

"गिड्वानीजी कराँचीमे विदेशी वस्त्रोकी दूकानपर पिकेटिंग कर रहे थे । कडी धूपमे खड़े बहुत देर हो चुकी थी । उनकी धर्मपत्नी

गंगावहनने आकर कहा—"अब तुम घर जाओ। तुम्हें खड़े-खड़े बहुत देर हो चुकी है। वहाँ बच्चोंकी देख-भाल करना। अब मेरी पारी है। मैं पिकेटिंग करूँगी।"

गिड्वानीजीने कहा—'अच्छा, कोई बात नहीं, पर सुनो तो, हम दोनो ही साथ-साथ क्यों न पिकेटिंग करे।'

एक मित्र वहाँ खड़े हुए थे, बोले—'और बच्चोंकी देख-भाल कौन करेगा?'

उत्तर मिला—'भारत माता।'

कोई आश्चर्यकी बात नहीं, यदि ब्रिटिश सरकार ऐसे देश-भक्त दम्पतिको साम्राज्यके लिए भयकर समझे। यही कारण है कि जो व्यक्ति किसी स्वाधीन देशमें सरकारी विश्वविद्यालयके कुलपति या वैदेशिक राजदूतके पदको सुशोभित करता, वह आज सरकारी जेलमे पडा हुआ. रस्सियाँ बट रहा है!

मई १९३०]

श्रद्धेय बाबू राजेन्द्रप्रसादजी

स्वर्गीय आचार्य गिड्वानीजीने एक बार मुझसे कहा था—"मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मैं तीर्थयात्रा करूँ—एक-एक महीने तक पाँच व्यक्तियोंकी सेवामें रहकर उनके सत्संगका लाभ उठाऊँ।" जब उन व्यक्तियोंके नाम मैंने पूछे तो उन्होंने पाँच नाम गिनाये—आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील, साधु टी० एल० वास्वानी, माननीय श्रीनिवास शास्त्री, कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर और दीनबन्धु ऐण्ड्रूज।

इन पाँचों व्यक्तियोंके प्रति आचार्य्य गिड्वानीजीकी अनन्य श्रद्धा थी। मुझे उनका यह विचार बहुत पसन्द आया और जब मैंने इस बारेमें उनसे अधिक पूछताछ की तो उन्होंने कहा—"नाभा-जेलकी काल-कोठरीमें जब मैंने महाभारतका वह सर्ग पढ़ा, जिसमें पाण्डवोंकी आर्य्यावर्त्त-यात्राका वर्णन था, तो मेरे मनमें यह आकांक्षा उत्पन्न हुई कि मैं भी एक क्षुद्र विद्यार्थीकी हैसियतसे (सुधारक या आन्दोलकके रूपमें नहीं !) भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंकी यात्रा करूँ और नवजीवन-संचारक संस्थाओंमें मातृभूमिके सन्देशको सुनूँ—एक-एक महीने देशकी सुन्दर-सुन्दर विभूतियोंकी सेवामें रहूँ।"

गिड्वानीजी 'एमर्सन'के बड़े भक्त थे और उन्होंने मुझे भी एमर्सनका प्रेमी बना दिया था। एमर्सनने एक जगह लिखा है—"यदि मुझे किसी ऐसे कुतुबनुमेका पता लग जाय, जिसकी सुई मेरे देशो तथा मकानोंकी ओर इशारा कर सके, जहाँ शक्तिशाली महान् व्यक्तियोंका निवास-स्थान है तो मैं तुरन्त अपना सब माल-असबाब जमीन-जायदाद बेचकर उस कुतुब-नुमेको खरीद लूं और आज ही उन देशोंकी यात्रा प्रारम्भ कर दूं।

अत्यन्त दुःखकी बात है कि अकस्मात् हृद्गतिके रुक जानेसे आच

गिड्वानीजीका स्वर्गवास हो गया और वे अपनी आकाक्षाकी पूर्ति न कर सके। पर उनका स्फूर्तिप्रद विचार उनकी विमल कीर्त्तिके साथ विद्यमान है और हम लोग अपने-अपने श्रद्धेय व्यक्तियोंकी सेवामे उपस्थित हो सकते हैं।

सन् १९३७की जनवरीके 'विशाल भारत'मे, 'हमारे तीर्थ' नामक लेखमे, हमने अपने जिन तीर्थोंका जिक्र किया था, उनमे तीसरे नम्बर पर श्रद्धेय बाबू राजेन्द्रप्रसादजीके ग्रामका नाम भी था। प्रथम दो थे—पूज्य महात्माजीका सेवाग्राम और पूज्य द्विवेदीजीका दौलतपुर। सन् १९४५में अपने पुण्योंके उदयके कारण मै राजेन्द्रबाबूके उक्त ग्राम (जीरादेई)के ८-१० मील निकट तक पहुँच भी गया; पर उसी समय मुझे पुलिस द्वारा सूचना मिली कि मेरे नाम वारण्ट है और इसलिए अपनी तीर्थ-यात्राके बिना ही मुझे लौटना पड़ा।

श्रद्धेय राजेन्द्रबाबूके प्रथम दर्शनका सौभाग्य मुझे सन् १९२१मे प्राप्त हुआ था, जब स्वर्गीय सेठ जमनालालजी बजाजके यहाँ हमलोग साथ-साथ ठहरे हुए थे। उस समयकी एक बात मुझे स्मरण है। उन्होंने कहा था—"मैं चाहता हूँ कि आप मेरा लिखा 'चम्पारनका इतिहास' एक बार देख ले।" उस समय मैंने यही निवेदन किया था—"आपकी लिखी चीजको आलोचककी दृष्टिसे देखनेकी धृष्टता मैं कैसे कर सकता हूँ?" उनकी उस विनम्रताका मुझपर बड़ा प्रभाव पड़ा। मुझ-जैसे साधारण लेखकको भी वे गौरव देनेके लिए तैयार थे। तत्पश्चात् मुझे कई बार उनके दर्शन करनेका सुअवसर मिला है। कानपुर-कांग्रेसमें, देवघरके साहित्य-सम्मेलनमे, बिड़ला-हाउस (दिल्ली)में, वर्धामे तथा नई दिल्लीकी सरकारी कोठीमे भी, और मेरी श्रद्धा उनके प्रति निरन्तर बढ़ती ही गई है। सम्भवत इसका कारण यही है कि उन्होंने अपनी राजनीतिसे ऊपर उठकर कहीं ऊँचे धरातलपर अपनी मनुष्यताको बनाये रक्खा है। देशमें कई ऐसे नेता होंगे जो विद्वत्ता, वाक्शक्ति, व्यक्तित्व

तथा प्रभावमें—एक-एक गुणमें अलग-अलग—उनसे बढ़कर भिन्न हों; पर इस विषयमें हमें शक है कि सरल निरभिमानता और अकृत्रिम सहृदयतामें भारतका अन्य कोई नेता उनके निकट भी पहुँच सके। उनकी सहृदयताका ही यह परिणाम है कि उनके पास जानेमें किसी भी साहित्यिकको कुछ डर नहीं लग सकता। प्रत्येक साहित्यिक यह बात जानता है—अगर कोई न जानता हो तो उसे अब जान लेना चाहिए—कि राजेन्द्रबाबूके यहाँ उसका गौरव सुरक्षित है, उनके द्वारसे वह दुरदुराया न जायगा। आजके युगमें, जब स्वाभिमानी साहित्यिक इस परिणामपर पहुँच चुके हैं कि राजनैतिक नेताओंके सम्पर्कमें आना खतरेसे खाली नहीं, राजेन्द्रबाबूका दम गनीमत है। वे विद्वान् हैं, हिन्दी-लेखक हैं और सबसे बढ़कर बात यह है कि वे मनुष्य हैं और 'सर्वजन-सुलभ' हैं।

देवघरका वह दृश्य मुझे अब भी स्मरण है, जब वहाँके हिन्दी-समाजने अपनी अविवेकपूर्ण श्रद्धाके कारण उनका जुलूस निकाला था। उनका वह रूप मुझे आज भी याद है। चेहरे और मूँछोंपर धूल भर गई थी और मुँहपर हवाइयाँ उड़ रही थीं। कोई भी समझदार व्यक्ति उनकी थकानका आसानीसे अनुमान कर सकता था, पर इतनी अक्ल श्रद्धालु जनतामें कहाँसे आती! उसी दिन उनको अधिवेशनमें तो भाग लेना ही पड़ा, रातको बारह या एक बजे तक जगकर हिन्दी-कवियोंकी कविताएँ भी सुननी पड़ीं! अपनी थकानके कारण मैं तो उस कवि-सम्मेलनमें जा नहीं सका, पर मैंने कवि-मण्डलीसे सुन अवश्य लिया कि श्रद्धेय बाबूजीने बड़े प्रेम-पूर्वक कविताएँ सुनी थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि 'वशीकरण' मन्त्र उनके हाथ लग गया है और वह शायद यही है कि उनके हृदयमें छोटे-बड़ेका कोई अन्तर नहीं और प्रत्येकके व्यक्तित्वका वे यथोचित सम्मान करते हैं। बड़े-से-बड़े कलाकार छोटे-से-छोटे नरसे उनका मिलन सरल स्वाभाविकतासे ही होता है। यही कारण है कि विरोधी दलके लोगोंके भी हृदयमें उनके प्रति श्रद्धाकी ही भावना रहती है।

उन्होंने साधारण जनताके उस सम्पर्कको नहीं खोया है, जिसकी कविवर किपलिंगकी 'यदि' (If)नामक कवितामे बड़ी प्रशंसा की गई है।

अपना एक विचित्र अनुभव यहाँ सुना दूँ। हमलोग पत्रोंमें पढ़ चुके थे कि श्रद्धेय बाबूजी कांग्रेसके सभापति होनेवाले है और उससे हम सबको महान् हर्ष हुआ था। एक दिन डाकसे एक कार्ड मिला—

२४ सितम्बर १९३४

श्री चतुर्वेदीजी, प्रणाम।

आपको एक कष्ट दिया चाहता हूँ...मेरे ऊपर कांग्रेसके सभापतित्वका भार...। आप कृपया प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमे छोटा-सा लेख मुझे दें, जिसमे उनकी वास्तविक वर्तमान परिस्थितिका थोड़े-से-थोड़े शब्दोंमें निराकरण रहे। आजकल विशेष जंजीबार, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस-सम्बन्धी चर्चा हो रही है। उनके तथा अन्य प्रदेशोंमे भारतीयों-सम्बन्धी जो जानने-योग्य बातें हो, कृपया थोड़ेमें लिख भेजनेकी दया करें। मैं आज वर्धा जा रहा हूँ। वहाँसे ता० ३०-९ तक वापस आऊँगा। दीनबन्धु एण्ड्रूजसे मैंने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि आपको कष्ट दिया चाहता हूँ। उन्होंने बहुत पसन्द किया। वे आज पं० जवाहर-लालसे मिलने प्रयाग गये। वहाँसे वर्धा चले जायेंगे और फिर बम्बई होते हुए इंगलैण्ड।

आपका

राजेन्द्रप्रसाद

इस कार्डको पढ़कर मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ। प्रवासी भारतीयोंकी सेवाके लिए बीस वर्ष तक जो कार्य मुझसे बन पड़ा था, इस कार्डने उसका भरपूर पुरस्कार मुझे दे दिया। कहाँ कांग्रेसके मनोनीत सभापति और कहाँ हिन्दीका एक क्षुद्र लेखक! इसी प्रकारका एक दूसरा पत्र श्रद्धेय राजेन्द्रबाबूने सेलमसे २६-१०-३५को भेजा था—

प्रणाम,

आपको एक कष्ट देना है। कांग्रेसकी ५०वीं जयन्ती मनानेका निश्चय हुआ है। उस दिनके लिए दो गीत चाहिएँ। हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानीमें एक राष्ट्रिय गीत और एक झंडा-अभिवादनके लिए। विचार हुआ है कि हिन्दी और उर्दूके सभी विख्यात कवियोंको कहा जाय कि वह तैयार कर देवें और उनमें जो सबसे उत्तम हो, वही स्वीकृत हो और सभी जगहोंपर उस दिन गाये जायें। भाषा ऐसी होनी चाहिए जो हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के लिए सुलभ हो और भाव उत्कृष्ट राष्ट्रिय हो। पहले विचार हुआ कि विज्ञापन द्वारा लोगोंसे निवेदन किया जाय। फिर यह सोचा गया कि अच्छे कवि शायद विज्ञापनसे रुष्ट होकर न लिखें। इसलिए यह निश्चय हुआ कि पत्र लिखकर ही प्रार्थना की जाय। मेरा निवेदन है कि आप इस कामको अपने हाथमें लेवें और सब लोगोंसे पत्र-व्यवहार करके, और अगर किसी उर्दू जाननेवाले सज्जन-की सहायताकी जरूरत हो तो उनसे भी सहायता लेकर, सुन्दर-से-सुन्दर दो गीत तैयार करावें। जब बहुत लोगोंकी कविताएँ आ जायँगी तो यह जाँचना भी होगा कि किनकी स्वीकार की जाय और इसके लिए दो-तीन सज्जनोंकी कमेटी बना दी जायगी। आप कृपया इसको हाथमें लें और मुझे सूचित करें कि आप क्या कर रहे हैं और किन लोगोंकी कमेटी बनाई जाय। उत्तर C/o Congress House Mount Road, Madras के पते पर भेजें।

आपका

राजेन्द्रप्रसाद

एक बार जब मैंने अपना लेख 'हमारा मुख्य कार्य क्या है—साहित्य-रचना या हिन्दी-प्रचार ?' उनकी सेवामें भेजकर उनकी सम्मति चाही थी तो उन्होंने मेरे लेखके विरोधमें ही सम्मति दी थी। मेरा वह लेख वस्तुतः एकांगी था और उसमें मैं सन्तुलन ही

खो बैठा था। उनका वह पत्र भी उद्धृत करने योग्य है—

सदाकत आश्रम, पोस्ट दीघाघाट, ज़ि० पटना, १३,४,३८

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी, प्रणाम।

आपका लेख और 'प्रताप' के लेखकी प्रतिलिपि मिली। मैं समझता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने अहिन्दी प्रान्तोंमे राष्ट्रभाषा-प्रचारका काम करके कोई भूल नही की है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है, इसलिए राष्ट्रके नाते हिन्दी-प्रेमियोका कर्तव्य है कि अहिन्दी प्रान्तोंमें इसका प्रचार करे। प्रचारमें जो कुछ काम किया गया है, उससे न तो हमे शर्मिन्दा होना है और न किसी प्रकारका क्षोभ करना है। जो काम हुआ है उसका फल भी यथेष्ट मिला है और अगर आजतक पूरी सफलता नहीं मिली है तो उसका कारण हमारी राष्ट्रभावनाकी कमी है। मद्रास प्रान्तमे, जहाँ की भाषा हिन्दीसे बिल्कुल भिन्न है, सबसे अधिक उत्साह देखा जाता है, क्योंकि वहाँके शिक्षित वर्गमे बहुत लोगोने यह समझ लिया है कि राष्ट्र-के लिए राष्ट्रभाषा आवश्यक है और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। आप जानते होगे कि इधर कई वर्षो से वहाँका सारा खर्च वहाँके लोगोंसे ही मिलता है और उत्तर भारतसे पैसे नही भेजे जाते है। मैं समझता हूँ कि इसी प्रकारसे अन्य अहिन्दी प्रान्तोंमें भी कुछ दिनो काम करनेके बाद हमारा वैसा ही अनुभव होगा और वहाँ भी वहाँके ही लोग सारा भार अपने ऊपर ले लेवेंगे। इसमें अगर कुछ विलम्ब होता है तो हमको न तो निराश होना चाहिए और न घबराकर हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाना चाहिए।

मै यह नही मानता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके प्रचार-काममें लगे रहनेके कारण वह साहित्य-निर्माणमे सहायता नहीं दे सका है। अगर आज सम्मेलन प्रचार-कामको छोड देवे तो भी, जहाँ तक मै समझता हूँ, साहित्य-निर्माणमें वह अधिक सहायक नहीं हो सकेगा। तो भी अगर सम्मेलनके हितैषियोका यह विचार हो और वह इसे स्वीकृत हो तो मैं

भी इसे मान लूँगा कि प्रचार-कामको सम्मेलन अपने हाथमें न रखकर दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-समिति और वर्धाकी प्रचार-समिति तथा इस प्रकारकी अन्य संस्थाओंको स्वतन्त्र रूपसे सौंप दे और उनपर ही प्रचार-के खर्च जमा कर लेने और दूसरे प्रबन्धका भार छोड़ देवे। ऐसा करनेसे उनका बोझ कुछ कम हो जायगा और वह साहित्य-निर्माणके काममें लग सकेगा और ये दूसरी संस्थाएँ प्रचार-कामको जोरोंसे चला सकेंगी।

हिन्दी-प्रचारको मैं भीखकी झोली नहीं मानता और न यह मानता हूँ कि इसके पीछे कोई द्वेष-बुद्धि है। इसका एकमात्र उद्देश्य है और वह है सारे देशके लिए एक राष्ट्रभाषाका प्रचार। किसी भी प्रान्तीय भाषाको मिटाने या कमजोर करनेकी इच्छा किसीके दिलमें स्वप्नमें भी नहीं आई और न आयेगी। हम अपना राष्ट्रके प्रति कर्तव्य-मात्र कर रहे हैं और उसे करते रहनेमें ही हमारा और देशका कल्याण है। हाँ यह दूसरी बात है कि यह कर्तव्य सम्मेलन द्वारा कराया जाय अथवा अन्य संस्थाओं द्वारा।

राजेन्द्रप्रसाद

श्रद्धेय बाबूजीका सबसे महत्त्वपूर्ण पत्र जो मेरे पास है वह है ७ अगस्त सन् १९४५ का और उसमें उन्होंने हिन्दी-उर्दूके विषयमें जो विचार प्रगट किये हैं, उनसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ और वे आज वर्षों बाद भी ज्यों-के त्यों ताजा और उपयोगी हैं—

बिड़ला-भवन
पिलानी, जयपुर-राज्य राजपूताना
७-८-१९४५ ई०

श्रद्धेय चतुर्वेदीजी, प्रणाम।

आपका ??-७ का पत्र मुझे यथासमय मिला। उसी साथ ही रजिस्ट्री द्वारा पद्मसिंह-लिखित 'हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी' नामक पुस्तक

भी मिली। बहुत धन्यवाद। मैंने इस पुस्तकको नहीं देखा था। पढ़ रहा हूँ और जो मेरी धारणा रही है, उसकी पुष्टि इसमें मिल रही है। आजकल लोगोंने विना कारण इतना बड़ा झगड़ा खड़ा कर रखा है। पर मेरा यह विचार है कि हिन्दीवालोंको भी हम इस दोषसे बिल्कुल बरी नहीं कर सकते। अनेकानेक हिन्दी-लेखक भी भाषाकी जटिलतामें ही उसकी सुन्दरता देखते हैं। हम बहुधा भूल जाते हैं कि सादगीमें भी सुन्दरता है और ओज भी है। इसलिए हिन्दीको किसी भाषासे शब्दोंको लेनेमें सकोच नहीं करना चाहिए। यद्यपि हम केवल फारसी-अरबी ही नहीं, अँग्रेजी इत्यादि यूरोपीय भाषाओंसे भी शब्द लेते हैं और हमें लेना चाहिए, हम यह नहीं भूल सकते कि जहाँ पारिभाषिक शब्दोंकी जरूरत पड़ेगी, हमें अधिकाधिक संस्कृत पर ही भरोसा करना पड़ेगा और यदि उर्दूवाले इसके लिए हमसे कुढ़ते हैं तो हम इससे नहीं डरते पर हिन्दी-उर्दूका झगड़ा केवल इतना ही नहीं है। मैं उसमें कुछ साम्प्रदायिकता भी देखता हूँ। यह बात दोनों ओरसे हो रही है और इसलिए जटिलता बढ़ती जा रही है। हिन्दीके लिए कोई डर नहीं है, क्योंकि इसकी नींव मजबूत है। यदि हिन्दीवाले दूरन्देशीसे काम लें तो हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बन सकती है, अर्थात् हिन्दीका वह रूप जो मैं चाहता हूँ, जिसमें बहिष्कार-की नीतिसे काम नहीं लिया जाता, जिसमें किसी जाति अथवा भाषाके प्रति द्वेषका भाव नहीं है और जो जनताके लिए सुगम और सहजमें समझमें आनेवाली है। राष्ट्रभाषा बननेके लिए उसे प्रांतीय भाषाओंके निकट जाना होगा और वह तभी हो सकता है, जब उसमें देशी शब्दोंका ही बाहुल्य हो, विदेशी शब्दोंका नहीं। पर आज कुछ लोगोंके विचार जरूर सकुचित हो गये हैं। जहाँ एक ओर अहिन्दी-भाषियोंको हिन्दी सिखानेका प्रयत्न हो रहा है, वहाँ उन लोगोंसे जो हिन्दीके रूपान्तर-को अपनी भाषा मानते हैं और जो उसे बोलते हैं और लिखते हैं, हिन्दी जटिल बनाकर छीन ली जा रही है। मैं इसमें बुद्धिमानी नहीं

देखता। पर मुझे विश्वास है कि यह दौर कुछ दिनोंमें खत्म हो जायगा। अस्तु।

मैंने 'अमरशहीद फुलेनाप्रसाद श्रीवास्तव' नामक पुस्तिका किसी पत्रमे उद्धृत जेलमे ही देखी थी। मुझे उसीसे पहले-पहल यह रोमाञ्चकारी घटना मालूम हुई; क्योंकि मुझे जेलमे इसकी सूचना नही मिली थी।

मुझसे मृत्युञ्जयने कहा था कि आप जीरादेई जानेवाले थे, पर मैं समझता हूँ कि शायद उस पुस्तिका-सबधी मुकदमेके खडे हो जानेके कारण ही आपका उधर जाना नही हुआ। जो हो, अब आप एक बार उधर मेरे रहनेके समय पधारें तो बहुत अच्छा हो। उस समय यदि आपके दर्शनोका ही नही, सहवासका भी सुअवसर हो जाय तो सोनेमें सुगन्ध हो जाय। यहाँसे बिहार जानेके बाद कुछ दिनो तक तो मैं व्यस्त रहूँगा, तीन वर्षोंके बाद लोगोंसे मिलनेका अवसर मिलेगा। इसके अतिरिक्त आन्दोलनमे बहुतेरोंके साथ बहुत दुर्व्यवहार और जुल्म किया गया है। उनको कुछ सहायता पहुँचानेका काम है। इसलिए आज यह कहना सभव नही है कि मैं कब निश्चिन्त होकर दस-पाँच दिनोंके लिए जीरादेई बैठ सकूँगा। पर जब कभी हो, आप यदि आ सकें तो मैं बड़ा अनुगृहीत होऊँगा।

आपका विचार बहुत सुन्दर है। आन्दोलनका जीवित इतिहास सिपाहियोंकी बहादुरी और जनताके त्यागका ही इतिहास हो सकता है। आप यदि इसे अपने हाथमें लें तो बहुत अच्छा हो, पर इसके लिए मसाला जमा करना कठिन है और समय तथा परिश्रम अपेक्षित है। इसमें काम करनेवाले हैं और वह हिन्दीकी सेवा कर सकते हैं। उनको मार्ग दिखला दे तो वह सुगमतासे आगे बढ़ सकते हैं। कृपा बनाये रखें।

आपका
राजेन्द्रप्रसाद

श्रद्धेय बाबूजीके ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—"आन्दोलनका जीवित इतिहास सिपाहियोंकी बहादुरी और जनताके त्यागका ही इतिहास हो सकता है।"

एक बात निश्चित है। 'परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्य निज-हृदि विकसन्त सन्ति सन्त कियन्त'—इस प्राचीन सूक्तिके अनुसार श्रद्धेय बाबूजी वास्तविक सन्त हैं, क्योंकि दूसरोंके परमाणु-समान गुणोंको पर्वत समझनेकी कला उन्होंने सीख ली है। पर इसमें एक खतरा मौजूद है, वह यह कि बाबूजीके इस सन्तपनसे बिचारे परमाणुओंका दिमाग आसमानपर चढ सकता है। हम उन मूर्खोंमेंसे नही है, जो श्रद्धेय बाबूजीके इस विनम्रतापूर्ण व्यवहारसे व्यर्थाभिमानमें भर जायें। जिसे अपनी क्षुद्रताका अनुभव हो चुका हो, वह बाबूजीके प्रशसात्मक शब्दोंका उचित मूल्याङ्कन आसानीसे कर सकता है। इन पत्रोको उद्धृत करते हुए हमारे मनमें केवल एक ही भावना है, वह यह कि पाठक देखले कि हमारे देशमें एक सर्वश्रेष्ठ राजनैतिक नेता ऐसे भी विद्यमान है, जो एक क्षुद्र साहित्यसेवीकी भी उपेक्षा नही करते।

जैसा हमने प्रारम्भमें ही लिखा है, बाबूजीके गाँवपर ही दो-तीन दिन उनकी सेवामे बितानेकी प्रबल इच्छा बहुत वर्षोंसे रही है, पर वह सौभाग्य अबतक नही मिल पाया।

सबसे अधिक करुणोत्पादक दृश्य हमे सरकसमें वही दीख पडता है, जिसमें शेरको अग्निमय लौहचक्रके भीतरसे कुदाया जाता है, और बिना किसी सकोचके हम यह कह सकते है कि सरकारी पदाधिकारी डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजीके नई दिल्लीवाले रूपमे हमे कोई आकर्षण नही प्रतीत हुआ। वहाँ भी हमने एक बार उनके दर्शन किये थे। टेलीफोनकी घटी बराबर बज रही थी, आने-जानेवालोंका ताँता लगा हुआ था। कितने ही भलेमानस मतलब-बेमतलब उनका वक्त बरबाद करनेके लिए बैठे हुए थे। श्री मथुराबाबू बीमार थे और

श्रद्धेय बाबूजी उनके लिए बहुत चिन्तित। हमारे जैसे कितने ही व्यक्ति समय निश्चित किये बिना ही पहुँच गये थे। श्री चन्द्रशरणजीकी स्थिति दयनीय थी। वे लोगोंको समझा रहे थे; पर उनकी आँख बचाकर किसी दूसरेके साथ खिसककर बाबूजीके पास पहुँचनेके लिए कई महानुभाव उत्सुक थे। हमने फोन पर समय लेनेका प्रयत्न भी तो किया था और अनिश्चित दशामें अपने भाग्यका सहारा लेकर चल पड़े थे। यदि पूज्य बापू होते तो उनसे एक ही जवाब मिलता—'बिना समय लिये कैसे चले आये? लौट जाओ, फिर वक्त तय करके आना।" पर श्रद्धेय बाबूजीने कृपाकर बीस-पच्चीस मिनट दिये। अवश्य ही किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सरकारी कामको छोड़कर उन्होंने वह वक्त मुझे दिया होगा। उनसे मैंने निवेदन किया था कि वे स्वर्गीय डॉक्टर असारीकी कोठीको सरकार द्वारा खरीदवाकर साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्योंके लिए सुरक्षित कर दें। उसका उत्तर उन्होंने यही दिया था—"यह काम जनताका है। वर्तमान परिस्थितिमें सरकारसे यह आशा न रखिए।" यह बात पाकिस्तान बननेके पहलेकी है। इस उत्तरसे मुझे निराशा अवश्य हुई थी। डॉक्टर असारीका वह ऐतिहासिक भवन नष्ट हो रहा था, उसके वृक्ष कट रहे थे और उनके सुन्दर लॉनको नष्ट कर नींव खोदी जा रही थी—वह भवन, जिसमे अनेक बार महात्माजीने आतिथ्य ग्रहण किया था और जहाँ स्वाधीनता-संग्रामके विषयमें बीसियों बार मन्त्रणाएँ हुई थी!

रास्ते भर मैं यही सोचता रहा कि राजेन्द्रबाबू यदि स्वाधीन होते, तो इस भवनको अवश्य बचा लेते। अब भी मेरा यही विश्वास है। सरकार बनाने और सरकार बननेके मानी हैं—काजलकी कोठरीका निर्माण और उसमे प्रवेश! उसमे उज्ज्वल-से-उज्ज्वल मनुष्य पर एक-न-एक रेख लग ही जाती है।

स्वराज्य प्राप्त होने पर भी जनताके सघर्षोंका खातमा नहीं हो गया।

राजेन्द्रबाबूके उसी रूपको हम प्रणाम करते हैं, जिसमें वे सरकारी अनाचारोंके विपक्षमें हों और जनताके साथ। महाकवि तुलसीदासजीने कहा था—'तुलसी मस्तक तब नवै, जब धनुषबान लेउ हाथ'। जनता अब भी यह आशा लगाये हुए है कि श्रद्धेय बाबूजी महात्माजीकी तरह किसी कुटीका निर्माण कर सर्वोदय-समाजका संचालन करेंगे। बापूके सच्चे उत्तराधिकारी वही हैं, दूसरा कोई नहीं।

१६४८]

श्री जवाहरलाल नेहरू

सम्पादकाचार्य रामानन्द चट्टोपाध्यायने 'माडर्न रिव्यू' में पण्डित जवाहरलाल नेहरूके लाहौर कांग्रेसवाले भाषणका जिक्र करते हुए लिखा था—

"हम अपने लिए यह एक गौरवकी बात मानते हैं कि हम जवाहरलाल नेहरूके देशवासी और समकालीन हैं।' कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उनको 'भारतका ऋतुराज' ही बतलाया था। महात्माजी उनको अपना राजनैतिक उत्तराधिकारी मानते थे।

यद्यपि नेहरूजी विश्वमानव हैं और आज उनकी गणना संसारके सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञोंमें की जाती है, तथापि हम लोग जो उत्तर प्रदेशके निवासी हैं, इस बातको नहीं भूल सकते कि वे हमारे प्रान्तके हैं और हिन्दी भाषा-भाषी हैं। पर हमारा इतना अभिमान तभी सार्थक हो सकता है, जब हम लोग अपनी मातृभाषामें उनका एक विस्तृत जीवन-चरित ही नहीं, उनके समस्त भाषणोंका एक संग्रह भी छपा दें। स्वयं पण्डितजीके आत्म-चरितमें, जो एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, उनके जीवनकी मनोहर झाँकियाँ देखनेको मिलती हैं पर उनसे जिज्ञासु पाठकोंकी तृप्ति नहीं हो सकती। भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंको अपने-अपने दृष्टिकोणसे पण्डितजीके विषयमें लिखना चाहिए।

मालूम नहीं कि हिन्दी लेखकों या पत्रकारोंमें कितने व्यक्तियोंको भारतके प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरूके निकट सम्पर्कमें आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्रीयुत बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' उनके अन्तरङ्ग हैं, इतना हमें अवश्य पता है। उनके भी पूर्वके परिचितोंमें श्रीमान् श्रीप्रकाशजी तथा पण्डित सुन्दरलालजीके नाम लिये जा सकते हैं। इन

पीढ़ीके युवकोंमें भी प्रयागके श्रीयुत विश्वम्भरनाथजी प्रभृति दो-एक व्यक्ति हो सकते हैं। खेद है कि उनमेंसे किसीने भी पण्डितजीका कोई अच्छा रेखाचित्र प्रकाशित नहीं किया। हाँ, नवीनजी द्वारा वर्णित दो-एक घटनाएँ और श्रीप्रकाशजीके लेखकी कुछ बातें अवश्य महत्त्वपूर्ण थीं। नवीनजीने अपने फ़ैज़ाबाद जेलके संस्मरणोंमें पं० जवाहरलालजीके व्यक्तित्वकी बड़ी मनोहर झलक दिखलाई थी। नवीनजी उन्हें भागनेके लिए आर्डर देते थे और पण्डितजी उनके नियन्त्रणको बड़ी ख़ूबीके साथ मानते थे। श्रीप्रकाशजीका और पण्डितजीका केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके दिनोंसे परिचय है, इसलिए उनका चित्रण भी सुपाठ्य बन पड़ा था।

हमें इस बारेमें शक है कि किसी हिन्दी पत्रकारने पत्रकारकी हैसियत से पण्डितजीको निकटसे देखा होगा। उनका रहन-सहन, चाल-ढाल और उनके स्वभाव तथा चरित्रमें जो आभिजात्य है, वह उनके तथा साधारण लेखकके बीचमें एक खाई-सी खोद देता है, जिसे लाँघना खतरेसे खाली नहीं!

इन पंक्तियोंके लेखकने पण्डितजीको दूरसे ही देखा है। चाहे संकोच कहिए या स्वाभिमान, पण्डितजीकी तरहके महापुरुषोंके निकट जानेका साहस हमें कभी नहीं हुआ और भविष्यमें इसकी कोई सम्भावना भी नहीं। आज तो हमें क्षुद्र-से-क्षुद्र व्यक्ति, साधारण सैनिक और मामूली कार्यकर्त्ता-में महत्त्वका अनुसन्धान करना है, इसलिए अन्तर्राष्ट्रिय कीर्त्ति-प्राप्त महा-पुरुषोंको अल्पसंख्यक नेताओं तथा विदेशी पत्रकारोंके लिए सुरक्षित छोड़ा जा सकता है।

अपने पत्रकार-जीवनमें जिन घटनाओंको हम महत्त्वपूर्ण मानते हैं, उनमें एक तो यह थी कि अलमोड़ा जेलसे पंडित जवाहरलालने अपने चार हिन्दी लेख 'विशाल भारत'के लिए भिजवाये थे और वे इतने बढ़िया थे कि उन्हें हमने एक ही अंकमें छाप दिया था! दूसरी घटना हालकी है। अमर शहीद चन्द्रशेखर 'आज़ाद'की माताजीके विषयमें हमारे एक

लेखको पढ़कर पण्डितजीने ढाई सौ रुपयेका एक चेक श्रद्धेय मानाजीके सहायतार्थ हमारे नाम भेज दिया था।

वैसे दो बार पन्द्रह-पन्द्रह मिनटके लिए प्रवासी भारतीयोंके विषयपर उनसे वार्तालाप करनेका सौभाग्य भी हमें प्राप्त हुआ था—एक बार डाक्टर विधानचन्द्ररायके मकान पर कलकत्तेमें और दूसरी बार आल इंडिया कांग्रेस कमिटीके आफिस, प्रयागमें।

कैनिया डेली मेल (मोम्बासा, पूर्व अफ्रीका)को मैंने एक लेख भेजा था, जिसमें मैंने प्रवासी भारतीयोंसे यह निवेदन किया था कि वे भारतकी किसी विशेष राजनैतिक पार्टीसे अपना सम्बन्ध न रखें, क्योंकि उनके लिए कांग्रेस और लिबरल पार्टी दोनों ही समान थीं। दोनों दलों ही में उनके शुभचिंतक पाये जाते थे। जब पण्डितजीने वह लेख पढ़ा तो उद्विग्न होकर कहा—"आप भी अजीब आदमी हैं! किस तरहकी बातें लिख भेजते हैं! प्रवासी भारतीय क्यों न हमारी कांग्रेससे ताल्लुक रखें?" ऐसा कहते हुए उन्होंने मेजपर एक घूसा लगाया। मुझे इससे आश्चर्य हुआ, पर मैंने विनम्रता-पूर्वक इतना ही कहा—'यह तो अपने-अपने विचार हैं।'

प्रयागकी बातचीत अधिक शांत वातावरणमें हुई थी। पण्डितजीने मेरे प्रवासी भारतीय-सम्बन्धी ग्रन्थों तथा कांग्रेसमें वैदेशिक विभागकी स्थापनाके लिए मैंने जो आन्दोलन किया था उसकी मोटी फाइलोंको देखकर सिर्फ इतना ही कहा—"कांग्रेसमें वैदेशिक विभाग कायम करनेके लिए आपको बहुत मेहनत करनी पड़ी। मैंने तो [illegible] एक प्रस्ताव-से ही उसे स्थापित करा लिया था।"

इस कथनका केवल एक ही उत्तर हो सकता था—"बड़े-बड़े नेताओंके लिए जो कार्य आसान होते हैं, क्षुद्र कार्यकर्ता उन्हें वर्षों प्रयत्न करके कर पाते हैं।' पर यह उत्तर देनेका साहस मुझमें नहीं था।

आदरणीय पण्डितजीके दस-बारह पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। उनमें

कुछ काफी विस्तृत भी है, पर वे सब वैदेशिक विभाग-सम्बन्धी ही है। कृतज्ञतापूर्वक मुझे यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि पडितजीने ही मेरी पूर्व अफ्रीका यात्राके लिए काग्रेसकी ओरसे दो हजार रुपये पूर्व अफ्रीकाको भेजे थे और मुझे दक्षिण अफ्रिका जानेका आदेश भी दिया था।

एक बार पण्डितजी दो मिनटके लिए साबरमती आश्रमके मेरे कार्यालयमे पधारे थे और एक बार दीनबन्धु ऐण्ड्रूजके साथ आनन्दभवनमे कार्यकर्त्ताओंके शिविरमें जानेका सुअवसर मुझे भी मिला था। सन् १९२१ में छिवकी (इलाहाबाद) से बम्बईतक एक ही डिब्बेमें श्री महादेवभाई तथा पंडितजीके साथ यात्रा करनेका सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ था। पर इन अवसरो पर कुछ बातचीत करनेकी हिम्मत ही नही हुई।

यह बात मुझे ईमानदारीके साथ कहनी पडेगी कि इस विषयमें सुभाषबाबूके विषयमे मेरा अनुभव बिल्कुल विपरीत ही हुआ। कलकत्ता काग्रेसके अवसरपर राष्ट्रभाषा कान्फ्रेंस हुई थी, जिसकी स्वागतकारिणीके सभापति थे सुभाषबाबू और मंत्री था इन पंक्तियोका लेखक। इसी प्रसगमें मुझे उनकी सेवामें कई बार उपस्थित होना पडा। सुभाषबाबूने एक बार कहा—"पडितजी, आप बार-बार क्यो तग होते है? आपको मै अधिकार देता हूँ कि हिन्दी-सम्बन्धी पत्रोपर आप स्वय मेरे हस्ताक्षर कर दें।" उनका यह आदेश सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ और मैने कहा—"यह कैसे हो सकता है?" इसपर उन्होने उत्तर दिया—"मै आप पर विश्वास जो करता हूँ।" इसी प्रकार दो-चार बाते समझाकर अपना स्वागताध्यक्षका भाषण लिखनेका आदेश भी उन्होने मुझे दे दिया था।

इन दोनो महापुरुषोंके स्वभावोके वैचित्र्यका दिग्दर्शन करानेके लिए ही मैंने उपर्युक्त घटना लिख दी है। अभी हालमे श्रीयुत ऐच० बी० कामठ ने भी यही बात कही है। उनका कथन है—"नेहरूजीका व्यक्तित्व अत्यन्त शक्तिशाली है, लेकिन उनमें वह सहृदयता, वह निजीपन नही है, जो सुभषबोसमे था।"

यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि नेहरूजीकी समस्त शिक्षा-दीक्षा विलायतमें हुई थी और स्वभावत अंग्रेजोंके बहुतसे गुण और एकाध त्रुटि भी उनमे पाई जा सकती है। पर हमे छिद्रान्वेषणकी दृष्टिसे उस त्रुटिपर विचार नही करना चाहिए। क्षुद्र साम्प्रदायिकता विभाजक प्रान्तीयता और सकुचित राष्ट्रियताते सर्वथा ऊपर उठने वाला व्यक्तित्व यदि किसी भारतीयमे है तो वे श्री जवाहरलालजी ही है। फिरकेबन्दीकी सत्यानाशी बाढको रोकनेमे यदि कोई समर्थ हो सकता है तो वे ही। अल्पसख्यकोंका जीवन, धन और सस्कृति उनके हाथो में सुरक्षित है। हम लोगोमे इतना प्रमाद लचड-धौंधोंपन और शैथिल्य पाया जाता है कि जवाहरलालजीकी तरहके नियत्रण-प्रेमी व्यक्तियोंकी इस देशको अत्यन्त आवश्यकता है।

हमारे मनमें एक आशका प्राय उठती रहती है। वह यह कि क्या श्री जवाहरलाल नेहरू अपनी विलायती शिक्षा-दीक्षा और सर्वोच्च पदके कारण कही Common touch—जनताके निकट-सम्पर्क—से कुछ अशोमें वचित तो नहीं हो रहे है? यह आशा तो हमने कभी नही की कि वे हिन्दी-साहित्यका अध्ययन करेंगे—इतना अवकाश उन्हे मिल ही नही सकता—पर क्या वे हिन्दी-पत्र-जगत्की गतिविधिसे अपनेको परिचित रखनेका प्रयत्न भी करते है? उनके भाषणोंसे तो ऐसा प्रतीत नही होता।

किसी लेखकने लिखा था—"केवल इगलैण्ड ही एक द्वीप नही है, प्रत्येक अग्रेज एक द्वीप है।"

हिन्दी-साहित्य तथा पत्रजगत्मे जबतक हम महापुरुषोपर निर्भर रहनेकी भावनाको पुष्ट करते रहेंगे, हमारा कल्याण कदापि नही होगा। अणुबमके इस युगमे हमे क्षुद्र-से-क्षुद्र व्यक्तिको उचित महत्त्व देना होगा। सम्पूर्ण कीर्ति केवल सेनाध्यक्षोंको ही अर्पित कर देने और साधारण सैनिकोंकी बिल्कुल उपेक्षा करनेकी नीतिको तिलाजलि दे देनी होगी

अब आ गया है। देशकी स्वाधीनताका इतिहास अब सिपाहियोंकी दृष्टिसे लिखा जाना चाहिए। महापुरुषोका हम अवश्य अभिनन्दन करे, पर इस बातको न भूलें कि जनता-जनार्दनकी सहायता, सहयोग, भक्ति और प्रेरणासे ही उन्हे महत्त्व प्राप्त हुआ।

इस अवसरपर हम सब शक्तियोंके मूल-स्रोत जनता-जनार्दनका ही सर्वप्रथम अभिनन्दन करते है, तत्पश्चात् विश्वमानव श्री जवाहर-लालजीका।

अक्तूबर १९४९]

कविवर रत्नाकरजीसे बातचीत

आजकल जब कि लोग बड़े गौरवके साथ भविष्यवाणी कर रहे हैं कि बीस वर्षके अन्दर ब्रजभाषाका लोप हो जायगा और कोई-कोई बड़े अभिमानके साथ कुतुबमीनारसे यह घोषणा करनेके लिए उद्यत हैं कि पचास वर्षकी उम्रके पहले ब्रजभाषाके काव्य हर्गिज़ न पढ़े जाने चाहिए, जब कि ब्रजभाषा भारतकी पराधीनताका एक मुख्य कारण बतलाई जा रही है, वर्तमान कालमें ब्रजभाषाके सर्वश्रेष्ठ कवि रत्नाकरजीकी सेवामें उपस्थित होकर उनसे बातचीत करना एक ऐसा भयंकर अपराध है, जिसके लिए साहित्यिक 'पिनल कोड' में कोई दंड-विधान होना चाहिए। पर जब यह अपराध बन ही पड़ा तो फिर उसका वृत्तान्त पाठकोंको सुना देना ही ठीक होगा, क्योंकि सुना है कि पाप-पुण्य दोनों ही कहनेसे क्षीण होते हैं!

देशभक्ति और भारतोद्धारकी बेतुकी कविता पढ़ते-पढ़ते तबीयत कुछ ऊब सी गई थी, 'अनन्त में लीन' होनेकी सामर्थ्य अपनेमें थी नहीं और न उसके लिए अभी विशेष उत्सुकता ही, 'हमनी' और 'चिमनी' की कर्णकटु ध्वनिसे कान फटने जा रहे थे कि इतनेमें सुनाई पड़ा कि रत्नाकरजी कलकत्ते आये हुए हैं और दस-पन्द्रह दिन यहां ठहरेंगे। उसी समय उस ब्रजकोकिल सत्यनारायणकी याद आ गई, जिसके ये मधुर शब्द आज भी कानोंमें गूंज रहे हैं—

"बरननको करि सकै भला तिहि भाषा कोटी,
मचलि-मचलि जामें मांगी हरि माखन रोटी।"

मनमें सोचने लगा कि क्या ही अच्छा होता यदि आज सत्यनारायणजी जीवित होते और उनको साथ लेकर रत्नाकरजीकी सेवामें उपस्थित

होता। ये दोनों एक दूसरेको अपनी कविता सुनाते और मैं बैठा-बैठा सुनता! पर यह होना नहीं था, इसलिए 'हृदय-तरंग' (सत्यनारायणकी कविताओं-का संग्रह) और उनका जीवन चरित लेकर ही रत्नाकरजीकी सेवामें उपस्थित हुआ।

रत्नाकरजी बड़े मिलनसार और रसिक आदमी हैं और उनसे बात-चीत करनेमें आनन्द आता है। दस-बारह दिन उनके सत्संगका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस बीचमें उनसे प्राचीन कवियोंसे लेकर वर्तमान कवियों तक के विषयमें बातचीत हुई। रत्नाकरजी हम लोगोंसे दो पीढ़ी पहलेके हैं, इसलिए उनकी मनोवृत्तिमें प्राचीनताका पुट होना स्वाभाविक ही है।

रत्नाकरजीसे बातचीत करना मानो अपनेको पद्माकरके समयमें ले जाना है। साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह शर्माने कविरत्न श्रीनवनीतलाल चतुर्वेदीका वृत्तान्त लिखते हुए ज़ौकका निम्न-लिखित शेर उद्धृत किया था.—

"रंगी है आज कल के गुले-नौ-बहार से,
अगला जो बर्गे-ज़र्द कोई इस चमनमें है।"

श्री नवनीतजीकी तरह रत्नाकरजी भी ब्रजभाषाकी पुरानी फुल-वारीके पीले पत्ते (बर्गे-ज़र्द) हैं। दोनोमें उम्रका भी विशेष अन्तर नहीं; नवनीतजी ७८ वर्षके हैं और रत्नाकरजी उनसे आठ वर्ष छोटे। रत्नाकर-जीके साथ ब्रजभाषाके काव्योपवनकी सैर करनेमें बड़ा आनन्द आया। पुराने कवियोंकी रचनाएँ उनसे सुनी और उनकी कथाएँ भी। पाठकोंको भी उनमेंसे कुछ सुनाना अनुचित न होगा।

रत्नाकरजीने पद्माकरके पिता मोहन भट्टकी एक कविता सुनाई। मोहन भट्टने यह प्रतिज्ञा करली थी कि जब वर्णन करेंगे तो गोपियोंका ही वर्णन करेंगे, कृष्ण भगवान्की प्रशंसा न करेंगे। जयपुरके महाराज प्रतापसिंहको यह खबर लगी। उन्होंने भट्टजीसे कहा कि आप द्रौपदी चीर-हरण पर कोई कवित्त कहें। उन्होंने सोचा था कि इस प्रसंगमें तो

भट्टजीको भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा करनी ही पड़ेगी, पर उनकी यह आशा निराशामें परिणत हो गई, जब भट्टजीने निम्नलिखित कवित्त सुनाया—

"कबै आप गये हे बिसाहन बजार बीच
कबै बोलि जुलहा बिनायो दरपट सों;
नन्द जूकी कामरी न काहू वसुदेवजूकी
तीन हाथ पटुका लपेटे रहे कट सों।
मोहन भनत यामें रावरी बड़ाई कहा
राखि लीन्ही आन-बान ऐसे नटखट सों,
चोरि चोरि लीन्हे तब गोपिन के चीर
अब जोरि जोरि देन लगे द्रौपदीके पट सों"।

रत्नाकर जी पद्माकरके बड़े प्रशंसक हैं और वास्तवमें उनकी कविता पर नन्ददास और पद्माकरका बड़ा प्रभाव भी पड़ा है। पद्माकरके विषयमें उन्होंने कई किस्से भी सुनाये।

काशीमें पहले श्रावणके महीनेमें गधु-उतार का मेला हुआ करता था। आजकल जहाँ बनारस वाटर-वर्क्स है, उनके पीछे बड़ा भारी तालाब है। वहीं यह मेला जमता था। उसमें गौनहारिनें गाती हुई चलती थीं और गुंडे लोग उनके साथ लट्ठ लिये हुए और उनपर बोली-ठोली छोड़ते हुए चलते थे। एक बार जयपुरके महाराज प्रतापसिंहके साथ पद्माकर श्रावणके महीनेमें काशी पधारे और उस मेलेमें गये। गुंडे लोग बोली ठोलते हुए कह रहे थे—"रस है की रस है" महाराज प्रतापसिंहजी इसका अर्थ न समझ सके। उन्होंने पद्माकरको इशारा किया कि देखें क्या बात है? उन्होंने तुरन्त ही यह कवित्त बनाकर सुना दिया—

"सावन सलोने मन भावन के संग लागि
क्यों न चलि सुन्दरि हिंडोरे [illegible]

कहै पद्माकर त्यों जोवन उमगनि तैं
उमगि उमंगित अनग अंग-अंग पर।
चारु चूनरी की चारो तरफ तरंग तैसी
तंग अँगिया है तनी उरज उतंगपर,
सौतनिके वदन विलोकै वदरंग होत,
रग है री रग तेरी मेहदी सुरंग पर।"

महाराज प्रतापसिंह वड़े प्रसन्न हुए और एक हज़ार मुहर उन्होंने पद्माकरको इनाममें देनेके लिये कहा। पद्माकर सकटमें पड़ गये। वे नम्रता पूर्वक वोले—"महाराज, मैं काशीका दिया हुआ दान नहीं ले सकता।" महाराजने कहा कि अव तो हम संकल्प कर चुके हैं तुम्हें लेना ही होगा। पद्माकरको मजबूर हो कर दान लेना पडा, पर उन्होंने तुरन्त ही अपनी ओरसे उसमें एक सौ मुहर मिलाकर उसे काशीके पंडितोंमें वाँट दिया। एक-एक वनात और एक-एक मुहर प्रत्येक पंडितकी सेवामें अर्पित की। काशीके नई वस्ती मुहल्लेके पं० श्यामाचरणजीके पुत्र पंडित अयोध्यानाथ जीके पास जीर्ण शीर्ण अवस्थामें वह वनात रत्नाकरजीने स्वयं देखी थी।

पद्माकर वड़े ठाट-वाटसे रहते थे। यात्रामे उनके साथ हाथी, दो चार ऊँट, वीसियों सवार और अनेक रथ तथा रथोंमें दस पाँच वेश्याएँ भी चलती थीं! एक वार उनको आता देखकर किसी ग्रामके निवासियोंको यह आशंका हो गई कि कोई राजा चढ़ आया है। उस समय पद्माकरने एक कवित्त कहकर उन लोगोंकी आशंका दूर की। कवित्तका अन्तिम चरण था—"हम कविराज हैं प्रताप महाराजके।"

जयपुरमें एक वाग है, जहाँ सावनके महीनेमें लोग झूलनेके लिए जाया करते हैं। महाराज प्रतापसिंह भी वहाँ गये और उन्होंने पद्माकरको एक समस्या दी—"सावनमें झूलिवो सुहावनो लगत है।" इसकी पूर्ति पद्माकरने इस प्रकार की—

"भौंरनि की गुंजनि विहार वन-कुंजनिमें
मंजुल मल्हारनिको गावनो लगत है;
कहै पद्माकर गुमान हू तें, मान हू तें,
प्रान हू तें, प्यारो मनभावनो लगत है।
मोरनि को सोर घनघोर चहूँ ओरनि
हिंडोरनि को वृन्द छवि छावनो लगत है,
नेह सरसावन में मेह बरसावन में
सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है।"

पजनेसके भी कई कवित्त रत्नाकरजीने सुनाये। इस प्रसंगमें एक मनोरंजक घटना कहे बिना लेखनी आगे नहीं चलती। भारत-जीवनके अध्यक्ष बाबू रामकृष्ण वर्मा 'पजनेस' के कवित्तोंका संग्रह प्रकाशित करना चाहते थे, पर 'पजनेस' के बहुत कम कवित्त मिलते थे, इसलिए उन्होंने एक नोटिस निकाल दिया था कि जो आदमी 'पजनेस' के कवित्त-संग्रहमें हमारी सहायता करेंगे, उन्हें हम फी कवित्त एक रुपया देंगे। दो चार कवित्त तो रत्नाकरजीको याद थे, बाकी आठ-दस कवित्त उसी जोड़के आपने स्वयं बना डाले और सब मिलाकर बाबू रामकृष्ण वर्माके पास ले गये और दस पन्द्रह रुपये वसूल कर लाये। वर्माजी स्वयं कवि थे और अच्छे कविता मर्मज्ञ भी थे, पर वे रत्नाकरजीकी चालाकीको ताड़ नहीं सके। ताड़ते कैसे? रत्नाकरजीने भी वह कुशलता इन कवित्तोंकी रचनामें दिखलाई थी कि यदि एक बार स्वयं 'पजनेस' भी सुनते तो वे भी प्रसन्न हो जाते। पीछे रत्नाकरजीने वर्माजीके रुपये वापस दे दिये और उन्हें अपनी करतूतका भेद बतला दिया।—

'पजनेस' के दो कवित्त सुन लीजिए—

'छूटो चिकुर परी प्यारी कहीं
परजंक तें पैनि ... ... ;

लै बरजोरी करी पजनेस
वसीकर सी तसवीर वधूपर।
हा! सखी! पीन-पयोधर पै नग्न लागे
लला ललचात तिहूँ पर,
मानो खरादि चढे रवि की
किरणे पड़ीं आनि सुमेर के ऊपर।"

किसी पुराणमे कहा गया है कि सूर्य भगवान्‌का विवाह होनेपर उनकी पत्नी भयंकर आतपके कारण उनके निकट नही जा सकती थीं, इसलिये-सूर्यको खराद पर चढ़ाया गया था।

पजनेसको दूसरा कवित्त, जो रत्नाकरजीने सुनाया, वह यह था—

फरस जरी के नग-जूटनि जटित चौक
चाँदनी से फवत फनूस तमकत है,
झूलत जराऊ हेम गगन-हिंडोरें चढ़ि
पावस निसा के घन घूमि घमकत हैं।
भनि पजनेस हँसि हाँसनि झुलावैं लाल
तियनि के तन दीप दाम दमकत हैं,
महावीर मदन वनैत की विसाल
मानो वरति वनैठिनि के चक्र चमकत हैं।"

रत्नाकरजीने काशिराजके आश्रयमें रहनवाले हनुमान कविके विषयमें बहुत सी बाते सुनाईं। काशिराजने प्रसन्न हो कर उन्हे एक छोटी सी हथिनी इनाममें दी थी, उस पर उन्होने यह कवित्त बनाया—

"कौतुक विशेष भयौ एक काशिका में आज
दीन्यौ सबही कौ जिन मोद मनमाना है;
दान पाइ तुमसौं मैं भूप ईसुरी प्रसाद
चल्यौ घर कौ सो भयौ जाहिर जहाना है।

दूर ही तैं हलके गयन्दन के गाटे संग
नखि हनुमान को न कोऊ पहिचाना है
कोई कहै आवत बुँदेला कै बघेला यह
कोई कछवाह कहै कोउ कहै राना है।'

हनुमान कवि कालिंजरसे १५) महीने पाते थे। इन्हींमें उन्हें परम सन्तोष था। एक बार महाराज विजयानगरने उनके पास सन्देश भेजा कि आप हमारे यहाँ आजाइये, आपको हम सौ रुपया महीने देंगे। बात यह थी कि कालिंजर और विजयानगरके महाराजकी होड़-सी चलती थी। जब विजयानगरका विवाह रीवाँमें निश्चित हुआ, तो शाखोच्चार के लिये कविकी आवश्यकता प्रतीत हुई। किसीने महाराज विजयानगर से कहा—"हनुमान कवि सर्वश्रेष्ठ हैं सो उनको आप ले चलिये।' कविवर के पास सन्देश भेजा गया कि हम दस हजार रुपये एक साथ देंगे और १००) पेंशन कर देंगे, आप कालिंजर का आश्रय छोड़कर हमारे यहाँ चले आइये। पर स्वाभिमानी हनुमान कवि ने इसे अस्वीकार कर दिया। उस अवसर का एक कवित्त रत्नाकर जी ने सुनाया, पर वह उन्हें अपूर्ण ही याद था—

"जाकी गाय सुजन रिझाइ भाँति भाँतिन सौं
नीके नये . सुयशन की नावों मैं

× × ×

कहै हनुमान एक ईसुरीप्रसाद ही
दान सनमान की सनेह की अभिलाषी हैं,
वारौं अवनीन्द्रके रियाय औ महीन्द्र कौन
इन्द्र हू सौं जाँचिबे की लालसा न राखी हैं।

अयोध्याके महाराजा प्रतापनारायणसिंहजीके भाना महाराज मानसिंह-का एक कवित्त रत्नाकरजीको बहुत पसन्द है। वह भी उन्होंने सुनाया—

"वृन्दावन वीथिनमें वंशीवट छाँह अरी,
कौतुक अनोखो एक आज लखि आई मैं,
लाग्यौ हुतो हाट एक मदन धनीकी तहाँ,
गोपिनको भुंड रह्यौ भूमि चहुँघाई मैं।
द्विजदेव मौदा की न रीति कछु भाखी जाइ,
जैसी भई नैन उन्मत्तकी दिखाई मैं;
लै लैं कछु रूप मनमोहनसौं वीर दे
अहीरिनि गँवारी देति हीरनि वटाई मैं।"

अयोध्याके राज-कवि लच्छीरामजीके भी दो कवित्त सुन लीजिये—

"फाग अनुरागमें कुमारी कल कीरतिकी
मारी पिचकारी पाग पेच लहपट मैं;
रसिकविहारी त्यौं गुलालकी घटानि घेरि
सराबोर सारी करी रंगनि भपट मैं।
अंचलके ओट राखि हाथनिकौ हारनि पै
राजै लछिराम करी उपमा प्रगट मैं;
मज्जन गिरामें करि मानो मैनवाला
मंत्र मोहन जपति ज्वालमालाकी लपट मैं।"

"तीसरे पहरलौं मचाई रसवस फाग
परब सपूनौ क्वाँर चाँदनीकी सुख है;
पाछिले पहर नौलि नेहिके उमगनि सौं
बिथकति सोई बाल स्याम सनमुख है।
सारी सेत भीतर गुराई यौं भलकि देति
लछिराम कछुक तिरीछो गात रुख है;
जंग जीति जगत अनगसौं विचलि परयौ
गंगधार मानो चारु चम्पाको धनुप है।"

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके विषयमें भी रत्नाकरजीने अनेक मनोरंजक

बातें सुनाईं, जिनमेंसे दो एक यहाँ उद्धृत की जाती हैं। एक दिन सवेरे जाड़ेके दिनोंमें पौ फटनेके समय रत्नाकरजीके दरवाजेपर आकर किसीने आवाज दी—

"हर गंगा भई हर गंगा, पैसा न देहि वाको बाप नंगा
बारह बरसके सरवन भये, हर गंगा भई हर गंगा।"

रत्नाकरजीके पिताजीकी आँख खुल गई। उन्होंने समझा कि कोई सरवन वाला साधु है, जो इसी तरहके गाना गाकर पैसे माँगा करते हैं। अपने नौकर महेशको बुलाकर उन्होंने कहा, "एक पैसा देआ भई सवेरे साधु आया है।" महेशने जाकर दरवाजा खोला तो वहाँ भारतेन्दुजी खड़े हँस रहे थे। रत्नाकरजीके पिताजीने तुरन्त उन्हें ऊपर बुला लिया और हँसते हुए कहा—"तुम भी बड़े नालायक आदमी हो। वैसे ही आकर दरवाजा खुलवा लेते।" हरिश्चन्द्रजी बोले—"पहले हमारा पैसा हमें दो, और बातें पीछे होंगी।" रत्नाकरजीके पिताजीकी भारतेन्दुजीके साथ गाढ़ी मित्रता थी और दोनोंका आपसमें खूब मजाक होता था यद्यपि रत्नाकरजीके पिताजी उम्रमें दस बारह वर्ष बड़े थे।

रत्नाकरजीने एक कवि-सम्मेलनका वृत्तान्त बतलाया जो अनवरत तीन दिन-रात तक भारतेन्दु बाबूके घरपर हुआ था। इस कवि-सम्मेलनमें रत्नाकरजी भी गये थे। उस समय उनकी उम्र दस बरसकी थी। बाहरसे अनेक कवि आये थे। नहाने-धोने, खाने-पीने सोने इत्यादिका प्रबन्ध वहीं किया गया था। तीस-चालीस पलंग बिछा दिये गये थे। नींद लगनेपर लोग वहीं सो जाते थे। हलवाई बिठला दिया गया था और उसको यह आज्ञा दे दी गई थी कि जिसको जिस चीजकी जरूरत हो उसे बिना पैसेके दे दी जाय। व्यवसायियोंके लिए भी पृथक प्रबन्ध कर दिया गया था। काशीवाले अपने घर चले जाते थे और फिर लौट आते थे। तीन दिन-रात यह कवि-सम्मेलन लगातार चलता रहा।

एक बार भारतेन्दु बाबूने रत्नाकरजीको [illegible]

था—"यह लड़का आगे चलकर अच्छा कवि बनेगा।" बात यह थी कि रत्नाकरजीके हृदयमें कविताके प्रति रुचि थी, और बाल्यावस्थासे ही वे कवियोंकी मडलीमे बराबर बैठा करते थे।

जिन कवियों तथा साहित्यसेवियोंसे रत्नाकरजीका अच्छा परिचय था, उनमेंसे कुछके नाम यहाँ दिये जाते हैं—

बाबू कार्तिकप्रसाद, बाबू रामकृष्ण वर्मा, श्री अमीरसिंह, बाबू राधाकृष्णदास, राव कृष्णदेवशरणसिंह (भरतपुरके एक भूतपूर्व महाराज), अयोध्याके महाराज साहब, अयोध्याके राजकवि लच्छीरामजी, पं० लक्ष्मीनारायण 'कमलापति', प० पन्नालाल, सरदार कवि, नारायण कवि, पटनेवाले बाबा सुमेरसिंह, सतीप्रसाद, सिद्धजी, पडा जोखूराम, रीवाँवाल द्विज श्याम, मार्कण्डेय, रामाधीनजी, नकछेदी तिवारी इत्यादि। सरदार कविसे तो रत्नाकरजीने कुछ पढा भी था। सरदार कविकी विद्वत्ताकी वे बड़ी प्रशसा करते हैं।

श्रीयुत दुर्गाप्रसाद मिश्र और बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तके विषयमें भी बहुतसी बातें रत्नाकरजीने बतलाईं। मिश्रजीकी हास्यप्रियताके अनेक किस्से उन्होंने सुनाये।

दुर्गाप्रसादजीने एक पुस्तक लिखी थी। एक आलोचक महोदयको उसमें कई स्थल नापसन्द आये और उन्होंने पुस्तकके चार-पाँच पृष्ठोंके आपत्तिजनक स्थलोंका जिक्र करते हुए एक कटुतापूर्ण चिट्ठी मिश्रजीको लिखी। मिश्रजीने अपनी पुस्तकके पृष्ठोंके हिसाबसे चार-पाँच पृष्ठोंका मूल्य निकाला जो तीन पैसे बैठा। चार पैसे और खर्च करके आपने उन महानुभावको मनीआर्डर भेज दिया और यह लिख दिया कि जिन पृष्ठोंको आप आक्षेप-योग्य समझते हैं, उन्हें फाड़ फेंकिये उनका मूल्य आपकी सेवामें भेजा जाता है! मिश्रजी बड़े उपद्रवी भी थे। अपने मित्र एक मियाँ साहबको एक बार उन्होंने बहुत तग किया। ये मियाँ साहब

तुम्हारा ?" वह ऐं ऐं करने लगा। बस मिश्रजीकी बन आई। डाँटकर बोले--"अब ऐं-ऐं करनेमे क्या होता है ? बनारससे कोट लेकर भागे हो, बच्चू ? चलो-चलो, जल्दी करो, थानेमें तुम्हारी अच्छी तरह खबर ली जायगी।" वह बहुत खुशामद करने लगा। मिश्रजीने कहा—"अच्छा कोट हमे दो और वादा करो कि फिर कभी ऐसा काम न करोगे, तो हम छोड़ सकते हैं।" उसने कोट निकालकर मिश्रजीके हवाले किया। मिश्रजीने घर लौटकर वह कोट रत्नाकरजीके सुपुर्द कर दिया।

रत्नाकरजी सुप्रसिद्ध हिन्दी प्रेमी अंगरेज़ मि० ग्रियर्सनसे भी मिले थे। यह बात कोई चालीस वर्ष पहलेकी है। उन दिनों ग्रियर्सन साहब पटनेमें कमिश्नर थे। रत्नाकरजीका उनसे पहलेसे पत्र-व्यवहार था। जब ग्रियर्सन साहब हवडेमे मजिस्ट्रेट थे, उन्होंने "भाषाभूषण" नामक अलकारोकी पुस्तकका अंग्रेज़ीमें अनुवाद किया था। उस अनुवादके विषयमे कुछ परामर्श रत्नाकरजीने उन्हें लिख भेजे थे, जिन्हें ग्रियर्सन साहबने सधन्यवाद स्वीकार किया था और "लालचन्द्रिका"के प्रारम्भमे रत्नाकरजीकी सहायताका जिक्र भी कर दिया था। रत्नाकरजी अपनी ससुरालमे पटने गये थे। वहाँ खड्गविलास-प्रेसके बाबू रामदीनजीसे उन्हें पता लगा कि ग्रियर्सन साहब यहाँपर है। आप उनसे मिलने गये। ग्रियर्सन साहब बहुत खुश हुए और उन्होंने रत्नाकरजीसे कहा—"अगर तुम डिप्टी कलक्टरी करना चाहो, तो हम तुम्हारी कुछ मदद कर सकते हैं", पर रत्नाकरजीको यह धुन सवार थी कि हम तो बडे आदमी हैं हम नौकरी क्यों करें !

इस बातचीतके पैंतीस-छत्तीस वर्ष बाद रत्नाकरजीने "बिहारी रत्नाकर"की एक प्रति ग्रियर्सन साहबकी सेवामें भेजी थी और उक्त महानुभावने उसकी विस्तृत आलोचना विलायतके एक सुप्रसिद्ध पत्रमें प्रकाशित कराई थी।

ग्रियर्सन साहब पचपन-साठ बरससे हिन्दीके लिए प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। आजकल वे अत्यन्त वृद्ध हैं। अभी उस दिन रत्नाकरजीको डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जीने सुनाया था कि विलायतमें ग्रियर्सन साहबने एक तोता पाल रक्खा है और उसे पढ़ाया करते हैं—"पढ़ मेरे तोता सीताराम, राधेश्याम!

सितम्बर १९३१]

श्रीरत्नाकरजी

सौ सवा सौ साल व्यतीत हुए, लखनऊमें राय तुलारामजी अग्रवाल नामक एक अत्यन्त प्रतिष्ठित सेठ रहा करते थे। उनके पास कितना धन था, इसका किसीको पूरा-पूरा पता नही था। वे सेठोके चौधरी थे, और उनसे एक बार अवधके एक नवावने तीन करोड रुपया उधार माँगा था। नवाव साहवका जो खरीता पचोके नाम आया था, उसमें राय तुलारामजीका नाम सर्वोपरि था। उन दिनो नवाव साहवकी आज्ञाका भला कौन उल्लघन कर सकता था? सम्भवतः इसी तीन करोड़ रुपयेके जुटानेमें राय तुलारामजीकी वहुत कुछ सम्पत्ति चली गई। कविवर रत्नाकरजी उन्ही राय तुलारामजीके वशज है। कहते है कि अमीरी तथा ग़रीवीकी वू सात पीढी तक नही जाती। यद्यपि राय तुलारामजीके करोड़ोकी अव कहानी ही रह गई है और कविवर रत्नाकर जीका यह साहस भी नही होता कि वे उस पुराने खरीतेको जो अव भी उनके पास है, एक वार पढें, तथापि रत्नाकरजीके ठाट-वाटमें राय तुलारामजीके यश-सौरभकी गन्ध अव भी आ जाती है।

रत्नाकरजीके पिता राजसी ठाट-वाटसे रहते थे, इसलिए रत्नाकर-जीका अनुमान था कि हमारे यहाँ लाखो रुपयेकी सम्पत्ति है। वहुत वर्ष वाद रत्नाकरजीको पता लगा कि उनका अनुमान अधिकाशमे निराधार है, और तव उन्होने नौकरी करनेका विचार किया। यह वात वास्तवमे आश्चर्यकी है कि इस मनोवृत्तिके होते हुए भी रत्नाकरजी पढ़ किस प्रकार गये। अमीरोंके लड़कोपर जव तक अच्छी तरह नियत्रण न रखा जाय तव तक वे कदापि नही पढते, और रत्नाकरजी पर किसी प्रकारका नियत्रण नही था। रत्नाकरजीके वड़े भाईकी अकाल मृत्युके कारण उनके

पिताजीके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो गया था, और वे तीर्थ-यात्राके लिए महीनों घरसे बाहर चले जाते थे। एक बार तो दो-तीन सालके लिए गायब हो गये, और किसीको पता भी न था कि वे कहाँ हैं! भगवान् रामचन्द्रजीके वे बड़े भक्त थे। जिस मार्गसे भगवान् रामचन्द्रजी सेतुबन्ध रामेश्वरम् गये थे, उसी मार्गसे साधुओंकी एक टोलीके साथ रत्नाकरजीके पिताजी भी पैदल ही उन तमाम स्थानोंमें जहाँ-जहाँ भगवान् गये थे, भ्रमण करते हुए रामेश्वरम् तक पहुँचे थे। इस विराट तीर्थ-यात्राको समाप्त करनेके बाद दिल्लीसे उन्होंने घरपर अपनी कुशलताका समाचार भेजा था। तब रत्नाकरजी खुद दिल्ली जाकर उनको वहाँसे लिवा लाये थे।

रत्नाकरजीके पिताके हृदयमें कवियोंके प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने अपने घरमें एक कोठरी कवियोंके लिए अलग रख दी थी। वहाँ भोजन इत्यादि बनानेके लिए सब बर्तन रख दिये गये थे। बुन्देलखण्डसे हरद्वार तथा अन्य स्थानोंको जानेवाले कवियोंका डेरा उसी कोठरीमें पड़ता था। उन्हें कोठरीकी चाबी दे दी जाती थी और दुकानदारको आदेश था कि भोजन की जो सामग्री वे चाहें, उन्हें दे दी जाय। हमारा यह विश्वास है कि रत्नाकरजीको काव्य-क्षेत्रमें जो सफलता मिली है, उसके मूलमें उनके पिताजीकी यह श्रद्धा तथा कवियोंका आशीर्वाद ही है।

तेरह वर्षकी उम्र तक रत्नाकरजी अपने घरपर ही फारसी पढ़ते रहे। मिरज़ा मुहम्मद हसन 'फायज़' उनके शिक्षक थे। मिरज़ा साहब फारसीके अद्भुत ज्ञाता थे, और फारसीके आलिम ही नहीं बल्कि [illegible] उनके मुकाबलेका आलिम नहीं पाया जाता था। उनकी कृपासे रत्नाकरजीकी फारसीमें बहुत अच्छी गति हो गई। एफ० ए० में भी उन्होंने फारसी ही ली थी यद्यपि वे परीक्षा नहीं दे सके।

हिन्दी अंग्रेजीका अभ्यास तो उन्होंने घरपर आगे [illegible] किया। अपने मौलवी साहबका नाम वे बड़े सम्मानपूर्वक लेते थे। [illegible]

साहब जीवित रहे, रत्नाकरजी बराबर उनकी वैसी ही इज्जत करते रहे। यह बात बहुत कम लोगोको ज्ञात होगी कि रत्नाकरजी पहले उर्दू और फारसीमे कविता करते थे, और अच्छी कविता कर लेते थे। आपने करीब एक सौ गजले लिखी थी, पर सब फाड डाली! आपका उपनाम 'ज़की' था और मौलवी साहबका तखल्लुस 'फायज़' था। एक पद्यमे आपने अपने गुरुको इस प्रकार स्मरण किया था—

"फ़ैज़ फाइज़के तलम्मुज़का हुआ जबसे 'ज़की'
मानी सखुनमे जल्वागर रहने लगा।"

(फ़ैज़=शुभ फल। तलम्मुज़=शागिर्दी।)

जब रत्नाकरजी लगभग ५५ वर्षके थे, तो लोगोके आग्रहसे उन्हें भी किसी मुशायरेके लिए एक गजल लिखनी पडी। गजल तो आपने लिख ली, पर अपने उस्तादसे इसलाह लिये बिना आप उसे मुशायरेमे पढना नही चाहते थे। आपने मौलवी साहबके यहाँ कहला भेजा कि आपकी खिदमतमें हाज़िर होना चाहता हूँ, मेहरबानी करके वक्त बतला दीजिए। मौलवी साहब नज़दीक ही रहते थे। वे खुद ही चले आये। उन्होने पूछा कि क्या मामला है? रत्नाकरजीने कहा कि बहुत वर्षो बाद एक गुस्ताखी की है, उसे ठीक करानेके लिए मैं तो खुद ही आपकी खिदमतमें हाज़िर होना चाहता था। मौलवी साहबने बड़े सकोचके साथ गजल ली और उसमें थोड़ा बहुत सशोधन कर दिया। हिन्दीके निगुरुये कविपुगवोके लिए रत्नाकरजीकी गुरुभक्ति वस्तुत आदर्श है।

यही नही, जिन कवियोकी कविताका रत्नाकरजीपर प्रभाव पडा है, उनकी रचनाओकी वे भूरि-भूरि प्रशसा करते है। नन्ददासजीके निम्न-लिखित पद्यको पढते-पढते विह्वल हो जाते है—

"उरवरपर अति छवि कि भीर कछु बरनि न जाई,
जिहि अन्तर जगमगत निरन्तर कुँवर कन्हाई।"

पद्माकरका नाम भी बड़े आदरके साथ लेते हैं बल्कि पद्माकरके जोड़पर ही आपने अपना नाम 'रत्नाकर' रक्खा था।

× × ×

यद्यपि रत्नाकरजीने सभी रसोंकी कविता की है, और बहुत अच्छी की है, पर हमें उनकी शृंगाररसकी कविताएँ बहुत पसन्द हैं। एक बार हमें रत्नाकरजीके साथ दिल्ली में जैनियोंका एक मेला देखने जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गुरुवर पं० पद्मसिंहजी तथा स्नेहवर उदित मिश्रजी साथ थे। उस दिन रत्नाकरजीने अपनी एक कविता सुनाई थी, जो अब भी हमारे कानोंमें गूंज रही है—

रसके प्रयोगनिके सुखद सुजोगनिके
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावनकी चरचा चलावै कौन
देत ना सुदर्शन हूँ यों सुधि सिराई है॥
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यों अनारिनिकौ भरत कन्हाई है।
ह्यां तौ विषमज्वर वियोगकी चढ़ाई यह
पाती कौन रोगकी पठावत दवाई है॥

उसीके जोड़का दूसरा कवित्त भी रत्नाकरजीका ही सुन लीजिए—

"हाल बाल परी है बिहाल नंदलाल प्यारे
ज्वाला-सी जगी है अंग देखें दौरि लाई देति,
प्रेम-रोग-राज मिलि विरह त्रिदोष भयो
कहै 'रत्नाकर' सुनैनि नीर ढारे देति।
[illegible] धनसारे [illegible] हारि रहे पार
सुख चन्द्रोदय आनि [illegible] है [illegible]
[illegible] भई है देह [illegible] भई है [illegible]
[illegible] रहा है सुधि [illegible] दिखाई देति।

हेमन्तका वर्णन सुन लीजिए :—

"अन्तपुर पैठि भानु आतुर कढ़ै न वेगि,
  त्रिर निसि-अंकमें निसापति डरे रहै;
कहै 'रत्नाकर' हिमतको प्रभाव ही सौं,
  सन्त मन हूँ मैं भाव औरही भरे रहै।
नर पसु पच्छी सुर असुर समाज आज,
  काम अरत्रामें निसि वासर परे रहैं;
ह्वैकै कुसुमायुधके आयुध उवारू अव,
  सब वरिनी ही में घरोहर धरे रहै।"

वर्षामें रत्नाकरजीकी निम्न-लिखित कविताओंका भी आनन्द लीजिए:—

"भूलत हिंडोरैं दुहूँ वोरे रसरंग जिन्हें,
  जोहत अनग रति सोभा कटि-कटि जाति
मजु मचकी सौं उचकत कुच-कोरनिपै,
  ललकि लुभाइ रसियाकी डीठि डटि जाति।
देखत वनै ही, कछु कहत वनै न नैकु,
  वाल अलवेली जब लाजसौं सिमटि जाति,
हटि जाति घूँघट, लटकि लाँवी लट जाति,
  फटि जाति कंचुकी, लचकि लोनी कटि जाति।

× × ×

चहूँ दिसि छाई हरियाई सुखदाई जहाँ,
  सोहति सुहाई तापै फवनि फुहीनिकी,
कहै 'रतनाकर' ब्रजंगना उमंग भरी
  भूलति हिंडोरें भोरें सुखमा सुरीनिकी।
भाखै चित-चाव कौन भौन-सुख-भोगिनिकी
  डहकि डगाये देति मनसा मुनीनिकी;

मोच है यह कै मग ताके रगभीन माहि
कौन वाँ अनोखौ ढग रचत निराटी है;
छाँटि देत कूवर कै आँटि देत डाँट कोऊ
काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है।"

अगहनकी बहार लीजिए—

"गावै गीत अगना प्रवीन कर बीन लिये
आनँद उमग-भरी रंगके भवनमैं;
कहै 'रतनाकर' जवानीकी उमग होइ
रंग होइँ बसन सजीले तने तनमैं।
मुखद पलग होइँ दुहरी दुलाई लगी
आनँद अभग नव होइ अगहनमैं;
नूपुरके संग-सग बाजत मृदग होइँ
रग होइ नैनन तरग होइ मन मैं।"

हम जानते है कि आजकलके जमानेमें शृगाररसकी कविता का नाम लेना घोर पाप है, पर इसके साथ ही हम यह भी मानते है कि रत्नाकर-जीकी कविताका ज़िक्र करते हुए और उनके व्यक्तित्वपर प्रकाश डालते हुए शृंगाररसको छोड़ देना भी घोर अपराध होता। ऐसी परिस्थितिमें हम यही उचित समझते है कि अपने पाठकोंकी अदालतमें क्षमा याचना कर लें। अब रही यमराजकी अदालतकी बात, सो वहाँ तो हमें साफ छूट जानेकी सोलह आना उम्मेद है; क्योंकि स्वय कविवर रत्नाकरजीने हमें आश्वासन दिया है:—

"ए हो बीर पातकी! अधीर जनि होहु सुनौ
यह तदबीर भीर रावरी भजावैगी;
भाषै यह आगै हू अभागे हमसौं जो जाहि
याही एक बात घात सकल बनावैगी।

है और उन्हें हिन्दीका जयदेव समझते हैं। उनका निम्न-लिखित पद रत्नाकरजीको बहुत पसंद है।

"ब्रज नव तरुनि कदम्ब मुकुट मनि स्यामा आजु बनी,
नख सिख लौं अँग-अंग माधुरी मोहे स्याम धनी।
यौं राजति कबरी गूथित कच कनक कंजवदनी,
चिकुर चन्द्रकनि बीच अरध बिधु मानों ग्रसत फनी।

× × ×

हित हरिवंस प्रसंसित स्यामा कीरति बिसद घनी;
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर विस्व दुरति दवनी।"

नन्ददासकी 'रासपंचाध्यायी' रत्नाकरजीको अत्यन्त प्रिय है। रत्नाकरजीसे नन्ददासका ज़िक्र आते समय मैंने सत्यनारायणकी चर्चा भी की और उनकी ब्रजभाषा नामक कविता सुनाई—

"इक दिन जो माधुर्य कान्तिमय सुखद सुहाई,
मंजु मनोरम मूरति जाकी जग जिय भाई।
देखत तुम निश्चिन्त जात ताके अब प्राना;
अभागिनी शोकार्त्त कहहुको तासु समाना।
लिखन रह्यो इक ओर तासु पढ़िबो हू त्यागो;
मानासों मुख मोरि कहाँ तुव मन अनुराग्यो।

× × ×

या जीवन-संग्राम माँहि पावत सहाय सब;
नाम लैन हू तज्यो किन्तु तुमने याको अब!
क्यों यासों मन फिर्‌यो कृपाकरि कछुक जतावौ;
वृथा आतमा या ब्रजभाषाकी न सतावौ।"

ये पंक्तियाँ सुनकर रत्नाकरजीका हृदय द्रवित हो गया, और वे बोले—"हमें इस बातका बड़ा दु:ख है कि हम सत्यनारायणके दर्शन न कर सके। इनकी ब्रजभाषाकी कविता तो बड़ी मधुर और सरस है। यदि

नंददास-देव—घनआनँद-बिहारी-सम
सुकवि अनावन की तुम्हें सुधि द्याऊँ मैं ।
मुनि रतनाकर की रचना रसीली नैकु
ढीली-परी बीनहिं सुरीली करि ल्याऊँ मैं ॥

अब रत्नाकरजीकी वीररसकी कविताएँ पढ़िए। निम्नलिखित कविता शुद्ध वीररसकी है। इनमें और कोई भाव संचारी रूपमें भी नहीं आया, स्थायी रूपसे आना तो दूर रहा.—

"धरम सपूतकी रजाइ चित चाही पाइ
धायौ धरि हुलसि हथ्यार हरबरमैं;
कहै 'रतनाकर' सुभद्राकौ लडैतौ लाल
प्यारी उत्तरा हू की रुक्यौ न सरबरमैं।
सारदूल-सावक बितुंड-झुंडमैं ज्यौं
पैठ्यौ चक्रव्यूहकी अनूह अरबरमैं,
लाग्यौ हाँस करन हुलासपर बैरिनिके
मुख मन्द हास चन्द्रहास करबरमैं।
× × ×
बीरनिके मान औ गुमान रनबीरनिके
आनके बिधान भटवृन्द घमसानीके,
कहै 'रतनाकर' बिमोह अध भूपतिके
द्रोहके सँदोह भूत-पूत अभिमानीके।
द्रोनके प्रबोध दुरबोध दुरजोधनके
आयु औधि दिवस जयद्रथ अठानीके,
कौरवके दाप ताप पांडवके जात बहे
पानी माँहि पारथ सपूतकी कृपानीके।"

भीष्माष्टकके भी दो-तीन कवित्त पठनीय हैं—

रत्नाकरजीके अवतक प्रकाशित ग्रन्थोके नाम ये है—'हिंडोला', 'हरिश्चन्द्र', 'समालोचनादर्श', 'गगावतरण', 'घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर', 'रोलाछन्दका लक्षण', 'दोहाका लक्षण', 'सवैयाका लक्षण', 'विहारी-रत्नाकर' और 'उद्धवशतक'।

जो ग्रन्थ रत्नाकरजीके पास तय्यार है, पर अभी नही छपे, उनके नाम ये हैं—गगाविष्णु लहरी, रत्नाष्टक, शृगार-सग्रह, विहारीका जीवन-चरित और विहारीका व्याकरण।

'गगावतरण' को रत्नाकरजी अपनी रचनाओमें सर्वोत्तम समझते है।

श्रीरत्नाष्टकमें चौदह अष्टक है—शारदा, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, प्रभात, सन्ध्या, सुदामा, गजेन्द्रमोक्ष, द्रौपदी, भीष्म और श्रीभगवदष्टक। रत्नाष्टकके कितने ही कवित्त वास्तवमें अत्युत्तम हैं। उन्हे रत्नाकरजीके मुखसे सुननेमे वडा आनन्द आता है। कुछ आप भी पढ लीजिए:—

"दीन द्रौपदीकी परतन्त्रता पुकार ज्योंही
तंत्र विन आई मन जत्र विजुरीनिपै;
कहै 'रतनाकर' त्यौं कान्हकी कृपाकी कानि
आनि लसी चातुरी-विहीन आतुरीनिपै।
अग पर्यौ थहरि लहरि दृग रग पर्यौ
तग पर्यौ वसन सुरग पँसुरीनिपै,
पंचजन्य चूमन हुमसि होठ वक्र लाग्यौ
चक्र लाग्यौ घूमन उमगि अँगुरीनिपै।"

(द्रौपदी-अष्टक)

"रमत रमाके सग आनँद उमग भरे
अग परे थहरि मतंग-अवरावेपै;
कहै 'रतनाकर' वदन दुति औरै भई
वूँदें छई छलकि दृगनि नेह-नावेपै।

पन है, और उसे जाने बिना उनकी कविताकी निन्दा-स्तुति करना अनुचित होगा। हमारी समझमें ब्रजभाषाके लिए और स्वयं रत्नाकरजीके लिए भी यह बड़े दुर्भाग्यकी बात थी कि सन् १९०६ से १९२१ तक वे साहित्य-क्षेत्रसे बिल्कुल अलग पड़े रहे। राष्ट्रीय जाग्रतिके इस स्वर्णयुगमें रत्नाकर-जीको कविता देवीको तिलांजलि देकर कचहरी देवीकी आराधना करनी पड़ी। यद्यपि पिछले आन्दोलनकी लहरोंने उनकी जीवन-नौकामें टकराकर उन्हें दो-चार देशभक्तिमय पद्य लिखनेके लिए बाध्य किया है, पर उनमें वह सजीवता प्रतीत नहीं होती, जो उनकी अन्य रसकी कविताओंमें पाई जाती है। जब रत्नाकरजी गाते हैं—

"आज्ञा भंग करके करेंगे कुछ ऐसा तंग
संग अपने वे एक भंगी भी न पायेंगे;
अंगपर तोप और तुफंग झेल लेंगे बस,
चंग चरखेका रंगभूमिमें बजायेंगे।"

उस समय उनके चंगसे फूटे हुए ढोलकी-सी आवाज़ निकलती है। यदि धृष्टता क्षमा हो, तो हम कहेंगे कि आज्ञाभंग करके फिरंगियोंको तंग करना न तो रत्नाकरजीकी रुचिके अनुकूल है और न सामर्थ्यके भीतर। और हमें तो रंगभूमिमें चरखेका चंग बजाते हुए रत्नाकरजीका चित्र कुछ विचित्र-सा लगता है। उनकी 'रंगभूमि'की अपेक्षा उनकी 'रंगभौन' की कवितामें अधिक सजीवता है। प्रत्येक आदमीसे यह आशा करना कि वह हमारे ही विचारोंका अनुयायी बन जाय, घोर अन्याय है। आनन्द विभिन्नतामें है, सभीके एक रंग होनेमें नहीं। आखिर शृंगाररस भी जीवनके लिए एक अत्यन्त आवश्यक रस है।

प्रसंगवश हम यहाँ यह कह देना चाहते हैं कि जो महानुभाव शृंगार-रसके पीछे लाठी लिए फिरते हैं, वे या तो दम्भी हैं या अरसिक अथवा आवश्यकतासे अधिक भोले। देशभक्तिके नामपर जो बहुत सी नीरस तुकबन्दी आजकल निकल रही है, स्वाधीनता प्राप्त होनेके बाद उसका

सारा रग फीका पड जायगा और शृगाररस तो सृष्टिके आदि से है और अन्त तक रहेगा। पर रत्नाकर जी कोरमकोर शृगाररसके कवि हो, सो बात नही। उनकी अन्य रसोकी कविता परिमाणमे शृगाररमकी कवितासे कही अधिक ही बैठेगी। रत्नाकरजीमे यह शक्ति भी है कि पाठकको शृगारके रसीले कुंजसे निकालकर वीर-रसके उत्तुग शिखरपर बैठा दें। सुनिये—

> बोधि बुधि विधिके कमडल उठावत ही
>
> धाक सुरधुनि की धँसी यों घट-घट मैं।
>
> कहै रतनाकर सुरासुर समक सबै
>
> बिबस बिलोकत लिखेसे चित्र-पट मै॥
>
> लोकपाल दौरन दसौ दिसि हहरि लागे
>
> हरि लागे हेरन सुपात बर बट मैं।
>
> त्रसन नदीस लागे खसन गिरीस लागे
>
> ईस लागे कसन फनीस कटितट मैं॥

यद्यपि रत्नाकरजी अब तक हिन्दी-साहित्यकी बहुत कुछ प्रशसनीय सेवा कर चुके है, पर उनके जीवनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य अभी होनेवाला है, और वह है सूरसागरका सम्पादन और अष्टछापके अन्य कवियोका उद्धार। यदि इस समय हिन्दी-जगत्‌में कोई विद्वान् ऐसा है, जो इस कार्यको सुचारु रूपसे कर सकता है तो वह रत्नाकरजी ही है। साढे चार हजार रुपये वे सूरसागरके लिए खर्च कर चुके है और अभी सात-आठ हज़ार रुपये और खर्च करने जा रहे है। ६५ वर्षकी उम्र में भी वे छै-सात घटे नित्य सूरसागरके सम्पादनकार्यमे लगाते है। अभी एक रियासतने पाँच-छै सौ रुपये महीनेकी नौकरीके लिए निमन्त्रण आया, आपने उसे तुरन्त अस्वीकार कर दिया। सवा सौ रुपये महीनेके तीन क्लार्क रखकर वे सूर-सागरका काम कर रहे है। ब्रजभाषाका एक कोष बनानेका भी आपका विचार है। यदि कोई प्रकाशक अथवा कोई सस्था उनके पास अपनी ओरसे

एक सुयोग्य लेखक रख दे और इस कार्यमे दो-ढाई हज़ार रुपये खर्च करनेके लिए तैयार हो, तो इस समय बडी आसानीके साथ यह कोष तैयार हो सकता है। पर हमारी संस्थाओंके सचालकोंमें इतनी दूरदर्शिता कहाँ ?

रत्नाकरजी तीन हज़ार रुपये नागरी-प्रचारिणी सभाको दान दे चुके है, हज़ार-बारह सौ 'विहारी-रत्नाकर' पर खर्च कर चुके है और बारह-तेरह हज़ार सूरसागरको अर्पित करनेवाले हे। इतने पर भी क्या यह आशा करना उचित है कि वे व्रजभाषा-कोष भी अपने व्ययमे तैयार करावें ?

रत्नाकरजीके स्वभाव, चरित्र अथवा जीवनमें सम्भवत. कुछ त्रुटियाँ रही होगी, अथवा है, पर क्या इस ससारमें कोई भी मनुष्य निर्दोष है ? हम मानते है कि रत्नाकरजी उस कोटिके आदमी है, जिन्हें साम्यवादियोंकी परिभाषामें 'बुर्जुआ' कहना उचित होगा। जो महानुभाव हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके लिए काशीसे कलकत्तेकी यात्रामें पाँच सौ रुपये व्यय कर सकते है, वे 'बुर्जुआ' नही तो और कौन है ? पर इन त्रुटियोंके होते हुए भी रत्नाकरजीमे धनका अभिमान नाममात्रको भी नही है। कभी-कभी हमारे जैसे निर्धन लेखकोंके मनमें यह भाव आ सकता है कि यदि हम रत्नाकर जीकी तरह साधन-सम्पन्न होते, तो बहुत कुछ काम कर लेते; पर अगर ऐसा होता तो हम लोग शायद कुछ भी न कर पाते। रत्नाकरजी जो कुछ भी कर रहे है वह उनकी परिस्थितिके देखते बहुत है।

रत्नाकरजीमें वह ज़िन्दादिली है, जो एक विचित्र आकर्षण रखती है। जब वे दिल खोलकर बातचीत करते है, तो भले ही किसीको उनके मुँहफटपनमें सुसंस्कृतिकी कुछ कमी मालूम पड़े, पर उनके स्वभावमें बडी भारी खूबी यह है कि उनमें कृत्रिमताका सर्वथा अभाव है। वे बनते नहीं। यद्यपि उनका रहन-सहन पुराने ढगका है, उनकी आँखोंका अंजन हमारा मनोरजन करता है, पर रत्नाकरजीके व्यवहारमें बनावटका नामोनिशान नही। मानो वे अपने प्रत्येक समालोचकसे कहते है—"जैसे कुछ हम

है तुम्हारे सामने है। तुम्हारी खुशी या नाराजगीके कारण हम अपना जीवन-क्रम नहीं बदल सकते।"

हमें किसी भी आदमीसे अत्यधिक आशा न करनी चाहिए। सत्यनारायण-जैसी करुणामय सरलता, द्विवेदीजी-जैसा दृढ़ कर्तव्य-प्रेम और पद्मसिंहजी जैसी साहित्यिक तन्मयता किसी एक आदमीमें एकत्र मिलना अत्यन्त कठिन है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि साहित्य-सेवा रत्नाकरजीके जीवनका मुख्य ध्येय नहीं रहा। यौवनके इस कालमें, जब वे साहित्य-सेवा द्वारा हिन्दीमाताका बहुत कुछ हित कर सकते थे, उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—'अपने वंशके गौरवकी रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है जिससे कोई यह न कहने पावे कि देखो, बाप-दादोंके गौरवको इसने गिरा दिया।'

इस पर लोग कह सकते हैं—"साहित्यके लिए फकीरी धारण करनेका गौरव अपने कुलके जीवन-क्रम तथा ठाट-बाटकी रक्षा करनेके गौरव से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।" पर यह तर्क रत्नाकरजीकी मनोवृत्तिके सर्वथा प्रतिकूल है।

साथ ही इस प्रश्नके दूसरे पहलूपर भी ध्यान दे लेना चाहिए। यदि रत्नाकरजी साहित्य-सेवामें ही अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देते, तो वे न तो 'बिहारी-रत्नाकर' ही लिख पाते और न सूरसागरके सम्पादनके साधन ही जुटा पाते। फिर या तो वे किसी न चलनेवाले प्रेसके सञ्चालक होते अथवा किसी पत्रके सम्पादक, और प्रोप्राइटरसे झगड़ा होनेपर अलग कर दिये गये होते, क्योंकि रत्नाकरजी-जैसे मनमौजी सम्पादककी किसी व्यवसायी पत्र-सञ्चालकसे कभी न बन सकती थी।

रत्नाकरजीको वाद-विवादसे घृणा है। लड़ाई-झगड़ेमें वे नहीं पड़ना चाहते। दलबन्दीसे वे दूर ही रहते हैं। किसी साहित्यिक आन्दोलनके नेताके रूपमें रत्नाकरजीकी कल्पना नहीं की जा सकती। उनमें पं० प्रतापनारायण मिश्रके सदृश्य अव्वल नम्बरकी लापरवाही है।

गप्पें मार रहे हैं, तो दिन-भर यही निष्काम कर्म करते रहेंगे ! मिश्रजीने स्वर्गीय प० श्रीधर पाठकको लिखा था—"बैठे-बिठाये कौन झगड़ा मोल ल ?" रत्नाकरजीका भी यही सिद्धान्त है। पर प्राइवेट बातचीतमें रत्नाकरजी अपनी सम्मति कभी छिपाते नहीं। चाहे कोई बुरा माने या भला, अपनी राय साफ-साफ कह देते हैं। हमने उनसे पूछा—"छायावादकी कविताके विषयमें आपकी क्या सम्मति है ?" उन्होंने कहा—"सम्मति तो हम तब दें, जब वह कुछ हमारी समझमें आवे ! वह तो हमारी समझमें ही नहीं आती।" इस पर यदि कोई यह आशा करे कि रत्नाकरजी समाचार-पत्रोंमें इस विषयपर कुछ लिखेंगे, तो उसे निराश ही होना पड़ेगा। जहाँ पं० पद्मसिंहजी प्राचीन कालीन क्षत्रियोंकी तरह सदा सशस्त्र तैयार रहते हैं और जो कोई सामने आनेकी धृष्टता करता है, उसपर दो-चार हाथ ऐसे जमाते हैं कि वह जिन्दगीभर न भूले, वहाँ रत्नाकरजी अपने विरोधियोंको हँसकर टरका देना ही उचित समझते हैं। यदि उनसे कोई कहे भी कि आप इस विषयपर कुछ लिखिये, तो वे उत्तर देते हैं—"भाई, सूरसागरका काम आप किसी दूसरेको सौंप दीजिए, फिर हम इसी काममें लग जायेंगे। हमारी यह आदत है कि जब हम वाद-विवादमें पड़ते हैं, तो फिर प्रत्येक लेखका जवाब देते हैं।" रत्नाकरजीके इस कथनमें बहुत कुछ औचित्य है; फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि प्रकृतिसे रत्नाकरजी क्षत्रिय नहीं हैं।

प्राचीन कवियोंमें रत्नाकरजी पद्माकरकी याद दिलाते हैं। पद्माकर राजसी ठाट-बाटसे रहते थे, और आजकलके देखे, रत्नाकरजीका रहन-सहन भी राजसी कहना पड़ेगा। यदि पद्माकरने महाराज प्रतापसिंहकी काशीमें दी हुई एक हज़ार मुहरें स्थानीय पंडितोंमें बाँट दी थीं, तो रत्नाकरजीने भी महारानी अयोध्याके 'गंगावतरण'पर पुरस्कारमें दिये हुए एक हज़ार रुपये काशीकी नागरी-प्रचारिणी सभाको दे दिये।

इसपर यदि कोई प्राचीन विचारोंवाला आदमी रत्नाकरजीको

पद्माकरका अवतार कह दे तो हमें आश्चर्य न होगा। हमारे एक साहित्य-मर्मज्ञ सहयोगी का कथन है कि शुद्ध साहित्यिक व्रजभाषामें कविता करनेवाला रत्नाकरजी-जैसा दूसरा कवि इधर बहुत वर्षोंसे नही हुआ है।

रत्नाकरजीके साथ काव्योपवनकी सैर करनेमे आनन्द आता है। हृदयमे इच्छा होती है कि कभी हरद्वार चलकर गंगातटपर उनके मुखसे ही 'गगावतरण' सुना जाय। अभी उस दिन घटे-भर उन्होने वह अश हमें सुनाया, जिसमे शिवजीका गगाको अपने सिरपर लेनेकी तैयारी करने समयका चित्र खीचा गया है। सुनकर हम मत्रमुग्धसे रह गये। रत्नाकरजी में प्राचीन कालीन धार्मिक श्रद्धा पाई जाती है, जो वास्तवमे एक आदरणीय वस्तु है। यह श्रद्धा उन्हें अपने उन पूज्य पिताजीसे पैतृक सम्पत्तिके रूपमें मिली है, जिन्होने अयोध्यासे रामेश्वरम् तक पैदल तीर्थ-यात्रा की थी। विना इस धार्मिक श्रद्धाके 'गगावतरण' जैसा काव्य लिखा ही नही जा सकता था।

यदि पूज्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदीका सम्भाषण साहित्य-सेवियोको कठिन कर्तव्य मार्गपर चलनेके लिए स्फूर्ति दायक है, प० पद्मसिंह शर्माका सत्संग स्वादिष्ट साहित्यिक भोजन है, तो कविवर रत्नाकरजीका 'गंगा-वतरण' पाठ भी वस्तुत एक अलौकिक आनन्दप्रद वस्तु है। क्या ही अच्छा हो, यदि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने प्रधान रत्नाकरजीकी एक साहित्यिक यात्राका प्रवन्ध करे और मुख्य-मुख्य स्थानोमे उनके द्वारा 'गगावतरण' का पाठ करावे। और नही तो किसी व्रज-भाषा-प्रेमी नरेश-को ही इसका प्रवन्ध कर देना चाहिए। रत्नाकरजी खूब हँसते और हँसाते है। अभी उस दिन आपने कहा—"हमने भी अपने भाग्यको वाल्मीकि तथा व्यासमे कैसा भिड़ाया है!"—

अब त्रिपथगा गंग गरवि तव सुता कहैहै।
भागीरथी पुनीत नाम सों जग जस छैहै॥

त्रेता जुग मुनि वालमीकि द्वापर पारासर।
कलिमें यह सुचि चरित चारु गैहै रतनाकर॥

"भई, वे त्रेता और द्वापर के थे, हम कलियुगके हैं।" ऐसा कहकर खूब खिलखिलाकर हँसने लगे। उनका यह गर्वोक्तिमय मधुर हास्य साहित्याकाशको चिरकाल तक गुंजायमान करता रहे, यही प्रार्थना है।

परमात्मा वृद्धा ब्रजभाषाके इस एकमात्र सहारेको चिरायु—शतायु करे, और उसके द्वारा मातृभाषाके उन सपूतोंका उद्धार करावे, जिनको कृतघ्न हिन्दी-संसार बिलकुल भूलता जा रहा है। रत्नाकरजी हमारे साहित्यके उस युगकी एक बची खुची यादगार हैं, जो बीत चुका है; उस शैलीके कवि हैं, जो निरपराध तिरस्कृत हो चुकी है और उस परिपाटीके आदमी हैं, जिन्हें गर्दिशेअय्याम बहुत पीछे फेंक चुका है। उनके व्यक्तित्व में यही आकर्षण है, यही निरालापन है।

अक्टूबर, १९३१]

प्रेमचन्दजीके साथ दो दिन

"आप आ रहे है, बडी खुशी हुई। अवश्य आइये। आपने न-जाने कितनी बाते करनी है।

मेरे मकानका पता है—

बेनिया-बागमें तालाबके किनारे लाल मकान। किसी इक्केवालेसे कहिये, वह आपको बेनिया-पार्क पहुँचा देगा। पार्कमें एक तालाब है। जो अब सूख रहा है। उसीके किनारे मेरा मकान है लाल रगका, छज्जा लगा हुआ। द्वारपर लोहेकी Fencing है। अवश्य आइये।

—धनपतराय।"

प्रेमचन्दजीकी सेवामें उपस्थित होनेकी इच्छा बहुत दिनोसे थी। यद्यपि आठ वर्ष पहले लखनऊमें एक बार उनके दर्शन किये थे, पर उस समय अधिक बातचीत करनेका मौका नही मिला था। इन आठ वर्षोंमें कई बार काशी जाना हुआ, पर प्रेमचन्दजी उन दिनो काशीमे नहीं थे। इसलिए ऊपरकी चिट्ठी मिलते ही मैंने बनारस कैण्टका टिकट कटाया, और इक्का लेकर बेनिया-पार्क पहुँच ही गया। प्रेमचन्दजीका मकान खुली हुई जगहमे सुन्दर स्थानपर है, और कलकत्तेका कोई भी हिन्दी-पत्रकार इस विषयमे उनसे ईर्ष्या किये बिना नही रह सकता। लखनऊके आठ वर्ष पुराने प्रेम-चन्दजी और काशीके प्रेमचन्दजीकी रूप-रेखामें विशेष अन्तर नही पड़ा। हाँ, मूंछोके बाल जरूर ५३ फीसदी सफेद हो गये है—उम्र भी करीब-करीब इतनी ही है—परमात्मा उन्हें शतायु करे क्योकि हिन्दीवाले उन्हींकी बदौलत आज दूसरी भाषावालोंके सामने मूंछोपर ताव दे सकते हैं। यद्यपि इस बातमे हमें सन्देह है कि प्रेमचन्दजी हिन्दी भाषा-भाषी जनतामें कभी उतने लोकप्रिय बन सकेंगे जितने कविवर मैथिलीशरणजी है, पर

प्रेमचन्दजीके सिवा भारतकी सीमा उल्लंघन करनेकी क्षमता रखनेवाला कोई दूसरा हिंदी-कलाकार इस समय हिन्दी-जगत्में विद्यमान नहीं। लोग उनको उपन्यास-सम्राट् कहते हैं, पर कोई भी समझदार आदमी उनसे दो ही मिनट बातचीत करनेके बाद समझ सकता है कि प्रेमचन्दजीमें साम्राज्यवादिताका नामो-निशान नहीं। कदके छोटे हैं, शरीर निर्बल-सा है, चेहरा भी कोई प्रभावशाली नहीं, और श्रीमती शिवरानी देवीजी हमें क्षमा करें, यदि हम कहें कि जिस समय ईश्वरके यहाँ शारीरिक सौन्दर्य बँट रहा था, प्रेमचन्दजी ज़रा देरसे पहुँचे थे। पर उनकी उन्मुक्त हँसीकी ज्योतिपर, जो एक सीधे सादे, सच्चे स्नेहमय हृदयसे ही निकल सकती है, कोई भी सहृदया सुकुमारी पतंगवत् अपना जीवन निछावर कर सकती है। प्रेमचन्दजीने बहुत-से कष्ट पाये हैं, अनेक मुसीबतोंका सामना किया है, पर उन्होंने अपने हृदयमें कटुताको नहीं आने दिया। वे शुष्क बनियापनसे कोसों दूर हैं, और बेनिया-पार्कका तालाब भले ही सूख जाय, उनके हृदय-सरोवरसे सरसता कदापि नहीं जा सकती। प्रेमचन्दजीमें सबसे बड़ा गुण यही है कि उन्हें धोखा दिया जा सकता है। जब इस चालाक साहित्य-संसारमें बीसियों आदमी ऐसे पाये जाते हैं, जो दिन-दहाड़े दूसरोंको धोखा दिया करते हैं, प्रेमचन्दजीकी तरहके कुछ आदमियोंका होना गनीमत है। उनमें दिखावट नहीं, अभिमान उन्हें छू भी नहीं गया, और भारतव्यापी कीर्ति उनकी सहज विनम्रताको उनसे छीन नहीं पाई।

प्रेमचन्दजीसे अबकी बार घंटों बातचीत हुई। एक दिन तो प्रात-काल ११ बजेसे रातके १० बजे तक और दूसरे दिन सवेरेसे शाम तक। प्रेमचन्दजी गल्पलेखक हैं, इसलिए गप लड़ानेमें आनन्द आना उनके लिए स्वाभाविक ही है। [भाषातत्त्वविद् बतलावें कि गप शब्दकी व्युत्पत्ति गल्पसे हुई है या नहीं!]

यदि प्रेमचन्दजीको अपने डिक्टेटर श्रीमती शिवरानी देवीका डर न

रहे, तो वे चौबीस घटे यही निष्काम कर्म कर सकते है ! एक दिन बात करते-करते काफी देर हो गई । घडी देखी, तो पता लगा कि पौने दो बजे है । रोटीका वक्त निकल चुका था । प्रेमचन्दजीने कहा—"खैरियत यह है कि घरमे ऊपर घडी नही है, नही तो अभी अच्छी खासी डाट सुननी पडती ।" घरमें एक घडी रखना, और सो भी अपने पास, यह बात सिद्ध करती है कि पुरुष यदि चाहे तो स्त्रीसे कही अधिक चालाक बन सकता हैं, और प्रेमचन्दजीमे इस प्रकारका चातुर्य बीजरूपमे तो विद्यमान है ही ।

प्रेमचन्दजी स्वर्गीय कविवर शकरजीकी तरह प्रवासभीरु हैं। जब पिछली बार आप दिल्ली गये थे, तो हमारे एक मित्रने लिखा था—"पचास वर्षकी उम्रमें प्रेमचन्दजी पहली बार दिल्ली आये है !" इससे हमें आश्चर्य नही हुआ । आखिर सम्राट् पचम जार्ज भी जीवनमे एक बार ही दिल्ली पधारे है, और प्रेमचन्दजी भी तो उपन्यास-सम्राट् ठहरे ! इसके सिवा यदि प्रेमचन्दजी इतने दिन बाद दिल्ली गये, तो इसमें दिल्लीका कुसूर है, उनका नही ।

प्रेमचन्दजीमें गुण-ही-गुण विद्यमान हो, सो बात नही । दोष हैं, और सम्भवत अनेक दोष है । एक बार महात्माजीने किसीने पूछा था—"आप किसीपर जुल्म भी करते है ?" उन्होने जवाब दिया—"यह सवाल आप बा (श्रीमती गाँधी) से पूछिये ।"श्रीमती शिवरानी देवीसे हम प्रार्थना करेंगे कि वे उनके दोषोपर प्रकाश डाले । एक बात तो उन्होने हमें बतला भी दी कि उनमें प्रबन्धशक्तिका बिलकुल अभाव है । "हमीं—ही है, जो इनके घरका इन्तजाम कर सकती है" । पर इस विषयमें श्रीमती सुदर्शन उनसे कही आगे बढी हुई है। वे सुदर्शनजीके घरका ही प्रबन्ध नही करती, स्वय सुदर्शनजीका भी प्रबन्ध करती है, और कुछ लोगोका तो—जिनमे सम्मिलित होनेकी इच्छा इन पक्तियोंके लेखककी भी है—यह दृढ विश्वास है कि श्रीमती सुदर्शन गल्प लिखती है, और नाम श्रीमान् सुदर्शनजीका होता है !

प्रेमचन्दजीमें मानसिक स्फूर्ति चाहे कितनी ही अधिक मात्रामें क्यों न हो, शारीरिक फुर्तीका प्राय. अभाव ही है। यदि कोई भला आदमी प्रेमचन्दजी तथा सुदर्शनजीको एक मकानमे बन्द कर दे, तो सुदर्शनजी तिकड़म भिड़ाकर छतसे नीचे कूद पड़ेंगे, और प्रेमचन्दजी वही बैठे रहेंगे। यह दूसरी बात है कि प्रेमचन्दजी वहाँ बैठे-बैठे कोई गल्प लिख डालें !

जमके बैठजानेमें ही प्रेमचन्दजीकी शक्ति और निर्बलताका मूल स्रोत छिपा हुआ है। प्रेमचन्दजी ग्रामोमे जमके बैठ गये, और उन्होंने अपने मस्तिष्कके सुपरफाइन केमरेसे वहाँके चित्र-विचित्र जीवनका फिल्म ले लिया। सुना है कि इटलीकी एक लेखिका श्रीमती ग्रेज़िया दलिद्दाने अपने देशके एक प्रान्त-विशेषके निवासियोंकी मनोवृत्तिका ऐसा बढ़िया अध्ययन किया, और उसे अपनी पुस्तकमें इतनी खूबीके साथ चित्रित कर दिया कि उन्हें 'नोबेल-प्राइज़' मिल गया। प्रेमचन्दजीका युक्तप्रान्तीय ग्राम्य-जीवनका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है, और ग्रामवासियोंके मनोभावोका विश्लेषण इतने ऊँचे दर्जेका है कि इस विषयमें अन्य भाषाओंके अच्छे-से-अच्छे लेखक उनसे ईर्ष्या कर सकते है।

कहानी-लेखकों तथा कहानी-लेखन-कलाके विषयमें प्रेमचन्दजीसे बहुत देर तक बातचीत हुई। उनसे पूछनेके लिए मैं कुछ सवाल लिख ले गया था। पहला सवाल था —"कहानी-लेखन-कलाके विषयमें आपके क्या विचार है ?" आपने जवाब दिया—"कहानी-लेखन-कलाके विषयमें क्या बतलाऊँ ? हम कहानी लिखते है, दूसरे लोग पढते है। दूसरे लिखते है, हम पढते है, और क्या कहूँ ?" इतना कहकर खिलखिलाकर हँस पडे, और मेरा प्रश्न धाराप्रवाह अट्टहासमें विलीन हो गया। बात दरअसल यह थी कि प्रेमचन्दजीकी सम्मतिमें वे सवाल ऐसे थे, जिनपर अलग-अलग निबन्ध लिखे जा सकते है।

प्रश्न—हिन्दी-कहानी-लेखनकी वर्तमान प्रगति कैसी है ? क्या वह स्वस्थ तथा उन्नतशील मार्गपर है ?

उत्तर—प्रगति बहुत अच्छी है। यह सवाल ऐसा नही कि इसका जवाब यों ही off hand दिया जा सके।

प्रश्न—नवयुवक कहानी-लेखकोमें सबसे अधिक होनहार कौन है?

उत्तर—जैनेन्द्र तो है ही, और उनके विषयमें तो पूछना ही क्या है! इधर श्री वीरेश्वरसिंहने कई अच्छी कहानियाँ लिखी है। बहुत ऊँचे दर्जेकी कला तो उनमें अभी विकसित नही हो पाई, पर तब भी अच्छा लिख लेते है। बाज-बाज कहानियाँ तो बहुत अच्छी है। हिन्दू-विश्व-विद्यालयके ललितकिशोरसिंह भी अच्छा लिखते है। श्री जनार्दन झा द्विजमें भी प्रतिभा है।

प्रश्न—विदेशी कहानियोका हमारे लेखकोपर कहाँ तक असर पड़ा है?

उत्तर—हम लोगोने जितनी कहानियाँ पढी है, उनमें रशियन कहानियोका ही सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। अभी तक हमारे यहाँ adventure की कहानियाँ है ही नही, और जासूसी कहानियाँ भी बहुत कम है। जो है भी, वे मौलिक नही है, कैनन डॉयलकी अथवा अन्य कहानी-लेखकोकी छायामात्र है। Crime detection की science का ही हमारे यहाँ विकास नहीं हुआ है।

प्रश्न—ससारका सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक कौन है?

उत्तर—चेखव।

प्रश्न—आपको सर्वोत्तम कहानी कौन जँची?

उत्तर—यह बतलाना बहुत मुश्किल है। मुझे याद नही रहता। मै भूल जाता हूँ। टाल्सटायकी वह कहानी, जिसमे दो यात्री तीर्थ-यात्रा पर जा रहे है, मुझे बहुत पसद आई। नाम उसका याद नही रहा। चेखवकी वह कहानी भी, जिसमें एक स्त्री बडे मनोयोगपूर्वक अपनी लडकी-के लिए जिसका विवाह होनेवाला है, कपडे सी रही है, मुझे बहुत अच्छी जँची। वही स्त्री आगे चलकर उतने ही मनोयोगपूर्वक अपनी मृत पुत्रीके

कफनके लिए कपड़ा सीती हुई दिखलाई गई है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथकी 'दृष्टि-दान' नामक कहानी भी इतनी अच्छी है कि वह संसारकी अच्छी-से-अच्छी कहानियोंसे टक्कर ले सकती है।

इसपर मैंने पूछा कि 'कावुलीवाला'के विषयमें आपकी क्या राय है? प्रेमचन्दजीने कहा कि 'निस्सन्देह वह अत्युत्तम कहानी है। उसकी अपील universal है, पर भारतीय स्त्रीका भाव जैसे उत्तम ढगसे 'दृष्टि-दान'मे दिखलाया गया है, वैसा अन्यत्र शायद ही कही मिले। मोपासाँकी कोई-कोई कहानी बहुत अच्छी है, पर मुश्किल यह है कि वह sex से ग्रस्त है।"

प्रेमचन्दजी टाल्सटायके उतने ही बड़े भक्त है, जितना मैं तुर्गनेवका। उन्होंने सिफारिश की कि टाल्सटायके 'अन्ना कैरेनिना' और 'वार ऐण्ड पीस' शीर्षक ग्रन्थ पढो। पर प्रेमचन्दजीकी एक वातसे मेरे हृदयको बडा धक्का लगा। जब उन्होंने कहा—"Turgnev is a pigmy before Tolstoy."—टाल्सटायके मुकाबलेमें तुर्गनेव अत्यन्त क्षुद्र है, तो मेरे मनमें यह भावना उत्पन्न हुए विना न रही कि प्रेमचन्दजी उच्चकोटिके आलोचक नही। ससारके श्रेष्ठ आलोचकोंकी सम्मतिमें कलाकी दृष्टिसे तुर्गनेव उन्नीसवी शताब्दीका सर्वोत्तम कलाकार था। मैंने प्रेमचन्दजीसे यही निवेदन किया कि आप तुर्गनेवको एक वार फिर पढिये।

हिन्दी-गल्प-लेखकोंके विषयमे वातचीत

प्रेमचन्दजीसे सर्वश्री जयशंकरप्रसादजी, जैनेन्द्रजी, उग्रजी, चतुरसेनजी इत्यादिके विषयमे बहुत देर तक वातचीत हुई। प्रसादजीको वे उच्च-कोटिका कलाकार मानते है, यद्यपि उनकी भाषा प्रेमचन्दजीको पसन्द नही। मैंने प्रेमचन्दजीसे कहा—"उनकी बौद्धकालीन भाषाकी वजहसे ही तो मेरे हृदयमे उनके विरुद्ध धारणा पैदा हो गई है। जब वे

'कंकाल'के प्रारम्भमें लिखते हैं—"प्रतिष्ठानके खँडहरमें और गंगातटकी सिकता भूमिमें अनेक शिविर और फूसके झोंपड़े खड़े हैं।" तो मुझे 'प्रतिष्ठान' और 'सिकता' के लिए 'हिन्दी-शब्दसागर' तलाश करना पड़ता है, तब कहीं पता लगता है कि प्रतिष्ठान झूँसीका प्राचीन नाम है, और सिकताके मानी रेती है! उस समय ऐसी झुँझलाहटाग्नि उत्पन्न होती है कि झूँसीके झोपड़ोंमें आग लग जानेकी आशंका हो जाती है। हमें तो गीरीजवाँ आदमियोंकी सरल-मधुर भाषा पसन्द है, और प्रसादजीकी 'सिकता' हमारे मुँहमें करकराती है। इसपर प्रेमचन्दजीने कहा—"इसमें अपराध आपका है, प्रसादजीका नहीं।"

सौभाग्यवश प्रसादजीके दर्शन भी हो गये। उनसे मैं पहले भी दो बार मिल चुका था, पर उस समय मैं उनके विषयमें जो भावना लेकर लौटा था, इस बार उससे बिलकुल विपरीत भावना लेकर लौटा। 'आकाश-दीप' की आलोचना करते समय, जुलाई सन् १९३० के अंकमें, मैंने लिखा था कि 'उसमें ३३ फीसदी शाब्दिक घटाटोप—३३ फीसदी निर्जीव प्राकृतिक वर्णन+३३ फीसदी कृत्रिम वार्तालाप है।' इस हिसाबसे प्रसादजीके साथ साहित्यिक समझौता करनेकी कोई गुंजाइश ही नहीं रही थी। इसलिए जब प्रेमचन्दजीने मुझसे कहा कि प्रसादजी प्रातःकाल नित्यप्रति यहाँ टहलने आते हैं, आज उनके साथ ही टहलेंगे, तो मैंने यही निवेदन किया कि मेरा न चलना ही ठीक होगा, क्योंकि पारस्परिक वाद-विवादकी आशंका है। प्रेमचन्दजीने कहा—"हम लोग साहित्यिक विषयोंपर बातचीत करते ही नहीं। अन्य साधारण विषयोंपर ही वार्तालाप होता है।' इससे मुझे बहुत-कुछ सान्त्वना मिली। हम लोगोंकी बातचीत एक घंटे-भर हुई। मुख्य विषय था, दो सम्पादकोंका विवाह—एक लखनऊके और एक कलकत्तेके! पहले सज्जनके विवाहके विषयमें हिन्दी-संसार काफी दिलचस्पी लेता रहा है इस सम्बन्धमें हम लोग १०० फीसदी सहमत हो गये। किसी कविने क्या ही बढ़िया रचना की है—

"सारी हिन्दीकी जमाअत हिल जाय,
पुस्तकमालाका नसीवा खुल जाय,
कसम कुरआनकी ऐ ! लोढ़ाराम,
उनको गर व्याहसे फुरसत मिलजाय !"

रहे दूसरे सम्पादक, सो उनके विवाहके विषयमें हम लोग ९९३/४ फीसदीसे अधिक सहमत न हो सके !

प्रेमचन्दजीको अपनी पुस्तकोसे जो आमदनी होती है, उसका एक अच्छा भाग 'हंस' और 'जागरण' के घाटेमें चला जाता है । कितने ही पाठकोका यह अनुमान होगा कि वे अपने ग्रन्थोके कारण धनवान हो गये होगे, पर यह धारणा सर्वथा भ्रमात्मक है । हिन्दीवालोके लिए सचमुच यह कलककी बात है कि उनके सर्वश्रेष्ठ कलाकारको आर्थिक संकट बना रहता है । सम्भवत इसमें कुछ दोष प्रेमचन्दजीका भी है, जो अपनी प्रवन्धशक्तिके लिए प्रसिद्ध नही, और जिनके व्यक्तित्वमें वह लौह दृढता भी नही, जो उन्हें साधारण कोटिके आदमियोके शिकार बननेसे बचा सके । कुछ भी हो, पर हिन्दी-जनता अपने अपराधसे मुक्त नहीं हो सकती । हमें इस बातकी आशका है कि आगे चलकर हिन्दी-साहित्यके इतिहास-लेखक-को कही यह न लिखना पडे—"दैवने हिन्दीवालोको एक उत्तम कलाकार दिया था, जिसका उचित सम्मान वे अपनी मूर्खतावश न कर सके ।"

परमात्मा हम लोगोको समय रहते सद्बुद्धि दे । प्रेमचन्दजीके सत्सगमें एक अजीब आकर्षण है । उनका घर एक निष्कपट, आडम्बर-शून्य सद्गृहस्थका घर है, और यद्यपि प्रेमचन्दजी काफी प्रगतिशील है—समयके साथ बराबर चल रहे है—फिर भी उनकी सरलता तथा विवेक-शीलताने उनके गृह-जीवनके सौन्दर्यको अक्षुण्ण तथा अविचलित बनाये रखा है । उनके साथ व्यतीत हुए दो दिन जीवनके चिरस्मरणीय दिनोमें रहेंगे ।

जनवरी १९३२]

पंडित सुन्दरलालजी

बात पाँच-सात वर्ष पहलेकी है। आश्रममें दो-तीन दिन रहनेके बाद साबरमती स्टेशनसे सुन्दरलालजी बम्बई जा रहे थे। गाड़ीमें अभी देर थी, पहले एक मालगाड़ी धीरे-धीरे निकली। उसकी मन्दगतिको देखकर आपने कहा—

"मनमें आता है कि इनके नीचेसे निकल जावें। कोई मुश्किल बात नहीं है। जरासा टेढे होकर तेजीके साथ चलनेसे कोई भी फुर्तीला आदमी झटसे उधर निकल सकता है।"

मैंने कहा—"इससे फायदा? जबरदस्ती खतरेमें पड़नेकी जरूरत ही क्या है?" थोड़ी देर तक वाद-विवाद होता रहा। इतनेमें रेल आ गई और सुन्दरलालजी बम्बईको चल दिये। मैं आश्रमको लौट आया। बहुत-कुछ प्रयत्न करनेपर भी मैं उस आनन्दकी कल्पना नहीं कर सका, जो चलती हुई मालगाड़ीके नीचेसे 'झटसे उधर निकलने' से प्राप्त होगा! बात एक मामूली-सी है, पर इससे सुन्दरलालजीकी मनोवृत्तिपर अवश्य ही कुछ प्रकाश पड़ता है। शायद माडरेटों और एक्सट्रीमिस्टोंमें मनोवृत्तिका ही अन्तर है। जहाँ माडरेट खतरेमें नहीं पड़ना चाहते और 'हाथ-पाँव बचाने' और 'मूजीको टरकाने' में विश्वास करते हैं, वहाँ एक्सट्रीमिस्ट जान-बूझकर आगके साथ खेलनेमें मजा लेते हैं। वह कमबख्त 'मूजी' हाथ-पाँव बचाते हुए भी 'टरक' सकता है या नहीं, यह प्रश्न ही दूसरा है।

सुन्दरलालजीको खतरोंमें पड़नेमें आनन्द आता है। प्रारम्भिक जीवनके विषयमें हमें विशेष पता नहीं। इतना हम अवश्य जानते हैं कि वे मुजफ्फरनगर जिलेके रहनेवाले हैं, और उन्होंने डी० ए० वी० कालेज लाहौरमें शिक्षा पाई थी। वहींसे शायद बी० ए० पास

किया था। सुन्दरलालजी पर लाला लाजपतरायके व्यक्तित्वका ज़बर्दस्त प्रभाव पडा था, और लालाजी सुन्दरलालजीपर विशेप स्नेह भी रखते थे। सुन्दरलालजीने लालाजीको आदर्श नेता मानकर उनका अनुकरण प्रारम्भ किया। सुन्दरलालजीकी भापणशैली लालाजीसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। जिन्होने सुन्दरलालजीके भापण सुने है, वे कह सकते है कि उनकी ज़बानमें गज़बका जादू है। सहस्रों आदमियोंकी सभाओंको प्रभावित करनेकी शक्ति उनमें विद्यमान है। क्रान्तिके दिनोंके लिए उनकी यह वाणी क्या-क्या करामात दिखला सकती है, इसका हम लोगोंमें से अधिकाश अनुमान भी नही कर सकते।

कानून पढ़नेके लिए सुन्दरलालजी प्रयाग आये थे। कॉलेजमें पढते हुए प्रिन्सिपलसे आपकी गरम बहस हो जाया करती थी। वह आपको खतरनाक आदमी समझता था। ऊपरसे तो वह नाराज़ था, पर दिलमें आपके व्यक्तित्वकी धाक मानता था। राष्ट्रिय आन्दोलनमें भाग लेनेके कारण वे हिन्दू-वोर्डिंग हाउससे निकाल दिये गये। अच्छा ही हुआ। 'मिस्टर सुन्दरलाल (भटनागर या सक्सेना?) वी० ए०, एल-एल० वी०, वकील हाईकोर्ट, इलाहावाद' के वजाय देशको पडित सुन्दरलालजी मिल गये।

संयुक्त-प्रान्तके जब बड़े-बड़े नेता घोर माडरेट थे, उस समय सुन्दरलालजीने वहाँ उग्र राजनैतिक विचारोका प्रचार करना प्रारम्भ किया था। नरम नेताओंकी वेजा नरमीने आपको कितना सन्तप्त किया, इस प्रश्नपर प्रकाश डालनेकी यहाँ आवश्यकता नही। यही कहना पर्याप्त होगा कि इन सन्तापोने आपके विचारोंको और भी गरम कर दिया।

पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा, पर यह वात विलकुल ठीक है कि सुन्दरलालजी स्वर्गीय गोखलेका नाम वड़ी श्रद्धा तथा सम्मानके साथ स्मरण करते है। जो वातें सुन्दरलालजी उनके विपयमें सुनाते है, उनमे प्रतीत होता है कि स्वर्गीय गोखलेके हृदयमे क्रान्तिकारी नव-

युवकोंके प्रति कुछ कोमल भाव अवश्य थे। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई सम्पादक महोदय सुन्दरलालजीसे उनके राजनैतिक संस्मरण लिखा सके।

संयुक्त-प्रान्तमे उग्र राजनैतिक विचारोंके प्रारम्भिक प्रचारकोंमें आपका स्थान अत्युच्च है। सन् १९१० में आपने 'कर्मयोगी' नामक साप्ताहिक पत्र निकालकर हिन्दी पत्रकार कलामें एक प्रकारका युगान्तर-सा उपस्थित कर दिया था। हिन्दीमें अनेक साप्ताहिक पत्र निकलनेपर भी 'कर्मयोगी' के मुकाबलेका और उस ढंगका दूसरा साप्ताहिक पत्र आज तक नही निकला। तीन-चार महीनेके अन्दर ही 'कर्मयोगी' छह हजार तक छपने लगा था, जो उस समयके देखे एक अत्यन्त उत्साहप्रद संख्या थी। वैसे आजकल भी इतना प्रचार आसान नहीं है। 'कर्मयोगी' सरकारकी आँखोंमें खटकने लगा, और नौकरशाहीने राजद्रोहका अपराध लगाकर उसे बन्द कर दिया। हिन्दी-पत्रकार-क्षेत्रमे उत्कट देश-प्रेम, निर्भीक स्वातन्त्र्य तथा उग्र राजनैतिक विचारोंके बीज बोनेवाले यदि 'हिन्दी-प्रदीप'-सम्पादक स्वर्गीय प० बालकृष्णजी भट्ट कहे जायें, तो इस पौधेको सींचनेवाले 'कर्मयोगी'—सम्पादक श्री सुन्दरलालजी माने जायेंगे। दोनोका गुरु-शिष्य जैसा सम्बन्ध भी था। सुन्दरलालजीपर भट्टजीकी बड़ी कृपा थी।

सुन्दरलालजी समयपर काम करना जानते हैं और कुसमयपर चुप रहना भी जानते हैं। जब उन्होंने देखा कि वायु-मण्डल उपयुक्त नहीं है और संयुक्त-प्रान्तकी जनता उनके गरम विचारोंके पीछे नहीं चल सकती तो उन्होंने अज्ञातवास स्वीकार कर लिया और सोलनकी पहाड़ीपर स्वामी सोमेश्वरानन्दके रूपमें विचरने लगे। शायद उन्हीं दिनों उन्होंने ऐडवर्ड कार्पेण्टरकी 'Civilisation, its cause and cure' नामक सुप्रसिद्ध पुस्तकका अनुवाद किया था, जो 'सभ्यताकी बीमारी और उसका इलाज' नामसे छपी।

जब श्रीमती एनी वीसेन्टने होम-रूलका आन्दोलन खड़ा किया, तो सुन्दरलालजी अपने अज्ञातवाससे फिर कार्यक्षेत्रमें आये। उस समय प्रयागकी होम-रूल लीगके द्वारा आपने अच्छा काम किया। असहयोग-आन्दोलनमें जो महत्त्वपूर्ण भाग आपने लिया, उसे हिन्दी-पत्रोंके पाठक जानते ही है। नवयुवकोपर जो अद्‌भुत प्रभाव आप डाल सकते हैं, उसकी प्रशंसा महात्मा गान्धीने अपने पत्र 'यग इण्डिया' में की थी। इस बीच आपने 'भविष्य' नामक पत्र भी निकाला था, पर वह भी सरकारकी कृपासे वन्द कर देना पड़ा। मध्यप्रदेशके झण्डा-सत्याग्रहके सूत्रधार और सचालकके रूपमे किये हुए आपके कार्यसे सर्वसाधारण परिचित ही है। स्वाधीनता-संग्राममें एक छोटे सिपाहीसे लेकर बड़े सेनापति तकका कार्य आप योग्यता-पूर्वक कर सकते है।

सुन्दरलालजी तथा अन्य राजनैतिक कार्यकर्ताओकी मनोवृत्तिमे कुछ अन्तर अवश्य है। हमारे देशमें कितने ही लीडर ऐसे है, जो हर मौके पर—चाहे देशकी परिस्थिति उनके विचारोंके अनुकूल हो, या प्रतिकूल—जनताके सम्मुख बने रहना चाहते है। सुन्दरलालजी इस नीतिके विरोधी है। गम्भीर उथल-पुथलके दिनोमें ही उन्हे आनन्द आता है। स्वराज्य-पार्टीके निर्माणके विरुद्ध उन्होंने काफी उद्योग किया था। कोकनाडा-काग्रेसमें तो श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्तीको नेता बनाकर उन्होंने स्वराज्य-पार्टीको पराजित करनेका भी प्रयत्न किया, पर इस प्रयत्नमें वे असफल हुए और उसके बाद उन्होने चुप्पी साध ली।

भारतीय राजनीतिके क्षेत्रमें स्वराज्य-पार्टीका दौर-दौरा रहा। कौन्सिलोमें जाकर 'दुश्मनका किला तोडने' की और 'भीतरसे असहयोग' करनेकी आवाज़ बुलन्द की गई। सुन्दरलालजीने कान बन्द कर लिये। एक न सुनी। बड़े-बडे अपरिवर्तनवादी नेता कौन्सिलोमें जाना देशके लिए विघातक मानते हुए भी स्वराजिस्टोको वोट दिलानेकी दौड-धूपमें शरीक हुए! कोई नगरके गण्यमान्य साथियोंके दबावको न रोक सका,

तो कोई कांग्रेसकी इज्जतका ही खयाल करके कौन्सिलमें चला गया और किसी-किसीने यह कहकर मनको समझाया कि ग्राम-संगठनका कार्य कौन्सिलों द्वारा करेंगे ! सुन्दरलालजीसे भी कहा गया कि चुनावमें स्वराजिस्टोंकी सहायताके लिए दौरा करो। आपने साफ इनकार कर दिया। कौन्सिलमें जाने तथा बाहर आने और फिर जानेके हास्योन्मादक नाटक होते रहे। जब कि कितने ही लीडराने-वतन 'कौमके गममें डिनर खाते थे हुक्कामके साथ', उस समय सुन्दरलालजी ५१ नं०, चक मुहल्ला, प्रयागके एक प्राचीन कालीन मकानमें रहते हुए चरखा कातते थे, और 'भारतमें अंग्रेजी-राज्य' नामक पुस्तक लिखते थे। इस समय देशमें पुन. संग्राम छिड़ गया है। रणभेरी बज गई है, लिहाजा सुन्दरलालजी आज फिर कार्यक्षेत्रमें कमर कसे दिखाई पड़ते हैं— कानपुरमें होनेवाली संयुक्त-प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेन्सकी बागडोर उनके हाथमें है।

श्रीयुत सुन्दरलालजीका सबसे बड़ा गुण यही है, और व्यावहारिक राजनीतिज्ञोंकी दृष्टिसे शायद सबसे बड़ी कमजोरी भी यही है—कि वे समझौता करना जानते ही नहीं। अपने विरोधीका दृष्टिकोण उन्हें दीखता ही नहीं। माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजीपर यह अपराध लगाया जाता है कि वे अपने विपक्षीके दृष्टिकोणसे उनके पक्षको देखते है, और इसीलिए उनके विरोधमें निर्बलता आ जाती है। सुन्दरलालजी पर यह अपराध कोई कदापि नहीं लगा सकता। विरोधी दलको छकानेमें आप कितने सिद्धहस्त है, इसके प्रमाण आप मध्यप्रदेशके दो-एक भूतपूर्व मिनिस्टरोंसे ले सकते हैं। स्वर्गीय लालाजीने एक बार कहा था— "सुन्दरलाल, तुम कभी देशसे बाहर तो गये नहीं, पर यूरोपियन दलबन्दीकी Party-Politics ढंगकी कार्रवाइयोंके तुम घर बैठे ही मास्टर बन गये हो !" किसी-किसीका यह मत है कि अपने विरोधियोंके प्रति बर्ताव करते हुए वे दलबन्दीके सभी प्रकारके दाव-पेचोंका प्रयोग करते हैं। स्वयं

राजनीतिज्ञ न होनेके कारण हम इस कथनकी सत्यता अथवा असत्यताके विषयमें कुछ नहीं कह सकते ।

सुन्दरलालजी दिमागके बडे साफ है। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि बाह्य घटाटोपोंको चीरती हुई सीधी मूलपर पहुँचती है। सयुक्त-प्रान्तके एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक विद्यालयकी मैंने उनके सामने बहुत प्रशंसा की। सुनते रहे, फिर बोले—"यह तो सब ठीक है, पर उक्त विद्यालयकी नींव तो अन्ध-विश्वास (Superstition)पर रखी हुई है। फिर भला वह संस्था कैसे अच्छी हो सकती है ?" मैंने बहुत तर्क-वितर्क किया, पर उनका अन्तिम जवाब यही था—"जिसके मूलमें ही खराबी है, उसकी तारीफ मैं कैसे करूँ ? समय आनेपर इस तरहकी संस्था देशका कभी साथ न देगी।"

साम्प्रदायिक कालेजों तथा विश्व-विद्यालयोंको आप देशके लिए अत्यन्त विघातक मानते है, और उनकी अपेक्षा गवर्नमेन्ट कालेजोंको ही बेहतर समझते है ! एक बार कायस्थ पाठशालाके विद्यार्थी स्वजातीय सस्थामें कुछ भाषण देनेकी प्रार्थना करनेके लिए आपके पास गये थे। आपने साफ इनकार कर दिया। "हिन्दू-विश्वविद्यालयका आन्दोलन देशके लिए विघातक सिद्ध हुआ। उससे सार्वजनिक शिक्षाकी धारा जिसे स्व० गोखले साधारण जनताकी ओर ले जाना चाहते थे, उल्टी हानिकारक दिशामे चली गई"—इत्यादि तर्क आप सुन्दरलालजीसे सुन सकते है। साम्प्रदायिकताके आप कट्टर दुश्मन है, और उसकी नींवपर खडे सुन्दर-से-सुन्दर विशाल भवनको आप भयकर मानते हैं।

हरएक आदमीकी एक-न-एक खास कमजोरी होती है। या यो कहिये कि जिस वस्तुसे जिसे अत्यधिक ममता हो, वही उसकी कमजोरी है। चरखा महात्माजीकी कमज़ोरी है, हिन्दू-विश्वविद्यालय पूज्य मालवीयजीकी कमज़ोरी है और 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' श्रीयुत सुन्दरलालजीकी ज़बर्दस्त कमज़ोरी है। कितने ही लोगोंका ऐसा कथन है कि मुसलमानोंके

प्रति उनका काफी पक्षपात है। उनके कोई-कोई विरोधी तो यहाँ तक कहते हैं—"सुन्दरलालजीका सारा ऐतिहासिक ज्ञान इसी दोषके रगसे रजित हो गया है।" इसका जवाब वे यही देते हैं—"जो इतिहास आजकल पाये जाते हैं, वे ऐसे महानुभावोंके लिखे हुए हैं, जिनका स्वार्थ हिन्दू और मुसलमानोमें विभिन्नता पैदा करनेमे था। अब राष्ट्रिय इतिहास दूसरी दृष्टिसे लिखे जाने चाहिए।"

इतिहास-शास्त्रके विशेषज्ञ न होनेसे इस प्रश्नपर अपनी सम्मति देनेमें हम असमर्थ हैं। मामूली पाठककी हैसियतसे इतना जरूर कह सकते हैं कि मुस्लिम सस्कृतिकी प्रशसामें सुन्दरलालजी दक्षिणी ध्रुव तक जाते हैं, तो उसकी निन्दामें भाई परमानन्दजी उत्तरी ध्रुव तक। सत्य शायद इन दोनो स्थानोके बीचोबीच है।

देशमें तरह-तरहके 'क्रान्तिकारी' हैं। कोई राजनैतिक मामलोंमें घोर क्रान्तिका कट्टर समर्थक है, तो कोई सामाजिक मामलोंमें 'गौड़ ब्राह्मणोकी रोटी' से आगे नही बढ पाया। हिन्दू-मुस्लिम एकतापर धारा-प्रवाह व्याख्यान देनेवाले कितने ही क्रान्तिकारी नेता मुसलमानके हाथका छुआ पानी तक नही पी सकते। सुन्दरलालजीको इस तरहके लोगोंसे घोर घृणा है। खुदा न ख्वास्ता कही सुन्दरलालजी किसी रेलवेके डिवीजनल सुपरिण्टेण्डेण्ट बना दिये जायें, तो दूसरे दिन ही रेलवे स्टेशनो पर निम्न-लिखित फरमान चिपका हुआ दीख पड़ेगा—

"यात्रियोको आगाह किया जाता है कि पहली मईसे तमाम स्टेशनोपर बिला किसी जात-पात भेदके इडियन पानीका इन्तजाम किया जायगा। 'हिन्दू-पानी' और 'मुस्लिम-पानी' का प्रबन्ध तोड़ दिया जायगा। जो मुसाफिर इसे नापसन्द करें, वे या तो रेलका सफर करना छोड़ दें, या फिर घरसे पानीका इन्तजाम करके बैठें।

सुन्दरलालजी किस धर्मके अनुयायी हैं और उनके धार्मिक विश्वास क्या हैं, सक्षेपमें यह बतलाना कठिन है। राष्ट्रियता ही उनका धर्म है,

इतना कहनेसे काम नही चल सकता । एक बात हम अच्छी तरह जानते है, वह यह कि मध्यकालीन सन्त लोगोकी वाणियोका सुन्दरलालजीपर जबरदस्त प्रभाव पडा है । कबीरके तो वे अनन्य भक्त है ।

"हिन्दू कहें राम मोहि प्यारा, तुरक कहें रहिमाना,
आपसमें दोउ लरि-लरि मूए, भेद न काहू जाना ।"

कबीरकी यह उक्ति आपको बहुत पसन्द है। अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'भारतमे अग्रेजी राज्य' उन्होने कबीरको ही समर्पित की थी। आपका यह विश्वास है कि आगे चलकर कबीर आदि सन्त कवियोके विचार भारतमें अधिकाधिक लोक-प्रिय होगे । ये सन्त कवि शब्दाडम्बर-हीन भाषामें जो कुछ कहते है, वह सीधा जनताके हृदय तक पहुँच जाता है ।

सुन्दरलालजी मामूली जनताकी मनोवृत्ति को समझनेवाले नेता है । मध्यप्रदेशके किसी ग्रामका कोई अशिक्षित नवयुवक आपको अपनी पैदल यात्रामें कही मिला । वह सत्याग्रहमे एक बार जेल हो आया था, जिसके कारण उसके गाडी-बैल बिक चुके थे । सुन्दरलालजीने उससे पूछा—"क्यो भाई, अबकी बार फिर मौका आवे, तो जेल जाओगे ?" उसने तुरन्त ही कहा—"हओ ।" उसकी वह 'हओ' सुन्दरलालजी अब तक नही भूले । सच्चे क्रान्तिकारियोकी तरह सुन्दरलालजीका भी यही विश्वास है कि साधारण जनता तक स्वाधीनताका सन्देश पहुँचाये बिना स्वराज्य नही मिल सकता । सुन्दरलालजी सहृदय है । अपने साथी कार्यकर्ताओंके प्रति उनका बन्धुभाव प्रसिद्ध है । यदि उनके पास चार पैसे हो और चार साथी, तो पैसे-पैसेके चने आपसमे बाँटकर वे आनन्दसे काम कर सकते है ।

जीवनका लक्ष्य

कोरमकोर राजनैतिक स्वाधीनतासे सुन्दरलालजी सन्तुष्ट नहीं

हो सकते। वे इससे कुछ अधिक चाहते हैं। आजसे साढ़े पाँच वर्ष पहले उन्होंने अपने एक पत्रमें मुझे लिखा था—

"'अभी समय नही आया' की आवाज तो संसारके हर सुधारके विषयमें हमेशा उठती ही रहेगी, किन्तु मेरे दिलमें तो यह बात अधिकाधिक जमती ही जा रही है कि So-called 'धार्मिक' परम्पराओं और धार्मिक आडम्बरपर हमला करनेकी भारतमें यदि कभी आवश्यकता थी, तो अब है, और यदि कभी उनका समय था, तो वह यह है! 'असत्यकी दीवारें' कभी भी मजबूत नही हो सकती और सत्यके कुदालके सामने हरगिज देर तक नही ठहर सकती। यदि भारतको जीना है, तो सहभोज और अन्तर्जातीय विवाह (Inter-marriage) दोनों जरूरी है, और जितनी जल्दी हम इस सच्चाईको जनताके कानोंतक पहुँचा दें, उतना ही अच्छा है। मैं यह भी जानता हूँ कि Spade को Spade कहनेवालोंकी किस्मतमें सदासे Martyrdom शहादत बदी रही है, किन्तु इसकी मुझे परवाह क्या? इसे तो मेरे-जैसे सदासे मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च गौरव ही मानते आये हैं। मेरा नशा अभी तो गहरा ही होता जा रहा है, आगेकी कौन जाने! यदि जीता रहा और काम करनेकी शक्ति रही, तो वही आजादी एक आजादीकी रट, राजनैतिक आजादी, धार्मिक आजादी, सामाजिक आजादी, रूढ़ियों और परम्पराओंसे आजादी—मेरे लिए तो देशके उद्धार और अपने जीवन-कर्तव्यका यही एक मार्ग है। अहिंसा और असहयोग दोनोंका मैं पूरा कायल जरूर हूँ, किन्तु मेरे लिए साधन साधन है, ध्येय ध्येय है।"

सुन्दरलालजीका भविष्य क्या होगा, यह बतलाना कठिन है। दिल्ली-की पार्लमेण्ट रोडपर मोटरकारमें जाते हुए मि० सुन्दरलाल एम० एल० ए० की कल्पना हमारे दिमागमें नही आती। कण्टकाकीर्ण पथपर चलने-के अभ्यस्त कठोर चरणोंको वह कोमल मार्ग शायद ही पसन्द आवे। 'डोमिनियन स्टेट्स' हो जानेपर वे पूर्ण-स्वाधीनताके पक्षमें रहेंगे, और

पूर्ण-स्वाधीनता हो जानेपर धार्मिक परम्पराओं और आडम्बरोंके विरुद्ध। गरज यह कि लडते ही रहेंगे, लडनेवालोमें सदा आगे ही रहेंगे। एक वार न जाने किस विषयपर वार्तालाप हो रहा था। सुन्दरलालजीने कहा — "मुझे तो वह वात अच्छी लगती है। एक आदमी डूब रहा है। हम उधरसे जा रहे हैं। तैरना जानते हैं। कूद पडे, निकाल दिया और विना परिचय या वातचीतके चलते वने।" जब हमारे देशके कितने ही नवयुवक नेता स्वाधीनता-संग्राममें विजयी होकर देशके शासक होनेका सौभाग्य-पूर्ण अवसर प्राप्त करेंगे—यह स्वाभाविक है और उचित भी—उस समय भी सुन्दरलालजी किसी-न-किसी क्रान्तिकारी लडाईमें व्यस्त होंगे और अपनेसे लड़ना, विदेशियोंसे लड़नेकी अपेक्षा कठिनतर होगा। सुन्दरलालजी सन्तुष्ट होकर वैठ रहनेवाले जीव नहीं हैं। संक्षेपमें यदि उनका परिचय दिया जाय, तो हम इतना कह सकते हैं कि 'सुन्दरलालजी विना किसी लगालेसके ख़ालिस क्रान्तिकारी हैं।'

अप्रैल १९३०]

श्री सम्पूर्णानन्दजी

कोई ३५ वर्ष पहलेकी बात है। इन्दौरके राजकुमार-कालेजमें एक नवीन अध्यापक आनेवाले थे। उनका नाम कुछ अटपटा-सा था और किसी भी अध्यापकको उनके विषयमें कुछ भी ज्ञात न था। एकने कहा "ये महाशय शायद मदरासी होंगे' दूसरेने कहा 'नाम तो कुछ सन्यासियों जैसा है।" प्रत्येक अध्यापकने अपना-अपना अन्दाज भिड़ाया। जब मेरा नम्बर आया तो मैंने कहा "श्री लक्ष्मणनारायणजी गर्दे द्वारा सम्पादित 'नवनीत' नामक पत्रमें मैंने इसी नामके एक सज्जनकी कविता देखी थी, जो मेरी एक चिट्ठीके पास छपी थी। हो-न-हो ये सम्पूर्णानन्दजी वही सज्जन हैं।" किसी भी विद्यालयमें एक नवीन सहयोगीका आगमन एक महत्त्वपूर्ण घटना होती है, इसलिए हम सबकी उत्सुकता सर्वथा स्वाभाविक थी। तलाश करके 'नवनीत' फाल्गुण संवत् १९७१का अंक लाया गया। उसमें सम्पूर्णानन्दजीके नामसे दो कविताएँ निकलीं।

"देशभक्तका देहावसान"

हा विधि! क्या सुनाई आज!
देश भारत परम आरत दुखी दीन समाज।
गोखलेकी मृत्युसे गइ डूब राष्ट्र जहाज॥
स्वार्थ त्यागि अनन्य कीन्हो जातिके हित काज।
ईश सग सम्पूर्ण आनन्द पाइ करहि स्वराज॥

सम्पूर्णानन्द बी० एस-सी०
ता० १९ फरवरी १९१५ ई०

भक्त की विनय

श्रीयुक्त महाशय सम्पूर्णानन्द बी० एस-सी०

प्रभु तुम दीननके हितकारी !
अशरण शरण अबल बल अविचल, आर्त्त दुःख सहारी ॥
तव प्रसाद लहि रङ्क राव गति, पावत वेद पुकारी।
कृपा कटाक्ष करिय भारतपर, निज स्वभाव अनुसारी ॥
निज प्राचीन लहहि पद पुनि यह, होहि धर्मपथ चारी।
सम्पूर्णानन्द गति यहि दीजै, एती विनय हमारी।"

इन पद्योंसे इतना पता तो लग ही गया था कि आगन्तुक महाशय कोई हिन्दी-प्रेमी देशभक्त सज्जन हैं। चूँकि मैं उस विद्यालयमें हिन्दी शिक्षक था इसलिए मेरे लिए यह और भी हर्षकी बात थी। राजकुमार-कालेजके कामन रूममें एक खानेदार अलमारी थी, जिसमें एक-एक खाना प्रत्येक अध्यापकने ले रक्खा था और उसपर अपने नामका पर्चा लगा दिया था। मैंने एक होशियारी की। सम्पूर्णानन्दजीका नाम अपने हाथसे लिखकर एक खाना उनके लिए रिज़र्व कर दिया। जब वे महाशय पहले ही दिन वहाँ पधारे तो अपना नाम लिखा हुआ देखकर उन्हें कुछ आश्चर्य अवश्य हुआ। जब परिचय हुआ तो मैंने उनसे कहा "आपकी कीर्त्ति आपके आगमनके पूर्व ही यहाँ पहुँच चुकी है।"

उन्होंने जो उत्तर दिया, उसे हमारे कई साथी समझ ही नहीं सके। एक अध्यापकने हमसे बादको पूछा "ये हिन्दी बोल रहे थे या अंग्रेज़ी?" बात यह थी कि सम्पूर्णानन्दजी इतनी जल्दी-जल्दी बोलते थे कि उनके शब्दोंको विधिवत् समझना कठिन हो जाता था !

डेली कालेज [यही उस विद्यालयका नाम था] में सम्पूर्णानन्दजीके साथ जो ढाई वर्ष व्यतीत हुए उन दिनोंकी अनेक मधुर स्मृतियाँ हैं। हम दोनों ही साहित्य-प्रेमी थे और कभी-कभी तो बातें करते हुए रातके बारह

भी बज जाते थे ! उन दिनों भी वे बड़े अध्ययनशील थे और कालेजमें ही नहीं, इन्दौरकी पढी-लिखी जनतामें भी उनकी धाक जम गई थी। भौतिक-विज्ञान तथा गणित लेकर उन्होंने बी० एस-सी० परीक्षा पास की थी। शिक्षकका व्यवसाय करनेके लिए एल० टी० हुए थे। हमारे विद्यालयमें प्रकृति-पाठ यानी नेचर स्टडी पढाते थे। देशी राज्योंके प्रश्नोंका आपने अच्छा खासा अध्ययन कर लिया था, और उर्दू तथा संस्कृत दोनोंमें भी आपकी अच्छी गति थी। कामको जल्दी निपटाना और दीर्घसूत्रताको फटकने न देना, ये गुण आपमें उन दिनोंमें भी अच्छी मात्रामें विद्यमान थे। जब इन्दौरमें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन महात्मा गान्धीजीके सभा-पतित्वमें होनेवाला था, सम्पूर्णानन्दजी साहित्य विभागके सभापति बने और मैं था उनका मन्त्री। इस प्रकार उनके शासनमें ९,१० महीने काम करना पड़ा। उन दिनों सम्मेलनके अवसरपर लेख-माला प्रकाशित करनेकी एक अच्छी प्रथा थी। लेख मैंने मँगा लिये थे, पर उनका सम्पादन करना था और यह काम मेरे-जैसे प्रमादी व्यक्तिके लिए आसान न था। जब सभापति महोदयने मुझसे जवाब तलब किया तो मैंने सब लेख उन्हींके सामने पटक दिये और कहा "मेरे पास इतना अवकाश कहाँ है, जो यह काम करूँ ? मुझे दो-तीन घटेके लिए रोज तुकोगंज मध्यभारत-साहित्य-समितिमें जाना पड़ता है और आप घरपर बैठे रहते हैं। आप ही सम्पादन कीजिए।" सम्पूर्णानन्दजीने ५-७ दिनमें ही लेखोंका सम्पादन कर दिया और इस प्रकार मेरी जान बची। मुझसे वह काम बीस-पच्चीस दिनमें भी न होता !

राजनीतिके कीटाणु

एक दिन कोई कबाड़िया पुरानी किताबोंका गट्ठा लेकर आ गया और अपने स्वभावानुसार सम्पूर्णानन्दजीने उससे कई किताबें खरीद लीं। उनमें एक थी (Military Tactics) फौजी चालोंपर, और वह

उन्हें ६ पैसेमें ही मिल गई थी ! मुझे इस बातसे अवश्य ही आश्चर्य हुआ और उसी दिन मैंने समझ लिया कि महानुभाव शुद्ध साहित्यिक नही रह सकेगे ! लार्ड मेकालेने एक जगह लिखा था कि यदि किसीके सम्मुख दोनो मार्ग खुले है—राजनीतिका और साहित्यका और वह साहित्यके मार्गको छोडकर राजनैतिक मार्ग ग्रहण करे तो वह भयकर भूल करेगा। राजनैतिक कीटाणुओंने सम्पूर्णानन्दजीके मस्तिष्कपर कब आक्रमण किया, यह मै निश्चयपूर्वक नही कह सकता, पर वह फौजी किताब, उस बीमारीका एक प्रारम्भिक लक्षण जरूर थी। आगे चलकर जब पडित मोतीलालजी नेहरूने स्कीन कमैटीमें उन्हे अपना सेक्रेट्री बनाया था, उस समय सम्पूर्णानन्दजीकी फौजी मामलोकी अभिरुचि अवश्य ही सार्थक हुई होगी, पर तत्कालीन साथी अध्यापकोंके लिए तो वह पागलपन ही था। कामन रूममें कभी किसी विषयकी तो कभी किसी विषयकी किताब उनके पास सदा ही रहती थी। उन दिनो मेरी करेलीके उपन्यास और ईहा Eh? के ग्रन्थ उन्हें विशेप प्रिय थे, इतना मुझे अब भी स्मरण है। हास्यरसके वे तब भी प्रेमी थे, यद्यपि उनका हास्य गम्भीरताकी सीमाका उल्लघन कभी न करता था। मौसमके फल खानेका उन्हे शौक था और चूंकि उनका वेतन मुझसे तिगुना था, इसलिए वे अपने साथ मुझे भी प्राय शामिल कर लेते थे। सम्पूर्णानन्दजी सनातनधर्मी थे और ब्राह्मणोंके प्रति उनके हृदयमें बड़ी श्रद्धा थी और मै था आर्य्य-समाजी विचारोका। फिर भी उनकी श्रद्धाका लाभ उठानेमें मैने कभी सकोच नही किया ! आगे चलकर सम्पूर्णानन्दजीको अपने राजनैतिक जीवनमें जो सफलता मिली है, उसमें किसी चतुर्वेदी ब्राह्मणको फल खिलानेका पुण्य अवश्य ही सहायक हुआ होगा !

एक बार सम्पूर्णानन्दजीसे मैने कहा "आज रातभर नीद नही आई। पिस्सुओने बहुत तग किया।" मालवामें पिस्सुओंके मारे नाको दम रहता है। सम्पूर्णानन्दजीने इस पिस्सूवाली घटनापर एक कविता ही रच

डाली और कामन इसमे अन्य अध्यापकोंके सामने सुना भी दी। उसका अन्तिम पद था "पीयकी देह खुजावति कामिनि, भामिनिको पिय देह खुजावै"। बहुत दिनो तक इस "पिस्सू माहात्म्य"की चर्चा रही।

जब सम्पूर्णानन्दजी डूंगर कालेज बीकानेरके प्रधानाध्यापक नियुक्त होकर जाने लगे तो हम सबको बहुत खेद हुआ और विशेषत. वहांके साहित्य-प्रेमियोको। साहित्यिक छेड़छाड ही खतम हो गई। इसका एक उदाहरण हमे खास तौरपर याद आ रहा है। उन दिनो हमने एक पुस्तक प्रारम्भ की थी जिसका नाम था "चतुर्वेदियोकी हीन दशापर एक दृष्टि"। उस पुस्तककी रूपरेखा मैने एक नोट-बुकमें दर्ज कर ली थी। एक दिन अपना क्लास पढाके लौटा तो क्या देखता हूँ कि उक्त नोट-बुकमे ऊपर एक कविता लिखी हुई है। उस नोट-बुकका पन्ना अब भी मेरे पास सुरक्षित है। पद्य सस्कृतमे थे।

"वर्षान्ते तु यथा दशा ग्रीष्मादौ हिमराशय.।
चतुर्वेद्याख्या भूदेवा प्रणश्यन्ति कलौ युगे॥
त्यक्तधर्मा गता दैन्य, कालिन्दीकूलसेविन।
कच्छपवत्त्वाश्रुतिज्ञास्ते, सन्तरकर्म्मविशारदा॥
वय प्राप्तस्वकन्यानाम्, प्रतिदानकरा सन्तु।
छिन्नाश्चान्य गतिस्तेपाम्, आर्य्यधर्म्मसहद्विपाम्॥

इति भविष्यत्पुराणे

अर्थात् "जिस प्रकार वर्षाके अन्तमें डांस इत्यादि नष्ट हो जाते हैं और गर्मीके प्रारम्भमें बर्फ उसी प्रकार चतुर्वेदी नामक ब्राह्मण कलियुगमें नष्ट हो जायेंगे। ये लोग अपने धर्मको छोडकर दीनताको प्राप्त हो चुके हैं, जमना किनारे पडे रहना इनका काम है और वेदके विषयमें इन्हे उतना ही ज्ञान है जितना कछुओंको। कुश्ती लडनेमे ये कुशल हैं। अपनी बडी उमरकी लडकियोंकी सगाई ये बदलेमें करते हैं। आर्य्य-धर्म्मके

महान् द्वेषी इन चतुर्वेदियोंकी वही गति होगी जो तितर-बितर हो जानेवाले बादलोंकी होती है।"

—भविष्यपुराण

इस कवितामें भी बड़ी दिल्लगी रही। अध्यापक मंडलीने इसे खूब पसन्द किया। उन दिनों मैं 'विद्यार्थी' नामक पत्रके लिए कभी-कभी सम्पादकीय टिप्पणियाँ लिख दिया करता था। एक दिन मुसलमान अध्यापक बन्धुने पूछा "यह क्या कर रहे हो ?" मैंने कहा "टिप्पणी लिख रहा हूँ"। उसने अन्य अध्यापकोंसे पूछा "ये टिप्पणी क्या बला है ?" सम्पूर्णानन्दजीने कहा "ये खुद ही टिप्पणी है"। बस उस दिनसे हमारा नाम ही टिप्पणी पड़ गया ! और सम्पूर्णानन्दजी बहुत वर्षों तक अपने पत्रोंमें इसी शब्दका प्रयोग करते रहे।

जब मैंने डेली कालेजसे इस्तीफा दिया, सम्पूर्णानन्दजी उस समय बीकानेरमें डूँगर कालेजके प्रिंसिपल थे। उन्होंने उस समय जो पत्र लिखा था वह अब भी मेरे पास सुरक्षित है और वह उनकी तत्कालीन मनोवृत्तिका सूचक है—

"हरि ॐ

बीकानेर

कार्तिक कृ० १, ७७

"प्रियवर टिप्पणीजी,

The inevitable has happened मैं जानता था कि आप एक दिन ऐसा किये बिना न मानेंगे। अनुमान ठीक निकला। यह देशका सौभाग्य है। आगे चलकर Journalism आपको कोटिपति बना दे, आप सर्वोच्च पद और प्रतिष्ठा प्राप्त कर लें, पर इस समय तो आपकी प्रत्यक्ष हानि है। इसीका नाम त्याग है और देशको त्यागियोंकी ही आवश्यकता है। हम टुकड़ोंके गुलाम एकाध लेख या पुस्तक लिखकर, वह भी डरके मारे चिकनी चुपडी बातोंसे मिश्रित, अपनेको कृतकृत्य

मानते है, पर आप अब स्वतन्त्र है। बधाई है। भगवान् आपका कल्याण करे और आपको अपने सभी सदुद्देश्योंमे आशातीत सफलता प्राप्त हो।

आपके घरके लोग कहाँ है? आपने Journalism द्वारा निर्वाह की Practical सूरत क्या सोची है? क्षमा करियेगा मेरे प्रश्न स्पष्ट है, पर मुझे विश्वास है कि आप मुझसे रुष्ट न होगे। इस समय काम कैसे चल रहा है? आप बोलपुरमे क्या कर रहे है? इत्यादि बड़े रोचक प्रश्न है। किसी प्रकार समय निकालकर उत्तर दीजिये। 'शाहाँ चे अजब गर बे नवाजन्द गदा रा'। कभी-कभी हम गुलामोंको भी याद किया कीजिये।

इस Non-cooperation movement विशेषत Withdrawl of students के विषयमें आपकी क्या सम्मति है? और जो कोई रोचक बात हो सो लिखियेगा। मेरी समझमें जो लोग आपके Sex के विषयमे भूल करते है उनकी भूल क्षम्य है। 'हृदय' का जोर स्त्रियोंमे ही अधिक होता है। यदि आप एक भारतीय मस्तिष्क होते तो और बात थी। अस्तु, दुर्गा, काली, कालिका, चण्डी, चामुण्डा, शीतला आदि सब स्त्रियाँ ही थीं।

आपका
"आनन्द"

और पत्रके ऊपर लिखा था 'श्रीमती भारतीय हृदय' और यही अंग्रेजीमे भी।

बात यह थी कि उन दिनों 'एक भारतीय हृदय' उपनामसे मैं लिखा करता था। एक बात और। श्री सम्पूर्णानन्दजीने उपर्युक्त पत्रमे 'त्याग'-का जो इलजाम मुझपर लगाया था, वह सर्वथा निराधार था। हाँ, स्वयं वे उन दिनों अपनी तत्कालीन परिस्थितिसे कितने असन्तुष्ट थे, यह बात उक्त पत्रसे अवश्य प्रकट होती है। इसके थोड़े दिनों बाद उन्होंने अपने पदसे त्यागपत्र दे ही दिया।

उत्कट साधना

सन् १९२१से सम्पूर्णानन्दजीकी साधनाका युग प्रारम्भ हुआ और वह अभी तक चल रहा है। सम्पूर्णानन्दजी अपने बारेमें लिखना या बोलना नापसन्द करते है, इसलिए सर्वसाधारणको उनकी कठिनाइयोका पता ही नही लग पाता। उनके राजनैतिक विरोधी तो उनकी मानसिक परिस्थितिका अनुमान कर ही क्या सकते है, स्वय उनके घनिष्ठ मित्र भी उन संकटोका अन्दाज़ नही लगा सकते, जिनमेंसे सम्पूर्णानन्दजीको गुज़रना पड़ा है। इस बीचमे कितने ही बार उनके साथ रहनेका अवसर मुझे मिला है, पर अपनी परिस्थितिके विषयमे एक शब्द भी उन्होंने कभी नही कहा। "दु खेपु अनुद्विग्नमना." शब्द उनपर लागू होता है।

दो दिन

सम्पूर्णानन्दजीके साथ बिताये हुए दो दिन मुझे खास तौरसे याद है। जालिपादेवी मुहल्लेमें उन्हींके घरपर ठहरा हुआ था। सवेरे पाँच बजे सोकर उठा ही था कि बैठकके किवाड़ खोलते ही एक सज्जन घुस आये और बोले "आप मुझे पहचानते है? मै आपका पुराना Class fellow हूँ—I am an old class fellow" ये महाशय दोनो भाषाएँ साथ-साथ बोलते जाते थे। मैने कहा "मैंने तो आपको नही पहचाना। इस वक़्त अँधेरेमे चेहरा भी आपका ठीक तरह नही दीखता। आप किसको चाहते है?" उन्होंने कहा "मिस्टर सम्पूर्णानन्दको।" मैने कहा "वे अभी आते होगे"। इसके बाद उन महाशयने अपना जीवन-चरित मुझे सुनाया। सी० आई० डी०की पुलिसमें कलकत्तेमें नौकर थे। वेतन १७½ रुपये और २५ रुपयेके बीचमें था, पर कोकेनवालोसे और वेश्यालयोंसे ८-९ रुपया रोज़ मिल जाते थे। कई हज़ार रुपये इकट्ठे किये, फिर रेलमें गार्ड हुए और भत्ता मिलाकर १५० रुपया मासिक तक पहुँचे। आजकल ज़मीदारीके लिए मुकद्दमेबाज़ी कर रहे है और सम्पूर्णानन्दजीसे

वकीलके लिए चिट्ठी लिखाने आये थे। सबेरे चार बजेसे ही दरवाजेपर बैठे हुए थे, किवाड़ खुलते ही भीतर आये। इन्होंने पता लगा लिया था कि प्रातःकालमें ही सम्पूर्णानन्दजी विद्यापीठ चले जाते हैं। इसलिए सबेरे चार बजेसे ही उन्हें घेरनेका इरादा कर लिया था! उसके बाद आप बोले—The one thing I value in life is Satsang and fortunately I got a good deal of it. अर्थात् "जीवनमें यदि कोई मूल्यवान् वस्तु है तो सत्संग और सौभाग्यसे वह मुझे खूब प्राप्त हुआ है।"

सम्पूर्णानन्दजीका दैनिक कार्यक्रम अपने इन मुसल्सल सत्संगी पुराने क्लासफैलोसे प्रारम्भ हुआ। शायद आध घण्टेसे अधिक उन्होंने बर्बाद कर दिया। रातके दस बजे तक यही क्रम रहा। शामको उन्हें बुखार आ गया। एक महाशय मिलनेके लिए आये। मैंने कहा "उन्हें बुखार आ गया है, आप अपनी बात कह दीजिये, मैं उन तक पहुँचा दूंगा।" वे भला क्यों माननेवाले थे! अड़ गये। सम्पूर्णानन्दजीको आना पड़ा और पूरे डेढ़ घण्टे दिमागपच्ची करना पड़ा। वे बाहर पधारे ही थे कि महाशय चौधरी भरोस डोम M.L.C आ डटे। और उन्होंने सिंहासन बत्तीसीके ऐसे तर्क सुनाये कि मेरे लिए हँसी रोकना असम्भव हो गया। सम्पूर्णानन्दजी पौन घण्टे तक उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते रहे। उनके इस असाधारण संयमको देखकर हमें आश्चर्य हुआ। प्रातःकालमें श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय तथा डाक्टर हार्डिकर पधारे और व्याख्यानके प्रबन्धके लिए अनुरोध किया। कमिश्नरीके स्वयंसेवक-सङ्घका अधिवेशन काशीमें ही हो रहा था और उसके लिए कमनलिफटिंग प्रबन्ध भी करना पड़ा! यह भी खबर आई हुई थी—पं० जवाहरलालजी द्वारा प्रयागसे, कि अगले दिन वहाँ पहुँचना है। बावजूद बुखारके सारा कार्यक्रम उन्हें पूरा करना पड़ा।

जब सम्पूर्णानन्दजी म्युनिसिपल बोर्डके मेम्बर थे और [illegible]

चुंगी तथा शिक्षा-विभाग आपके अधीन थे, उन दिनों मामूली इक्केवालोंने भी अपनी अर्ज़ी उन्हींसे लिखानेकी दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी ! कितनी ही वार ऐसा हुआ कि परस्पर विरोधी व्यक्ति हिन्दू और मुसलमान अपनी-अपनी अर्जियाँ उन्हींसे लिखा ले गये ! एक वार इतने बीमार हो गये कि किसीसे भी बोलने चालनेकी सख्त मनाई कर दी गई। छतपर धीमे-धीमे टहल रहे थे कि दूसरी छतपरसे आवाज आई "क्यों साहव ! आप तो भले चंगे टहल रहे है, और हमारी अर्ज़ी लिखनेसे इन्कार कर दिया !"

एक वार आप तीन हज़ार रुपये लेकर ज़ेवर-वर्तन इत्यादि खरीदने बाज़ार गये हुए थे। छोटे भाई परिपूर्णानन्दजीकी शादी थी। एक परिचित महानुभावने पान खिला दिया। बेहोश हो गये और वे महाशय तीन हज़ार रुपयेके नोट लेकर चम्पत हुए। पुलिसमें शिकायत भी न की। अत्यधिक परिश्रमसे मस्तिष्क तो वैसे ही जवाब दे रहा था, इस दुर्घटनासे उन्माद-जैसी स्थिति आ पहुँची। बेहोशीके दौरे होने लगे। दौरेमें जो कोई मिलने जाता उसे कभी विज्ञानके ऊँचे सिद्धान्त बतलाते तो कभी योगकी बातें ! और ऐसे-ऐसे जिज्ञासु इधर-उधर रहते थे कि बिना इस बातका खयाल किये कि इन भलेमानसकी क्या मानसिक स्थिति है, उन बातोंको सुनने पहुँच जाते थे ! उस समय सोनेसे ही उनके मस्तिष्कको शान्ति मिलती थी। तब उन्हे डाँट-फटकार कर सुलाया जाता था।

इन शारीरिक कष्टोंको तो उनका प्रबल मस्तिष्क सहन कर ही गया पर जो गार्हस्थिक दुर्घटनाएँ उनके जीवनमे आई है, उनको सहन कर लेना किसी महान् तपस्वीका ही काम था। इतनी वार सम्पूर्णानन्दजीसे मुलाकात हुई है, घण्टो वातचीत हुई है पर अपनी इन दुर्घटनाओंके विषयमे एक शब्द भी उनसे सुननेको नही मिला !

बहुत वर्ष पहलेकी वात है—शायद १९१६-१७ की। मै उनके पास ठहरा हुआ था। गंगा-स्नानमें मुझे कोई विशेष श्रद्धा नही थी, पर सम्पूर्णानन्दजी अपने ब्राह्मण-अतिथिको इस पुण्यसे वंचित नही करना चाहते

थे। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्रसे कहा "जाओ चौबेजीको स्टेशन तक पहुँचा आओ"। वह लड़का उन दिनों नवें दर्जेमें पढ़ता था और बहुत ही होशियार था। मार्गमें बातचीत करनेपर उसकी असाधारण बुद्धिका पता लगा। कुछ महीनों बाद खबर मिली कि उसका देहान्त हो गया! मातम-पुर्सीके लिए आनेवालोंको वे उल्टा समझाते थे, और सुना है कि उन्होंने अपने उस दिनके सार्वजनिक कार्यमें भी कोई बाधा न आने दी थी! युवक दामाद, युवती कन्या, चार बहनें, युवा पुत्र, स्त्री आदि कितने ही आत्मीयोंके देहावसानके दिनोंमें उन्होंने कभी भी धैर्य नहीं खोया!

जो लोग सम्पूर्णानन्दजीको निकटसे जानते हैं वे कह सकते हैं कि वे उस उच्च मानसिक तथा आध्यात्मिक धरातलपर रहनेवाले व्यक्ति हैं, जहाँ क्षुद्र स्वार्थ और भोगविलास पहुँच ही नहीं सकते। उन्होंने कभी कोई सम्पत्ति इकट्ठी नहीं की। उनका घर बहुत ही मामूली-सा रहा है। अब तो उसमें कुछ सुधार भी हो गया है, पर पहले जब उनके यहाँ अनेक बार ठहरनेका मौका मिला तो मैंने एक मजाक बना लिया था। मैं कहता था "जब स्वराज्य हो जानेपर मुझे एक ही काम करना है। सम्पूर्णानन्दजीका घर गिरवा देना है—उसका Sanitary प्रबन्ध बहुत ही खराब है!" दैव दुर्विपाकसे बिहारके भूकम्पके दिनोंमें सम्पूर्णानन्दजीके मकानका भी एक हिस्सा गिर गया! उस समय भाई सम्पूर्णानन्दजीने लिखा था 'आपका आशीर्वाद फल गया!'

सम्पूर्णानन्दजी घोरतम आर्थिक कठिनाइयोंमेंसे गुजर चुके हैं। उनका एक पत्र (बिना उनकी अनुमतिके ही!) यहाँ उद्धृत किया जाता है।

जालिपा देवी
बनारस सिटी
१३-४-३३.

प्रिय चौबेजी, नमस्कार!

जेलसे आनेपर आपको आज पहिले-पहल पत्र लिख रहा हूँ। सम्भवतः

जागरण, और विशाल भारतमें आपके Interview का तमाशा पढा। इधर जेलमे मैंने फ्रेंच भाषा सीखी। एक फ्रेंच पुस्तकका अनुवाद किया। वह Macedonia के ५० वर्षोंके १९२९ तकके स्वातन्त्र्य संग्रामका इतिहास है। हम लोगोंकी वर्तमान दशामें बहुत ही रोचक, शिक्षाप्रद और उत्साहवर्द्धक है। लगभग १५० पृष्ठोंकी होगी। मैं आजकल प्रकाशन जगतसे Out of touch हूँ। क्या आप इस मामलेमें मेरी मदद करेंगे ? मैं चाहता हूँ पुस्तक छप जाय और तीन बातें हों—
१—शीघ्र छपे—पता नही शायद मैं फिर जेल भाग जाऊँ।
२—प्रभाव अच्छा हो। ३—इधर सन् १९३०से तबाह हो रहा हूँ, चाहता हूँ कुछ रुपया मुझे भी मिल जाय और वह भी जल्दी।

मैं समझता हूँ आप इस सम्बन्धमें प्रबन्ध कर सकते है। जल्द उत्तर दीजियेगा। आशा है आप कुशलपूर्वक होंगे।

आपका
सम्पूर्णानन्द

एक बार फिर सम्पूर्णानन्दजीकी सेवामे दो दिन बिताने पड़े और उन दिनोंकी याद कभी नही भूलेगी। खास तौरपर उनकी घड़ीने और उनके इक्केके घोड़ेने इतना तंग किया कि मैं प्राण बचाकर वहाँसे भाग निकला ! उन दिनों श्री सम्पूर्णानन्दजीको वक़्तपर हर काम करनेकी बीमारी Punctuality बेतरह लगी हुई थी। एक दिन शामके वक़्त मैं बाहर जानेवाला हुआ तो आपने कहा "देखिये, ठीक आठ बजे ब्यालूके वक़्त आ जाना"। मैं पहुँचा जैन-विद्यालयमे और वहाँ यजमानोंने १० बजा दिये ! लौटकर आया तो सम्पूर्णानन्दजीसे खासी मधुर डाँट सुननी पड़ी। कहनेकी जरूरत नही कि स्वयं सम्पूर्णानन्दजीने भी भोजन नही किया था। खाना ठंडा हो चुका था। उस समय मुझे एक किस्सा

याद आ गया। आचार्य क्षितिमोहन सेन भी इसी प्रकार लेट होकर घर पहुँचे तो उनकी पत्नी बहुत रुष्ट हुई। आचार्यजीने पत्नी हुई थाली उनके सिरपर रख दी! वे बोलीं "यह क्या करते हो?" आचार्यजीने कहा "कुछ नहीं, भोजन ठंडा हो गया है और तुम्हारा माथा गरम है, सो उसे गरम कर रहा हूँ!" सम्पूर्णानन्दजीके साथ ऐसी गुस्ताखी करनेकी हिम्मत मेरी नहीं पड़ी पर मैंने इतना तो कह ही दिया, "आपने भोजन क्यों नहीं कर लिया? यह धर्म क्यों निभाया?"

जब सम्पूर्णानन्दजी नाराज होते हैं तो छोटे-छोटे वाक्य बोलने लगते हैं। "अजीब दिल्लगी करते हैं आप!" इत्यादि-इत्यादि। उस दिन मुझे सम्पूर्णानन्दजीका हुक्म मानकर जरूरतसे ज्यादा मिठाई खानी पड़ी!

भीगी बिल्लीकी तरह बैठा हुआ मैं रसगुल्ले खा रहा था और घड़ीके आविष्कारकको कोस रहा था। दूसरे दिन जब मैं पत्रकारोंसे मिलने जाने लगा तो आपने फिर घड़ी दिखलाई "जनाबको आठ बजे यहाँ पहुँचना है। किरायेका इक्का है। वह इन्तजार नहीं कर सकता। अपनी बगीचीपर ले चलूँगा। समझे आप?"

इसके मारे पत्रकारोंकी सारी मनोरंजक बातोंको छोड़कर ठीक आठ बजे हाजिर हो गया। मैं समझे हुए था कि कोई मामूली इक्का होगा पर वह तो था "गहरेबाज" इक्का! काशीमें इक्कोंकी दौड़की यह बर्बर प्रथा अब भी चली आ रही है! शानदार मटरगस्तीपर न जाने सम्पूर्णानन्दजीने इक्केवालेको क्या इशारा कर दिया कि वह तेज सरपट दौड़ा। सम्पूर्णानन्दजीकी छोटी-सी भतीजी इन्दु भी साथमें थी। मेरा दम खुश्क था। इन्दु हँस रही थी और सम्पूर्णानन्दजी मुस्करा रहे थे! मेरा हार्ट फेल होते-होते बचा। पहियेकी रफ्तार उड़ाती गर्द और दो-चार लपेटे मेरे पाँवमें लगे। मैंने कहा "क्या आप मेरे प्राण लेना चाहते हैं?" इक्का वहीं मुश्किलसे रुका। जब इक्केसे उतरा तो मैंने कहा 'आपने

तो एकमात्र गरीब अराजकवादीकी हत्याका पूरा प्रबन्ध कर लिया था ! वह तो मैं बच गया !"

बगीची क्या थी खेत था ! हाँ, एक छोटा-सा कमरा उसमें ज़रूर बना हुआ था। वहाँ जाकर विश्राम किया। सम्पूर्णानन्दजीने चाय बनाई जिसमें उनके 'शऊर'का बहुत अच्छा प्रदर्शन नहीं हुआ।

दूसरे दिन अपनी जान बचानेके लिए मैं बिना कहे सुने वहाँसे भाग निकला। उसके बाद आपका कार्ड आया—

इलाहाबाद
२८-१०-४८

टिप्पणीजी महाराज,

यह चोरोंकी भाँति चुपकेसे निकल भागना आपने कहाँसे सीखा है ? भले आदमियोंका दस्तूर है कि मालिक मकानसे विदाई लेकर ही घर छोड़ते हैं। अभी मैंने सामान मिलाया नहीं है, यदि कमरेमेंसे तख्त या मेज या कुर्सी जैसी कोई चीज़ गायब पाई गई तो उसका दायित्व आपपर होगा।

सस्नेह
सम्पूर्णानन्द

इसके बाद सम्पूर्णानन्दजीका निमन्त्रण कई बार आ चुका है, पर उनके इस राजनैतिक षड्यन्त्रमें मैं नहीं फँसा। "न गंगदत्तः पुनरेति कूपम्।"

स्वाभाविक माधुर्य्य

राजनैतिक क्षेत्रमें काम करनेवालोंको बीसियों समझौते करने पड़ते हैं और जिन्हें शासक बननेका दुर्भाग्य प्राप्त होता है, उनके विषयमें तो बीसियों गलतफहमियाँ होती रहती हैं। सम्पूर्णानन्दजी भी इस नियमके अपवाद नहीं। एक दिन रातके १२–१२½ बजे आप रेडियो सुन रहे थे। दिन भरके हारे थके थे। लखनऊमें आपके बँगलेके आस-पास चक्कर

काटनेवाले कुछ कांग्रेसी कार्यकर्ताओंने समझा कि सम्पूर्णानन्दजीकी कोठीपर नाच-गाना हो रहा है! वे महाशय अपने हाईस्कूलके लिए डेपूटेशन लेकर गये थे और इसके लिए रातका ही वक्त उन्होंने मुनासिब समझा था! जब सम्पूर्णानन्दजीसे वे मिले तो अपनी आशंकाएँ प्रकट कीं। "हम तो आध घंटेसे चक्कर लगा रहे थे, पर यह समझकर कि आपके यहाँ गाना हो रहा है, नहीं आये।"

और लोकापवादोंका क्या कहना! जिस देशमें महात्माजीके विषयमें भी यह अफवाह फैलानेवाले मौजूद हों कि उन्होंने अहमदाबादमें अपने लड़कोंके लिए मिलें खुलवा दी थीं, उस देशमें सम्पूर्णानन्दजी-जैसे व्यक्तियोंको कौन बख्श सकता है? इन फ़ालतू आक्षेपोंकी चर्चा न करके हम इतना ही कह देना चाहते हैं कि सम्पूर्णानन्दजीकी ईमानदारी तथा निस्स्वार्थ भावनापर शङ्का करनेवाले व्यक्ति घोर भ्रममें हैं। हमें आश्चर्य इस बातका है कि इन गलतफहमियोंके बावजूद वे अपने स्वभावके माधुर्य्यकी रक्षा कैसे कर सके हैं!

एक बार मैंने उन्हें लिखा कि शासकोंमें मद हो जाता है। उनका जवाब सुन लीजिये—

"मद शासनमें भले ही हो पर कलम चलानेमें भी है। मदका अर्थ कलम भी हो सकता है। सो कैसे? देखिये—

मनीम् ददातीति मद। मनीति धनम्। को धन ददाति इति चेत्— न तत्र शङ्कावसर विद्यते। कलमो धन ददातीति सुनिश्चितम्—

कलम गोयद कि मन शाहे जहानम्

कलम कश रा बदौलत मी रसानम्

इति श्रवणात्। तस्माद् लेखनी एव मद। आत्मा वै जायते पुत्र इति न्यायात् लेखनमपि मद। पारसीक वाक्यानुसारं कलमो [illegible] जगतो राजा यतो लेखक धनमतीपमानयामि।

सस्नेह—सम्पूर्णानन्द

उर्दूके पक्षपाती होते हुए भी उर्दू हम नाममात्रको ही जानते हैं। बन्धुवर सुदर्शनजीने 'नेयाज़ मन्द' शब्द हमे सिखला दिया था, सो एक बार हमने उसका प्रयोग सम्पूर्णानन्दजीको लिखे एक पत्रमे कर दिया। उनका उत्तर आया—

लखनऊ
१८ अक्तुवर १९४८

जनाव पडत साहव कॉनिश अर्ज़ है

आपका नवाज़िशनामा मौसूल हुआ। इस करमके लिये ममनून हूँ। उस खतमें आपने जिस तजवीज़का इगारतन ज़िक्र किया है वह वज़ातखुद निहायत साएव है। मगर मैं इस सिलसिलेमे क्या ख़िदमत कर सकता हूँ, यह अभी तक नही समझ पाया। वहरहाल आचार्या निरेंदर देव साहवकी ख़िदमतमे इस ख़यालको पेश कर दूँगा और वह जो कुछ फ़रमायेंगे उसकी इत्तला आँजनावकी ख़िदमतमे इरसाल कर दूँगा। ज्यादा हद्दे अदव

नेयाज़मन्द
सम्पूर्णानन्द'

क्या ही अच्छा होता यदि सम्पूर्णानन्दजीके इस स्वाभाविक माधुर्य्यको जनता जान पाती!

देशकी पराधीनताका सबसे भयकर दुष्परिणाम यह हुआ था कि हमारे सैकड़ो सहस्रों नवयुवकोका घरेलू जीवन नष्ट हो गया। घरवालोंके लिए भी वे वाहरके हो गये और साधारण जनताके सम्मुख उनका सार्वजनिक रूप ही वार-वार आता रहा। जनता इस वातको भूल गई कि हमारे नेता भी हाड़-माँसके पुतले हैं और उनमें हृदय नामकी कोई चीज़ भी हैं।

सम्पूर्णानन्दजीकी राजनीतिसे और उनके शासक रूपसे हमारा परिचय नही। उनके दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थोको समझनेकी योग्यता भी हममें नही और साहित्य क्षेत्रमे भी हमारा उनसे मतभेद रहा है। वे शासक हैं और हम शासनमात्रके विरोधी (जीवनमें नही, कोरमकोर

विचारोंमे ही !) वे हिन्दीवाले है और हम हिन्दुस्तानीवाले। हमारे जनपदीय तथा प्रान्त निर्माण आन्दोलनोको वे निरर्थक समझते रहे है। और इधर उनके कई कार्य हमारी समझमें नही आये। मसलन्, प्रान्तीय अध्यापकोकी हडतालके विषयमे उनका रुख हमें अनुचित ही जँचा। एक मुदर्रिस पिताके पुत्र होनेके कारण हमारी स्वाभाविक सहानुभूति अध्यापकोंके साथ रही है। सम्पूर्णानन्दजी-जैसे साहित्यिक तथा सांस्कृतिक व्यक्तिके मन्त्रिमडलमें होते हुए भी उत्तर प्रदेशीय सरकार उस क्षेत्रमें कोई ठोस काम नहीं कर सकी और, स्वय पत्रकार होते हुए भी वे इस विस्तृत प्रान्तमें एक पत्रकार-विद्यालय भी कायम नही कर सके, इसका हमे खेद है। पर इस प्रकारके मतभेदोने हमारे पैंतीस वर्ष व्यापी सम्बन्धोंमें किसी भी प्रकारकी कटुता उत्पन्न नहीं की।

सम्पूर्णानन्दजी जिस उच्च बौद्धिक धरातल पर रहते है, वहाँ पहुँचना आसान नहीं और उनके जीवनकी दार्शनिकता तो अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। एक प्रश्न हमारे मनमें बार-बार उठता है। इतने घोर संघर्षों और गार्हस्थिक दुर्घटनाओंके बावजूद वे अपने मस्तिष्कका सन्तुलन कैसे बनाये रख सके है? राजनीतिके विषाक्त वायुमण्डलमें अपना स्वाभाविक माधुर्य कैसे कायम रख सके है? क्या उनके मूलमे उनका योगाभ्यास है? कुछ भी क्यो न हो, उन-जैसे साधक तपस्वीके सम्मुख हम नतमस्तक है।

फरवरी ५०]

श्री राहुल सांकृत्यायन

सन् १९०७

हावड़ा स्टेशनपर वह देखिये, कौन लडका बैठा हुआ है। उमर १५-१६ वर्षकी होगी। शक्ल-सूरतसे भले घरका मालूम होता है। हाथमें 'गुलबकावली' नामक किताब है। चिन्तित चेहरेसे ऐसा प्रतीत होता है कि घरसे भाग आया है। ज़रा उससे उसका हाल तो पूछे—"मैं उर्दू-मिडिलका विद्यार्थी हूँ। अपने नानाके पाससे भागकर यहाँ आया हूँ। मेरे नाना हैदराबाद (दक्षिण)मे फौजमें नौकर थे। अब वे बूढे हो चुके हैं। अक्सर वे नानीको अपनी यात्राओका हाल सुनाते रहते हैं। इससे मेरे मनमे भी यात्रा करनेकी धुन समाई, इसीलिए यहाँ भाग आया हूँ। उर्दूकी किताबमें मैंने पढा है—

'सैर कर दुनियाकी गाफिल ज़िन्दगानी फिर कहाँ?
ज़िन्दगी गर कुछ रही तो नौजवानी फिर कहाँ?'

इसलिए घरसे दुनियाकी सैर करने निकल पड़ा हूँ।"

वह देखिये, इसी प्रकार घरसे भागा हुआ एक दूसरा लडका भी उसके पास आ जुटा। इन दोनोंको मिलने दीजिए।

२ जनवरी सन् १९३५

"मै अन्तर्राष्ट्रिय बौद्ध-विश्वविद्यालय-समितिको इसलिए धन्यवाद देता हूँ कि उसने कृपाकर मेरा नाम अपनी परिषद्के लिए चुना है। यहाँपर मै यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मेरे जीवन तथा मेरे प्रयत्नों-का एक बडा भाग बौद्धधर्म-विषयक ज्ञानके प्रचारमें व्यय हुआ है, और जबतक मुझमे कार्य करनेकी शक्ति है, तबतक मैं प्रसन्नतापूर्वक इसी उद्योगमे लगा रहूँगा। न तो भारतवर्ष और न मानव-समाज ही बौद्ध

धर्मसे बढ़िया कोई दूसरा फल उत्पन्न करनेमें सफल हो सका है। खास तौरसे मुझे खुशी होगी भिक्षु राहुल सांकृत्यायनके साथ काम करनेमें, क्योंकि मैं भिक्षु राहुलकी गणना बौद्धधर्मके वर्तमान सर्वश्रेष्ठ विद्वानोंमें करता हूँ और उन्हें बौद्ध आदर्शोंका एक प्रतिनिधि मानता हूँ।'

—सिल्वाँ लेवी

उपर्युक्त वाक्य हैं संसारके महान् विद्वान् स्वर्गीय प्रोफेसर सिल्वाँ लेवीके, जिन्होंने अपने जीवनके ५०-५५ वर्ष संस्कृतके अध्ययन-अध्यापन तथा भारतीय विद्याओंके प्रचारमें लगाये थे और जो वास्तवमें वृहत्तर भारत के पिता माने जाते थे।

१९०७के उस लड़के और १९३५के इस त्रिपिटकाचार्य महापण्डित राहुल सांकृत्यायनमें कितना जबर्दस्त फर्क है! पर दोनों एक ही हैं। और सबसे बड़ी खुशीकी बात यह है कि राहुलजीमें लड़कपन (हमारा अभिप्राय बालसुलभ चाञ्चल्यसे है) अब भी काफी मात्रामें विद्यमान है। 'दुनियाकी सैर'के लिए वे अब भी वैसे ही दीवाने हैं। इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस, मिस्र, बर्मा, चीन, जापान, कोरिया, मञ्चूरिया, साइबेरिया, ईरान और तीन बार तिब्बतकी यात्रा कर चुकनेपर भी उनकी सैर करनेकी अभिलाषा तृप्त नहीं हुई। 'नौजवानी फिर कहाँ?' का सवाल उनके लिए उठता ही नहीं, क्योंकि ४८ वर्षके राहुलजी २०-२२ वर्षके नौजवानसे कहीं अधिक सजीव और परिश्रमी हैं।

स्वर्गीय प्रेमचन्दजी अथवा मिस्टर सुदर्शनजीकी तरह यदि इन पंक्तियोंके लेखकको फिल्म-डाइरेक्टर बननेका सौभाग्य या दुर्भाग्य इस जीवनमें प्राप्त हुआ तो वह 'राहुल' नामक फिल्म जरूर बनायेगा। दर-असल राहुलजीके विचित्र जीवनमें फिल्मके लिए बड़ा अच्छा मसाला विद्यमान है, और इस विषयमें वे [illegible] नाना और [illegible] फेयर बैंक्सके चाचा साबित होंगे।

"देवी मुझपर प्रसन्न न हुई, यद्यपि मैंने नवरात्रमे विधिवत् पुरश्चरण किया। अवश्य ही इसमे मेरा ही कोई दोष है। मेरे ही पाप हैं, जिनके कारण मुझे देवीके दर्शन न हो सके। अब मै धतूरा खाकर प्राण दे रहा हूँ। जिसे यह चिट्ठी मिले, वह मेरी मृत्युका असली कारण जान ले, इसलिए इतना लिख दिया है।"

इस तात्पर्यकी चिट्ठी रखकर वह देखिये, कोई युवक मरनेकी तैयारी कर रहा है! पर खैरियत यह है कि उसे इस बातका बिलकुल पता नहीं कि धतूरेका विष इतना प्रबल नही होता कि खानेवाला यकायक दूसरी दुनियाकी सैर करने लगे! कई कै हुई, आँखोकी ज्योति मन्द हो गई, बदनके पुर्ज़े-पुर्ज़े हिल गये, पर जान बच गई।

आप कहेंगे कि २० वर्षके इस युवकने क्या मूर्खता की थी? हम भी कहते है कि सचमुच भयकर नासमझीका काम था; पर उस दृढ विश्वासपर तो ध्यान दीजिए, जिससे प्रेरित होकर राहुलजी अपने प्राण देनेपर उतारू हो गये थे। यह दृढ विश्वास ही राहुलजीके जीवनकी कुंजी है, यही उनका सर्वोत्तम गुण है और इसीके बल-बूतेपर वे अपनी जानको खतरेमें डालनेसे नही हिचकते। दृढ़ इच्छाशक्ति और प्रत्युत्पन्नमतित्व—वक्तकी सूझ—राहुलजीके खास गुण है। राहुलजीने तिब्बत जाकर बौद्ध धर्मका अध्ययन करनेकी ठानी। सरकारसे तिब्बत जानेकी अनुमति नही मिली। राहुलजीने निश्चय किया कि वे विना अनुमतिके ही जायेंगे। म्याची होकर तिब्बतका सुगम मार्ग है; किन्तु उधरसे ब्रिटिश सरकार बिना इजाज़तके किसीको जाने नही देती, लिहाज़ा राहुलजीने नेपालके दुर्गम मार्गमे जाना निश्चय किया। नेपाल होकर सिर्फ नेपाली ही तिब्बत जा सकते है, हिन्दुस्तानी नही, फिर शिवरात्रिके १५ दिनोको छोड़कर कोई हिन्दुस्तानी नेपाल-सरकारकी आज्ञाके बिना नेपालकी सीमामें भी नही रह सकता। राहुलजी शिवरात्रिके बाद १५-२० दिन तो वेश बदलकर नेपालमें छिपे रहे और बादमें एक लद्दाखीका

वेश धरकर तिब्बतमें पहुँचे ! यह है उनकी दृढ़ इच्छाशक्ति और गजब-की सूझका नमूना। उन्हें देखकर प्राचीन कालके बौद्ध भिक्षुओंकी याद आ जाती है, जिन्होंने सैकड़ों मुसीबतोंका सामना करके देश-विदेशोंकी यात्राएँ की थीं।

राहुलजीने किसी विश्वविद्यालयमें शिक्षा नहीं पाई, पर साथ ही यह कहना अधिक ठीक होगा कि उन्होंने दरअसल 'विश्व'के विद्यालयमें आँख खोलकर घूमते हुए खूब शिक्षा प्राप्त की है। उर्दू-मिडिल उन्होंने जरूर पास किया था और गणितमें तमीज़ भी पाई थी, पर उर्दूकी वजहसे उनके नम्बर कम हो गये और उन्हें छात्रवृत्ति नहीं मिल सकी। नतीजा यह हुआ कि वे आगे नहीं पढ़ सके। यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो राहुलजीके बजाय हमें एक पीली शक्लके टुटरूँ-टूँ ग्रेजुएट मिल जाते। उर्दू-मिडिल पास करनेके बाद उन्होंने 'लघुकौमुदी', 'सिद्धान्तकौमुदी' पढ़ी। फिर डेढ़ वर्ष तक आगरेके मुसाफिर-विद्यालयमें अरबी पढ़ते रहे। पृथक् पास संस्कृत पढ़ी, फिर काशीमें तीन वर्ष तक संस्कृतका अध्ययन करते रहे। अँगरेज़ी पढ़नेकी धुन सवार हुई तो १९१३में काशीके डी० ए० वी० स्कूलमें ७वें दर्जेमें भर्ती हो गये, पर तीन महीनेसे अधिक न पढ़ सके।

इसके बाद सीलोनमें भी बहुत दिनों तक पाली भाषाका अध्ययन किया। हाँ, एक सरकारी विश्वविद्यालयमें राहुलजीने ढाई वर्ष तक शिक्षा पाई थी और उसका भूल जाना राहुलजी तथा सरकार दोनोंके प्रति कृतघ्नता होगी। १९२१ तथा १९२८-२९में प्रायः ढाई वर्ष तक जेलमें रहे। राहुलजी उन साधु-सन्यासियोंमेंसे नहीं हैं जिनके कानों तक देशकी स्वाधीनताके संग्रामकी ध्वनि ही नहीं पहुँचती और जो उस देशकी मुक्तिके प्रयत्नमें कुछ भी सहायता न देते हुए व्यक्तिगत मोक्षके लिए लालायित रहते हैं। 'बोधिचर्यावतार'के लेखकने प्रायः १२०० वर्ष पहले लिखा था—

"मुच्यमानेषु सत्त्वेषु ये मे प्रामोद्यसागरा ।
ते एव ननु पर्य्याप्ता मोक्षेणारसिकेन किम् ।"

अर्थात्—"दूसरोंके मुक्त होनेसे मेरे मनमें आनन्दके जो सागर उठते हैं, वे मेरे लिए पर्याप्त हैं। मैं इस व्यक्तिगत मोक्षको, जिसमें कुछ रस नही है, लेकर क्या करूँगा ?"

सम्भवत· राहुलजीके जीवनका मोटो भी यही है।

× × ×

राहुलजीकी जीवन-नदीमें हमें दो धाराएँ स्पष्ट दीख पड़ती है। उनके राजनैतिक विचार उग्र है और उनकी स्वाभाविक इच्छा उन्हें राष्ट्रिय स्वाधीनताके आन्दोलनमें भाग लेनेके लिए प्रेरित करती है। इसके साथ ही वे यह भी जानते है कि प्राचीन बौद्ध ग्रन्थोंके पुनरुद्धारसे वे भारतका गौरव ससारकी दृष्टिमे बढा सकते है। हर्षकी बात है कि उनके हृदय और मस्तिष्कका यह अन्तर्द्वन्द्व अब लगभग शान्त हो चला है और उन्होंने करीब-करीब यह निश्चय कर लिया है कि वे अपना समय मुख्यतया बौद्ध ग्रन्थोंके सम्पादनमें ही लगावेंगे। 'बाईसवी सदी' और 'साम्यवाद ही क्यो ?' नामक पुस्तकोका लेखक यदि राजनीतिमें भाग लेता, तो किस दलमें सम्मिलित होता, यह बतलानेकी आवश्यकता नही। पर बुद्ध भगवान् तथा मार्क्स इन दोनों देवताओंकी भक्ति एक साथ करना गंगा और मदारकी पूजा करनेके समान अत्यन्त कठिन है, और यदि अपने भक्तकी इस खींचातानीमें बुद्ध भगवान् विजयी हो, तो हमे कोई आश्चर्य न होगा। यद्यपि अन्य सब धर्मोंकी अपेक्षा बौद्धधर्म समाजवाद या कम्यूनिज्मके बहुत निकट पहुँचता है, तथापि मार्क्सके हिंसात्मक वर्गयुद्ध (Class-war) और भगवान् गौतम बुद्धके इस उपदेशमे कि द्वेषपर प्रेमसे विजय प्राप्त करो, सामजस्य किसी प्रकार नही हो सकता।

राहुलजीके हृदयमें स्वाधीनता-सग्राममें भाग लेनेकी इच्छा बड़े प्रबल वेगसे उठती रहती थी; पर वे अपने मनको किसी-न-किसी तरह समझा

लेते थे। वे कहते हैं कि प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसन्धानार्थ हमें समय-समयपर यात्रा करनी पड़ेगी और अपने राजनैतिक बन्धुओंके प्रति यह घोर अन्याय होगा कि उन्हे बीच संग्राममें ही छोड़कर हम इधर-उधर यात्रा करते फिरें। इस प्रकार राहुलजी मन मसोसकर रह जाते हैं। जब उनका हृदय राजनैतिक आन्दोलनकी ओर आकर्षित होता है, तभी उनका मस्तिष्क कहता है—"यदि दिङ्नागका 'प्रमाणसमुच्चय' ग्रन्थ मिल जाय तो यह जीवन सफल हो जाय।" पिछली बार जब तीसरी दफा तिब्बत जानेके पहले राहुलजी टाइफाइड ज्वरसे अत्यन्त पीड़ित होकर पटना हास्पिटलमें पड़े थे और कई दिन तक उन्हे होश नहीं रहा था, तब वे सन्निपातमें धर्मकीर्तिके 'प्रमाणवार्तिक'का नाम बार-बार ले रहे थे। "जाकी जापै सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू।" बाबा तुलसीदासका यह कथन सोलह आने सत्य है और अपनी पिछली यात्रामें राहुलजीको धर्मकीर्तिका अप्राप्य ग्रन्थ 'प्रमाणवार्तिक' मिल ही गया! काश कि आज सिल्वाँ लेवी जीवित होते! तृतीय तिब्बत-यात्राका जिक्र करते हुए राहुलजीने कहा—"यदि आज सिल्वाँ लेवी जीवित होते तो वे हर्षके मारे उछल पड़ते।"

आचार्य सिल्वाँ लेवी राहुलजीके कार्यके महत्त्वको समझते थे। सन् १९३२में उन्होंने अपने एक पत्रमें राहुलजीको लिखा था—"सबसे पहले मुझे आपको आपकी सरल, प्रवाहमयी और सुन्दर संस्कृतके लिए बधाई देना है। मैंने इसे बार-बार पढ़कर आनन्द लिया। मुझे सन्देह है कि बहुत दिनोंसे—कमसे-कम एक शताब्दीसे, सेनार्ट पंडित अमृतानन्दके जमानेसे—कोई भी बौद्ध विद्वान् ऐसी सुन्दर भाषा नहीं लिख सका था—वह भाषा, जिसे अश्वघोष, नागार्जुन और असंगने ऐसे अधिकारपूर्ण ढंगसे व्यवहार किया था। आपका बौद्धधर्म-ज्ञान आपकी संस्कृतकी योग्यताका एक और प्रमाण देता है। आपकी संस्कृत भाषाका विशाल अध्ययन और आपकी [illegible]

है। वूनिनकी कृतिके मौजूद होते हुए भी आपकी पुस्तक विशेषकर इसलिए उपयोगी है कि उसमें आपने कई सूचियाँ और अनेक नक़्शे दे दिये है, जो बहुत व्यावहारिक जान पड़ते है।"

रूसकी प्राच्य-परिषद् के प्रधान डाक्टर चर्वास्की ने जबसे यह सुना है कि राहुलजीने तिब्बतके किसी दुर्गम प्राचीन मठसे धर्मकीर्तिका 'प्रमाण-वार्तिक' नामक महान् ग्रन्थ खोज निकाला है, तब से वे भारत-वर्षकी यात्रा करनेके लिए अत्यन्त उत्सुक हो गये है और उन्होंने स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवालजीको लिखा है— "राहुलजीने धर्मकीर्तिके ग्रन्थोंका पता लगाकर उन्हें प्राप्त करनेका जो आश्चर्यजनक कार्य किया है, उसका समाचार पढकर हम लोगोंको अत्यन्त हर्ष हुआ। धर्मकीर्ति भारतवर्षके कैण्ट (Kant) थे। अबतक हमें उनके ग्रन्थोंके अनुवाद चीनी तथा तिब्बतीमें पढ़ने पडते थे, पर अब तो मूल ग्रन्थ ही मिल गया। मैं और मेरे सहायक डा० वस्ट्रीकोव भारतवर्ष पहुँचकर उन ग्रन्थोंको देखना चाहते है। कृपया विशेषज्ञोंकी एक छोटी-सी कमेटी बना लीजिए, जिसमें इन ग्रन्थोंके प्रकाशनपर विचार किया जा सके।"

यह बात ध्यान देने-योग्य है कि डा० चर्वास्की आज संसारमें भारत-शास्त्रके सर्वश्रेष्ठ विद्वान् माने जाते है। राहुलजीको इस बातका बड़ा दुःख है कि उन्हें रूसमें भ्रमण करनेकी आज्ञा नही मिली। रूसी सरकारने यह नियम बना रखा है कि वह धर्माचार्यो—पादरियों इत्यादि—को रूस आने देना तो दूर रहा, रूसमेंसे गुज़रने तक नहीं देती। राहुलजी बौद्ध-भिक्षु है, और उन्हें भी उसी कोटिका समझकर रूसी सरकारने उन्हें रूसमें उतरनेकी आज्ञा नही दी थी! जब डा० चर्वास्कीको पता लगा कि राहुलजी मास्को होते हुए निकल गये, तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ, और उन्होंने राहुलजीको पत्र लिखा—

"I frightfully shocked when I got your letter from Moscow informing that you could not stop at

that place and have been obliged to proceed immediately to Baku I had put so much hopes on our interview with you and on all the precious scientific information which could get from you about your tours in Tibet and Japan and the enormous results of finding the most precious original of those Sanskrit works, which we are obliged to study through the medium of translation! Especially magnificient is your discovery of the chapter of Praman-Vartika with Pragyakar Gupta's commentary. I am expecting the issue of this most precious work with the greatest impatience. Once more please accept the expression of my greatest sorrow for not having met you. I hope that some Kusal Karma of mine might be rewarded in future by possibility of meeting you."

—'मास्कोमें आपका पत्र मिला। यह जानकर कि आप मास्कोमें नहीं ठहर सके और फौरन् ही बाकू जानेके लिए मजबूर हुए मुझे बड़ा अफसोस लगा। मैंने आपके साथ भेंट होनेकी कितनी आशा लगा रखी थी। आपसे भेंट होनेपर मुझे आपकी तिब्बत और जापानकी यात्राओंकी कितनी ही मूल्यवान और वैज्ञानिक बातें ज्ञात होतीं। जो ग्रन्थ हमें अनुवादके द्वारा पढ़ने पड़ते हैं उनके अत्यन्त मूल्यवान मूल संस्कृत ग्रन्थोंकी खोजके विशाल परिणाम ज्ञात होते! खास तौरपर आपका 'प्रमाणवार्तिक'के अध्याय और उसपर प्रज्ञाकर गुप्तके भाष्यकी खोज [illegible] बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस अत्यन्त बहुमूल्य ग्रन्थके प्रकाशित होनेकी मैं बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आपसे भेंट न होनेके अफसोसको मैं फिर

बार फिर खेद प्रकट करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मेरे किसी 'कुशल कर्म' (पुण्य कर्म)की बदौलत भविष्यमे कभी आपके दर्शन होगे।'

अपनी पिछली तिब्बत-यात्रामें राहुलजीने कई संस्कृत-ग्रन्थोका, जो लुप्त समझे जाते थे, उद्धार किया है। धर्मकीर्ति, प्रज्ञाकर गुप्त, ज्ञानश्री, नागार्जुन, आसंग, वसुबन्धु, रत्नाकर शान्ति, रत्नकीर्ति, भव्य और गुणप्रभ नामक विद्वानोकी कीर्ति आज इस अकेले भिक्षुके कठोर तपके कारण अमर होने जा रही है! फिर भला क्यो न डाक्टर चर्वास्की उसके दर्शनको अपने 'कुशल कर्म' या पुण्योका परिणाम समझें?

अपनी इस यात्रामें राहुलजीको कितना परिश्रम करना पड़ा, इसका अनुमान पाठक इसीसे कर सकते हैं कि पचास हज़ार श्लोक तो उन्होने अपने हाथसे नक़ल किये हैं और डेढ लाख श्लोकोके फोटोग्राफ लिये हैं। इन ग्रन्थोके ठीक तौरपर सम्पादन करने और प्रकाशित करनेमे ही कई वर्ष लग जायेंगे। इस बार राहुलजी सरहपाके दोहोंके भी फोटो लेते आये हैं। ये हिन्दी दोहे सन् ८५०के लिखे हुए है। राहुलजीके अनुसन्धानने हिन्दी-कविताको २०० वर्ष और भी अधिक प्राचीन सिद्ध कर दिया है। बारहवी शताब्दीके बुद्धगयाके मन्दिरके माडलोके फोटोकी गणना इस यात्राकी सबसे मूल्यवान वस्तुओमें की जानी चाहिए।

डाक्टर चर्वास्कीने राहुलजीकी तिब्बत-यात्राके विषयमे लिखते हुए 'Fruitful result of Reverend Rahula's expedition to Tibet' (भिक्षु राहुलके तिब्बती अभियानका सफल परिणाम) इन शब्दोका प्रयोग किया था। विलायतके विद्वान् इस प्रकारकी दुर्गम यात्राओमे अनेको आदमियोको साथ ले जाते है, सहस्रों—लक्षो रुपये व्यय करते है; पर राहुलजीने जब यह यात्रा की, उनके पास कुल जमा एक सौ रुपये थे। यह है एक भिक्षुका अभियान!

भिक्षु राहुलजीके सत्साहसको देखकर हमारे मनमें एक मौलिक विचार आया है, वह यह कि यदि वे सौ-पचास हिन्दी लेखकों, कवियो और प्रचारको-

का दल बनाकर तिब्बतकी चतुर्थ यात्रा करें, तो साहित्यका बड़ा भारी हित हो। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें कितनों ही की बीचमें ही महायात्रा हो जायगी, पर जो वहाँसे जीवित लौटेंगे, वे हिन्दी-साहित्यको अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ दे सकेंगे। इस महाप्रयाणके शुभ परिणामकी कल्पना ही अत्यन्त आनन्दप्रद है। सारेका सारा नायिका-भेद हिमालयके उस पार ही बर्फमें गल जायगा और नकली छायावाद द्रौपदीकी तरह सबके पहले भूतलशायी हो जायगा। हाँ, असली छायावाद (रहस्यवाद) वहाँ युधिष्ठिरकी तरह सकुशल पहुँच सकेगा।

एमर्सनने एक जगह लिखा है—

"I doubt not the faults and vices of our literature and philosophy, their too great fineness, effeminacy and melancholy are attributable to the enervated and sickly habits of the literary class"

—मुझे इस बातमें कोई शक नहीं है कि हमारे साहित्य और दर्शनके दोष और दुर्गुण—उनकी अत्यधिक टीमटाम, उनका जनानापन और उनकी उदासी—हमारे साहित्यिकोंकी कमजोर और मरीजाना आदतोंकी बदौलत हैं।'

साहित्य-सेवियोंकी इन 'मरीजाना आदतों'का इलाज इस हिम-महायात्रासे बढ़कर और क्या हो सकता है? आशा है कि साहित्यिकोंकी आत्माको (मुश्किल तो यह है कि न तो बौद्ध लोग और न साम्यवादी ही आत्मामें विश्वास करते हैं!) इस प्रस्तावसे हिमालयी शान्ति मिलेगी।

अन्तमें नम्रतापूर्वक एक बात हमें और कहनी है। राहुलजीसे असहमत होनेपर भी हम उनके अन्ध-भक्त नहीं। इसमें क्या शक कि उनकी कार्य-पद्धतिमें हमें कुछ त्रुटियाँ दीख पड़ती हैं और वह स्वाभाविक है। उनकी कार्य-प्रणालीको देखकर यह प्रतीत होता है कि वे बहुत जल्दबाज़ हैं। 'इतने वर्षोंमें समस्त त्रिपिटक ग्रन्थोंका हिन्दी-अनुवाद तो हो जाना

चाहिए', इस प्रकारके 'पचवर्षीय कार्यक्रम (Five year plan) सोवियट रूसके आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रोंमें भले ही कारगर हो, साहित्य-क्षेत्रमे उनके अनुसार चलनेका अर्थ है Quantity (परिमाण)के लिए Quality (उत्कृष्टता)का बलिदान। उनके द्वारा अनुवादित ग्रन्थोकी भूमिकाओंमें शीघ्रताके प्रति उनका मोह देखकर आश्चर्य होता है। हमें उनकी सेवामें यह निवेदन करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है कि कृपया साहित्य-क्षेत्रमे Speed Record की भयकर प्रथाको न चलाइये। हम मानते है कि किसी प्राचीन कविने बहुत ठीक कहा था—

"कालि करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब;
पलमें प्रलय होइगी, बहुरि करैगो कब्ब!"

पर यह दोहा अन्य सासारिक आदमियोंके लिए और दुनयवी कार्यों लिए कहा गया था, भिक्षुओ तथा साहित्य-क्षेत्रके लिए नही।

भिक्षु राहुलजीके मासाहारपर अत्यधिक ज़ोर देनेको भी हम अनावश्यक और हानिकारक समझते हैं। निस्सन्देह इसमे हमे वे अपनी भूतपूर्व मूर्ति (बाबा दामोदार स्वामी वैष्णव)पर प्रहार करते हुए दीख पड़ते हैं; पर उन्हें याद रखना चाहिए कि समयकी गति मास-भक्षण के सर्वथा विरुद्ध है, और उनका इस विषयका प्रचार नये मुसलमानके अत्यधिक प्याज खानेसे अधिक महत्त्व नही रखता।

स्त्री-जातिकी अन्तर्निहित शक्तियोंके विषयमें भी भिक्षु राहुलजीके विचार हमें समयकी गतिसे कुछ पिछडे हुए-से नजर आये, और उन्हें सुनकर हमारा यह दृढ विश्वास हो गया कि बिना विवाह किये मनुष्यमें कोमल भावनाएँ पूर्ण रूपसे जाग्रत हो ही नही सकती। उपस्थित जन-समुदायकी, जिनमें ९९ फी-सदी हिन्दू होते है, कोमल भावनाओंपर कभी-कभी राहुलजी इस कठोरतासे आघात कर जाते है कि आश्चर्य और खेद हुए बिना नहीं रहता। पर हम किसी मनुष्यसे पूर्णताकी आशा करें ही क्यों?

राहुलजीमें अनेक गुण हैं, अद्भुत परिश्रम-शक्ति है, अदम्य साहस है, गम्भीर विद्वत्ता है और सबसे बढ़कर बात यह है कि वे 'गाफिल' नहीं हैं और अपनी नौजवानीमें दुनियाकी खूब सैर करते हुए हमारे साहित्य और समाजका मुख उज्ज्वल कर रहे हैं। कुल मिलाकर हिन्दी-जगत्में वे एक बेजोड़ आदमी हैं और हम सब उनपर अभिमान कर सकते हैं। उन्हें देखकर प्राचीन बौद्ध-भिक्षुओंका स्मरण हो आता है। कुमारजीव, आचार्य शाक्य श्रीभद्र और स्मृतिज्ञानके उस वंशजकी सेवामें हमारा श्रद्धापूर्ण प्रणाम!

१९३५]

श्रीराम शर्मा

"आइये, आपका परिचय अपने एक भाई और हिन्दीके सुलेखकसे करा दूं। इन्हे आप जानते है ?"

प्रताप-सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकरजी विद्यार्थीने एक टोपधारी और वन्दूक लिये हुए सज्जनकी ओर इशारा करते हुए पूछा। उस वक्त उनकी वातचीत मगरकी शिकारके वारेमें चल रही थी। मैंने कहा 'मेरा परिचय इनसे नही है' गणेशजीने उनका नाम वतलाया श्रीराम शर्मा। मैंने शिष्टाचारवश सिर्फ इतना ही कहा 'आपके दर्शन कर वडी प्रसन्नता हुई' और अपने काममें लग गया। मैंने समझा कि ये यूरोपियन प्रवृत्तिके कोई हिन्दुस्तानी साहव है और इनकी तथा हमारी मनोवृत्तिमे एक ऐसी खाई होगी ? जिसे लाँघकर गम्भीर परिचय प्राप्त करना सम्भव नही और यदि सम्भव हो भी तो उससे लाभ क्या ? शिकार खेलना तो रहा दूर मैंने तव तक वन्दूकका स्पर्श भी नही किया था ! तव मै प्रत्येक शिकारीको हृदय-हीन ही समझता था !

मेरे उपेक्षा-भावको स्वाभिमानी श्रीरामजी ताड़ गये और एक हल्की-सी मुस्कराहट उनके चेहरेपर दीख पड़ी, जो शायद व्यंगात्मक थी। यह लगभग तीस वर्ष पहलेकी वात है। श्रीरामजी उन दिनो भी वहुत अच्छा लिख लेते थे, पर उन्हे भिन्न-भिन्न नामोंसे लिखना पडता था और वे प्रताप-परिवारके तो खास आदमी थे। श्रीरामजीके स्वाभिमानको शायद कुछ धक्का लगा और मेरी उस उपेक्षाका दुष्परिणाम यह हुआ कि तीन वर्ष तक वहुत निकट—सात-आठ मीलके फ़ासिलेपर—रहते हुए भी हम लोग नही मिल सके और जव मै प० झावरमल्लजीके साथ उनके ग्रामपर गया, तव भी उन्होने कोई विशेष वातचीत नही की !

क़द मझोला, शरीर सुगठित, चेहरेपर मर्दानगी, आँखोंमे लालिमा बातचीतमें जनपदीय शब्दोका प्रयोग, चालमें दृढता और स्वभावमें अक्खड़-पन, श्रीरामजीके इस रूपमे एक पौरुषमय अदा है, निराला आकर्षण है जो उनके व्यक्तित्वको विशेषता प्रदान करता है।

पर जो भी व्यक्ति श्रीरामजीको निकटसे नही जानते, वे उनके विषयमे मेरी तरह अनेक भ्रमात्मक धारणाएँ बना लेते है! पिछले बीस वर्षोंमे मुझे श्रीरामजीके सम्पर्कमें आनेके पचासो ही अवसर मिले है और मै बिना किसी सकोचके कह सकता हूँ कि वे अत्यन्त कोमल हृदयके व्यक्ति है और उनमे कई ऐसे गुण पाये जाते है, जो अब दुर्लभ हो रहे है।

महाकवि अकबरने कहा था —

"मगर एक इल्तमास इन नौ-जवानोंसे मै करता हूँ।
खुदाके वास्ते अपने बुजुर्गोंका अदब सीखें।"

श्रीरामजी इस गये-गुजरे जमानेमें भी "बुजुर्गोंका अदब" करते है। हिन्दी जगत्में उनकी अनन्य श्रद्धाके पात्र मुख्यतया तीन व्यक्ति रहे है। आचार्य द्विवेदीजी, पद्मसिहजी और गणेशजी; और इस त्रिमूर्तिके प्रति उनकी श्रद्धा-भावना इतनी प्रबल रही है कि उस त्रिमूर्तिका प्रभाव उनके चरित्रपर ही चित्रित हो गया है। गीतामे भगवान्ने ठीक ही कहा है— "यो यत्श्रद्ध स एव स" अर्थात् जिसकी जैसी श्रद्धा होती है वैसा ही उसका स्वरूप बन जाता है। वे द्विवेदीजीकी तरह "देहाती' होनेमें अपना गौरव मानते है (दर असल "देहाती" शब्द द्विवेदीजी तथा शर्माजीके सपर्कसे अपना दोष खो बैठा है!) पद्मसिहजीकी तरह सहृदय है और यदि गणेशजीकी तरह उन्हे 'शहादत' नही मिली तो इसमें उनका कोई अपराध नही, गत १९४२के आन्दोलनमे यह गौरव उन्हे कभी भी प्राप्त हो सकता था!

इनके सिवाय एक दूसरी त्रिमूर्ति भी थी, जिनके प्रति शर्माजी अत्यन्त

श्रद्धालु है—महात्माजी, रामानन्द बाबू और दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़, और श्रीरामजीकी यह श्रद्धा खोखली नही, बिल्कुल ठोस है।

दीनबन्धुकी अन्तिम बीमारीके दिनोमे वे कलकत्तेसे प्रति सप्ताह कई-कई दिनके लिए उनकी सेवा करने शान्ति-निकेतन जाते थे और उनके अन्तिम दिनोंमें बराबर उनकी सेवामें उपस्थित होते रहे। और बड़े बाबू (श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय) को तो श्रीरामजी पितृतुल्य ही मानते रहे हैं। कई वर्षसे 'विशाल भारत'का सम्पादन वे सर्वथा निस्वार्थ भावसे करते रहे है। "बडे बाबूने जिस पत्रके कारण पच्चीस हज़ारका घाटा सहा, उसके लिए हम लोगोका कुछ कर्तव्य तो है ही" बस इसी कर्तव्य-भावनाने शर्माजीके सहस्रो घटे व्यय करा दिये हैं; और सो भी ऐसी परिस्थितिमें जब कि उन्हे अपने समयका प्रत्येक क्षण जीविका अर्जित करनेके लिए लगाना चाहिए था। और महात्माजीके प्रति भी श्रीरामजीकी जो श्रद्धा है, वह शुद्ध तथा चरम कोटिकी है। बापू-द्वारा निर्धारित कार्यक्रमके वे कायल है, और अपने समयका अधिकांश उसीकी पूर्तिमें लगाते रहते हैं।

× × ×

श्रीरामजी जन्मत ब्राह्मण होने पर भी स्वभावत. क्षत्रिय है और वृत्तिके अनुसार किसान। लेखन-कार्य उनके लिए गौण है और कभी भी उसे उन्होने प्रथम स्थान नही दिया, और आजकल तो मसिजीवियो-की उथली अनादर्शवादिता तथा छिछली व्यावसायिकतासे वे काफी उद्विग्न हो उठे हैं। जहाँ तक पत्रकार-कला और साहित्यका प्रश्न है, श्रीरामजी भूतकालमें रहते है और शायद ही किसी 'प्रगतिशील' लेखकको वे अपनी ओर आकर्षित कर सकें। प्रेम-विषयक कविताओंसे उन्हें चिढ़ हो गई है (प्रेम-पयोनिधिमें धँसना तो रहा दूर, वे उसके किनारे भी नही गये!) और कई बार उन्होने प्रेमी कवियोंसे बहुत ही बेजा सवाल किये है.—

"आपकी शादी हो गई है या नही? यदि नही तो पहले शादी

कीजिये, कविता उसके बाद"। कोई भी स्वाभिमानी लेखक इस प्रकारका उपदेश सुननेके लिए तैयार नहीं हो सकता। 'सैक्स'के विषयमें उनके विचार प्राचीनता लिये हुए है और प्रगतिशील महिलाओंसे वे उल्टे झेंपते हैं। 'क्रान्ति' शब्दके साथ खिलवाड़ करनेवालो अथवा अनैतिक उपायोंका आश्रय लेनेवालोंसे उन्हे अत्यन्त घृणा है। श्रीरामजीका यह स्वभाव ही है कि जिनसे वे प्रेम करते हैं, उनसे अत्यन्त प्रेम करते हैं और जिनसे घृणा उनसे घोर घृणा। श्रीरामजीका सर्वोत्तम मनोहर रूप उनकी मैत्रीमें ही दीख पड़ता है। वे उन अल्प-संख्यक व्यक्तियोंमें है, जो अपने मित्रोंके लिए अधिक-से-अधिक आत्मत्याग कर सकते है। आत्मविज्ञापनसे वे कोसो दूर है। उनकी परदुख-कातरता और क्रियात्मक सहानुभूतिके सैकडो ही दृष्टान्त दिये जा सकते है। हाँ, डींगकी हाँकनेवाले दम्भियोंसे उन्हे बड़ी चिढ है। कलकत्तेमें एक बार वे हमारे यहाँ ठहरे। उन दिनो श्री रायके अनुयायी—रायिष्ट युवकोंकी मीटिङ्ग अक्सर हमारे घर पर ही होती थी। श्रीरामजीने एकाध बार उनके वादविवादोंको सुना और फिर कहा "क्या फालतू छोकरे आपके यहाँ इकट्ठे होते है! इनमे से एक भी 'क्रान्ति'का अर्थ नही समझता और ये घंटो 'क्रान्ति' 'क्रान्ति' बका करते हैं।" अपने सम्मान्य अतिथियोंके विषयमें इस प्रकारकी कटु आलोचना सुननेके लिए हम बिल्कुल तैयार न थे। हमने शर्माजीसे बहस भी की। तब उन्होंने कहा "चौबेजी! कभी हम किसी असली क्रान्तिकारीसे आपका परिचय करावेंगे" और उन्होंने अपने वचनका पालन भी किया। 'आसामी बाबू' नामक क्रान्तिकारीको हमारे यहाँ भेज दिया, जो समस्त उत्तर भारतके क्रान्तिकारियोंके नेता थे!

शर्माजी सस्ती भावुकताके बहुत विरोधी है। कोई भी किसान, जिसे अन्नके दानोंके लिए पृथ्वी तथा प्रकृतिसे निरन्तर संघर्ष करना पड़ा हो और उनसे भी भयकर सरकारी मुलाजिमो और जमींदारोंसे, अपने हृदयमें निरर्थक कोमलताको आश्रय नही दे सकता। उन्होंने अपने यहाँ

टमाटर, पपीता, मटर इत्यादिकी खेती की थी। चकोतरा इत्यादि फल भी लगाये थे। दुर्भाग्यवश वहाँ कुछ बन्दर पहुंच गये। श्रीरामजीने उन्हे अपनी बन्दूकका निशाना बनाकर परम धाम भेज दिया! पन्द्रह वर्ष पहले एक बार उनके साथ उनके ग्राममें टहल रहा था। पीपलके एक ऊँचे पेडको बतलाते हुए आप बोले "कुछ दिन पहले यहाँ एक 'ज्ञानगुनसागर' आ गये थे और वे इस पीपलके सबसे ऊँचे भाग पर जा विराजे। मैं उन दिनो टाइफाइडसे बहुत कमजोर हो गया था, फिर भी धीरे-धीरे यहाँ आया, निशाना लिया और वे महाशय टपक पड़े! खेतमें उन्हे गाड़ दिया। बहुत अच्छी खाद बन गई"।

मेरे मुंहसे निकल गया "बड़े हिंसक है आप!" श्रीरामजी बोले 'किसानों-के लिए इस प्रकारकी हिंसा क्षम्य ही नही, अनिवार्य भी है। या तो फिर हमी लोग पपीते और टमाटर खालें या फिर बन्दर! कौन खावे? आप ही फैसला कीजिये' मै इस प्रश्नका कोई उत्तर न दे सका। सन् १९४७ मे जब 'हरिजन'मे महात्माजीने भी बन्दरोंके मारे जानेका समर्थन किया, तब मुझे शर्माजीका बारह वर्ष पहलेका सवाल याद आ गया! अभी कुछ दिन पहले आपसे एक महानुभावने कहा—हमारे आम तो सबके सब बन्दर खा जाते है! क्या किया जाय?' श्रीरामजीने कहा "आमोकी रक्षा हो सकती है। उपाय हम कर देंगे। पचास फीसदी आम हमारे!" वे महाशय राजी हो गये। श्रीरामजीने जो उपाय किया, उसे बतलानेकी जरूरत नहीं! मालूम नही कि उन महाशयने अपनी ओरसे शर्तका पालन किया या नहीं! जब श्रीरामजी अपने ग्राम जाते है तो कितने ही किसान कृषि-विनाशक जन्तुओंकी अन्त्येष्टि करनेके लिए उनसे आग्रह करते है। अभी उस दिन उन्होने कहा "ज्यादा वक्त तो हमारे पास था नही, फिर भी तीन नीलगाय बुनक दी!" नीलगाय (जो वस्तुतः गाय नही होती) खेतीका बेहद नुकसान करती है और स्वर्गीय महावीरप्रसादजी द्विवेदी भी उनके विनाशके घोर पक्षपाती थे। द्विवेदीजी

श्रीरामजीकी व्यावहारिक किसानबुद्धिसे बहुत प्रसन्न हुए थे। अभी कुछ दिन पूर्व रेलसे चोरी करनेवाले कुछ भ्रष्टाचारियोंकी खासी मरम्मत आपके ग्रामके निकट हो गई थी! इससे प्रतीत होता है कि श्रीरामजीके गाँववालोंने उनसे कुछ सीख लिया है!

कुछ वर्ष पहले एक महानुभावने हमें एक मनोरंजक घटना सुनाई। 'हमने अपने गाँवके लिए इक्का किया ही था कि इतनेमें दरोगाजीके सिपाहीने इक्के वालेको डाटते हुए कहा 'कहाँ जाता है? चल बे! दरोगाजीने बुलाया है।' इक्केवाला होशियार था, प्रत्युत्पन्नमति था। तुरन्त बोला, 'मुझे चलनेमें कोई एतराज नहीं, पर पंडितजीके गाँव किधरसे जा रहा हूँ।' सिपाही झेंपकर बोला 'तो जा, रहने दे'। इक्केवाला अपनी सूझके कारण बेगारसे बच गया! इस प्रकार शर्माजीके दृढ़ व्यक्तित्वने न जाने कितने गाँववालोंको सरकारी अनाचारोंसे बचाया है।

× × ×

पशु, पक्षी, वन, पर्वत, खेत और खलिहान, चन्दा चमार और गोविन्दा अहीर तथा पीताम्बर धोबी, इन सबके साथ श्रीरामजीकी गहरी दोस्ती है और इन्हींके द्वारा उनकी भाषा-शैलीका निर्माण हुआ है। उन्होंने अपने जीवनसे शिक्षा पाई है और वही वास्तविक शिक्षा है, और अनेक बार उन्होंने अपने खूनसे लिखा है, इसी कारण उनकी लेखनशैलीमें सजीवता है। स्वर्गीय पंडित पद्मसिंहजी शर्माने श्रीरामजीके लेखों पर मुग्ध होकर लिखा था—

"श्रीराम शर्मा प्रसिद्ध और सिद्ध अचूक निशाना लगानेवाले शिकारी हैं, आपके लेखोंका निशाना भी सीधा पाठकोंके हृदयों पर जाकर बैठता है—पढनेवाला लोट-पोट हो जाता है आप लेखोंमें शिकार [वध्यपशु] और शिकारीकी चित्तवृत्तिका ऐसा जीता जागता चित्र खींचते हैं कि देखकर सहृदय पाठक आश्चर्य चकित रह जाता है—लेखककी कलम चूमनेको जी चाहता है। आपकी वर्णन-शैली बड़ी सजीव, भाव-विदने-

षण मनो-विज्ञान-सम्मत और भाषा विषयके अनुरूप बड़ी सुघड़ होती है।"

पर सबसे बढ़िया प्रमाणपत्र श्रीरामजीको , स्व० आचार्य द्विवेदीजीसे मिला था, जब हम लोगोंने साथ-साथ दौलतपुरकी तीर्थयात्रा की थी। द्विवेदीजीने एक दिन हमसे कहा "चौबेजी, तुम भाषा लिखना श्रीरामजीसे सीख लो।" श्रीरामजी इस बातसे बहुत सकुचा गये और फिर हमसे बोले "कहीं इस बातको छाप न देना।" हिन्दीके युग-निर्माता द्विवेदीजी तथा अद्वितीय शैलीकार पद्मसिंहजीके इन कथनोंके बाद श्रीरामजीकी भाषा-शैलीके विषयमें कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती।

× × ×

यह बात ध्यान देने योग्य है कि श्रीरामजी अपनेको कोई बहुत अच्छा शिकारी नहीं मानते, बल्कि "शिकारी लेखक" नाम भी उनको अप्रिय है; क्योंकि उससे यह ध्वनि निकलती है कि उनकी वृत्ति ही शिकार खेलनेकी है, जो सर्वथा असत्य है। कहते हैं कि जब लेनिन काम करते-करते बहुत थक जाता था तो अपना स्वास्थ्य लाभ करनेके लिए शिकार खेलने चला जाता था और वहाँसे चित्तकी एकाग्रता तथा शारीरिक परिश्रमके कारण तन्दुरुस्त होकर लौटता था। कम्यूनिस्टोंके घोर विरोधी होते हुए भी श्रीरामजी इस विषयमें आचार्य लेनिनके अनुयायी है—

"भाग्य-भँवरके थपेड़ोंसे व्याकुल, शरीरसे क्लान्त और सम्बन्धियों तथा मित्रोंसे त्याज्य—एक प्रकारसे उपेक्षित और भुलाया हुआ—मैं कष्टोंके रसातलकी ओर धीरे-धीरे सरक रहा था। अधपके आम की तरह भीतर-ही-भीतर घुला जाता था। पर युद्ध करनेकी प्रवृत्ति अथवा भगवान्की प्रेरणासे दृष्टि सर्वदा आशा प्रभातकी ओर रही है, इसलिए डेढ वर्ष उपरान्त उस अन्धकार कालमें एक आशा किरण दिखाई पड़ी और सबसे पहले मैंने शिकार खेलनेका प्रोग्राम बनाया और वह भी सात आठ दिनके लिए।"

शिकार एक बहुत ही खर्चीला व्यसन है और श्रीरामजी-जैसे साधारण स्थितिके व्यक्तिके लिए यह कभी भी सम्भव नहीं रहा कि वह उसे स्वीकार कर सके।

"गृहस्थी-भार-श्रृङ्खलासे जकड़े और चिन्ता-चितापर जलते व्यक्तिको किसी प्रकार वर्षमें दो-चार दिन मन-बहलाव और प्रकृति-दर्शनके लिए मिल जायें—और उन दिनो वह घर-द्वारको भूल सके—तो उसे भाग्य-शाली समझना चाहिए। मेरी गणना ऐसे ही भाग्यशाली व्यक्तियोमें की जा सकती है।"

साधन-सम्पन्न शिकारी व्यक्ति श्रीरामजीसे और श्रीरामजी उनसे ईर्षा करते है! उनके पास ठीक निशाना लगानेवाली लेखशैली नहीं और इनके पास फालतू कारतूस तथा उच्च कोटिकी बन्दूक नहीं!

जब हमारे अधिकाश लेखक नगरोकी सकरी गलियोमे ही चक्कर लगाया करते है, गल्पो तथा उपन्यासोमे इधर सुकुमार बालिकाएँ अपने प्रेमी युवकोका स्मरण करती हुई सूखती जाती है और उधर विरही प्रेमियोकी हृत्तन्त्रीके तार टूटते हुए सुनाई पडते है, तब मानो श्रीरामजी उनसे कहते है—

"आप भी कहाँ भटक रहे है! छोडिये उन चिराभ्यस्त कूचो और गलियोको और मेरे साथ कुछ वन्य प्रकृतिका भी अनुभव कीजिये—वहाँ स्वतन्त्र आकाशके नीचे मुक्त पवनके साथ विचरण कीजिये।"

हम उन दिनोकी याद कभी नहीं भूल सकते जब कि उनके एक-से-एक बढिया लेख हमें 'विशाल भारत' में छापनेके लिए मिलते थे। उनके शिकार-सप्ताहके वर्णन ने जमनाके कछारोकी जो सैर कराई वह भी हमारे लिए स्मरणीय रहेगी।

उनके लेखोमे कहीं आप चन्दा चमारको लगोटा पहने, नगे शरीर और नगे पैर जेठकी दुपहरीमे कबड़ खोदते हुए पावेगे तो कहीं हसीम

पीताम्वरको (जो जातिका वोवी था, विल्कुल वेपढा!) अपने इलाजसे सैकड़ो पशुओकी जान वचाते हुए देखेंगे। कभी वे आपको टिहरी-मसूरी सड़कके जंगलो और झाड़ियोकी सैर करावेगे तो कभी उस भिलगना नदीका दृश्य दिखलावेंगे, जिसके तटपर स्वामी रामतीर्थने अपना शरीर त्याग किया था। उनके शिकारके कितने ही वृत्तान्तोको पढकर रोमाच हो आता है। कही आप उनकी रानपर सुअरकी कॉपें पडती हुई देखेंगे, उन्हे कराहते हुए सुनेंगे और खूनके परनाले वहते हुए दृष्टिगोचर होगे तो कही वे वाघसे वाल-वाल वचते हुए दीख पडेंगे। जव विशाल भारतमें उनके लिखे रोमाचकारी वृत्तान्त छपे थे तो कई व्यक्तियोने हमसे पूछा था—क्या श्रीरामजी सचमुच वाघका शिकार करते है, या यो ही किस्से गढ़ देते है?" इस प्रश्नको सुनकर हमें खेद हुआ था। वात वास्तवमें यह थी कि उन दिनो शिकार-साहित्यकी हमारे यहाँ वहुत ही कमी थी, और वह कमी अव भी ज्यो-की-त्यो विद्यमान है, यद्यपि एकाध लेख इस विपयपर कभी-कभी निकल जाता है। स्वयं अपनी तथा देशकी परिस्थितियोने श्रीरामजीको इधर कई वर्पोसे शहरमें रहनेके लिए मजवूर कर दिया है और इसे हम दुर्भाग्य ही मानते है कि देशके स्वाधीन होनेपर भी श्रीरामजीके जीवन-सघर्पमें किसी भी प्रकारकी कमी नही हुई। वे मर्द आदमी है और अपने कष्टोका किसीसे जिक्र भी नही करते। ग्राम्य जीवनसे प्राप्त अपनी शारीरिक शक्ति तथा आत्मिक दृढता से ही वे घोर-से-घोर गार्हस्थिक दुर्घटनाओमें अविचलित रहे हैं। सन् १९४२ के आन्दोलनमें आप, आपके वड़े भाई, पुत्र और पुत्री सभी जेलमें ठेल दिये गये थे और तत्पश्चात् दो वच्चोकी मृत्यु ही हो गई—एक तीन वर्पका था और दूसरा दस वर्पका। आज ऐसे-ऐसे व्यक्ति हमारे शासक वन गये है जिनका त्याग श्रीरामजीके वलिदानका सहस्रांश भी नही है और जिनमें श्रीरामजीकी योग्यताका शताश भी नहीं, पर श्रीरामजीने अपने वारेमें कभी चिन्ता नही की। त्यागकी हुडी भुनानेवालोमें वे नही हैं।

एक बात हमें ईमानदारीके साथ कहनी पड़ेगी कि कई वर्षसे श्रीरामजीकी साहित्यिकतामें निरन्तर कमी होती जा रही है और इसे हम हिन्दी-साहित्य-क्षेत्रका दुर्भाग्य ही मानते हैं। गनीमत यही है कि उनकी साहित्यिक कलाके क्षीण होनेके साथ-ही-साथ उनकी जीवन कलाका उत्तरोत्तर विकास ही होता जाता है।

श्रीरामजीके पैर प्रारम्भसे ही ठोस जमीन पर रहे हैं और अब वे अपनेको सुदृढ़ चट्टान पर खड़ा हुआ पाते हैं। 'अधिक अन्न उपजाओ' और 'वृक्षारोपण' इत्यादिका कार्यक्रम उन्होंने शायद बीस वर्ष पहले ही प्रारम्भ कर दिया था और यदि उनको साधन और सुविधाएँ मिलें तो वे किसी भी बड़े-से-बड़े प्रान्तको और भी धनधान्य समृद्ध बनानेकी सामर्थ्य रखते हैं। श्रीरामजीका शासनमें विश्वास है; (पर उत्तर प्रदेशके शासकोंका आपमें विश्वास नहीं!) आजकल आप आगरा वितान-समितिके प्रधान हैं और उसीमें तन्मय! उनसे आप बात करें तो वे कभी हिसारकी गायोंकी चर्चा करेंगे तो कभी आलुओंकी फसलकी। कभी खादका जिक्र आवेगा तो कभी साग-तरकारीका। जानवरोंको अच्छा चारा कैसे मिले, गोवंशकी उन्नति कैसे हो, आगरा रेगिस्तान बननेसे कैसे रोका जाय, पशु-प्रदर्शिनीका प्रबन्ध कहाँ किया जाय, पौधोंकी नर्सरी कहाँ-कहाँ लगाई जायें, बस अब यही प्रश्न उनके दिमागमें चक्कर काटा करते हैं। हम उनसे पत्रकारोंकी दुर्दशाका वृत्तान्त कह रहे थे; पर वे हमें बतला रहे थे कि इतने-इतने बड़े, इतने हजार मन आलू हमारे जिलेमें हुए। श्रमजीवी पत्रकार भले ही सूख कर छुआरा बन जायें, इसकी उन्हें कोई चिन्ता नहीं—वे श्रमजीवी पत्रकार संगठनके भी कायल नहीं—उन्हें चिन्ता इस बातकी है कि हिसारसे जो साठ गायें वे लाने-वाले हैं, उन्हें यथोचित ढंग से कैसे वितरित किया जाय!

अभी उस दिन हम लोग साथ-साथ टहल रहे थे। मेरे मुँहसे एक वाक्य निकल गया "आजकल साहित्यके लिए सर्वथा समर्पित आत्माएं

नहीं दीख पड़ती।" श्रीरामजीने गहरी दृष्टिसे मेरी ओर देखा [मानो वे मेरे पक्षके खोखलेपनको माँप रहे हों] और बोले—

"चौबेजी, मध्यकालीन युगके तुलसी और कबीरको छोड़कर आप क्या एक भी साहित्यसेवीका दृष्टान्त ऐसा दे सकते हैं, जिसने भूखे रहकर अमर साहित्यकी रचना की हो?"

श्रीरामजी जिस उच्च कोटिकी तराजू पर साहित्यिकोंको तोलना चाहते है, उस पर तो अधिकांश हलके ही साबित होंगे। श्रीरामजीकी साहित्यिकताके ह्रासका एक कारण यह भी है कि अपनेसे योग्यतर साहित्यिकों या पत्रकारोंका संपर्क उनके लिए अप्राप्य है, जिनसे उन्हें कुछ प्रोत्साहन मिल सकता। और जो उनसे निचले दर्जेके हैं, उन्हें वे अपने बहुधंधीपनके कारण प्रोत्साहित नहीं कर सकते। कठिनाई यही है कि रामानन्द बाबू और सी० वाई० चिन्तामणिका अवतार इस देशमें बहुत वर्षो बाद होगा और बेल्सफोर्ड-जैसे पत्रकारके उत्पन्न होनेमें अभी देर है!

हर्षकी बात है कि श्रीरामजी शहरको छोड़कर, ग्रामजीवनको फिर अपनानेका निश्चय कर चुके हैं और फीरोजाबादसे (जिसे वे चूड़ी नगर कहते हैं) छ मील दूर अपनी कुटीका निर्माण कर रहे हैं। यह समाचार आस-पासके भेड़ियोंके लिए (निकटस्थ जंगली भेड़ियोंके लिए और फीरोजाबादके शहरी 'भ्रष्टाचारी-भेड़ियों'के लिए भी) अत्यन्त अशुभ है! श्रीरामजीका सारा क्रोध अब नष्टप्राय जमींदारी प्रथासे उतर कर औद्योगिकतापर आ गया है और यदि उनको कहीं अहिंसात्मक तोपें मिल जायें तो वे हमारे नगर (फीरोजाबाद)को धराशायी किये बिना न मानें!

हमें दृढ विश्वास है कि ग्राम्य-जीवनसे श्रीरामजीका खोया हुआ साहित्यिक यौवन पुनः लौट आवेगा और राजनैतिक रेगिस्तानसे निकल कर वे साहित्योपवनका निर्माण करेंगे। सार्वजनिक रूपसे हम श्रीराम-

जीको यह बतला देना चाहते हैं कि हम लोग छोटे-छोटे आलुओंसे ही सन्तोष कर लेंगे। यदि श्रीरामजी हमें 'गंगाका जीवन चरित' लिख दें और 'बोलती प्रतिमा'-जैसे दस-बीस रेखा-चित्र। दीर्घकाय आलू उगानेवाले कृषि-विशेषज्ञोंकी हमारे यहाँ कमी नहीं, पर 'बोलती प्रतिमा' और गंगा-मैयाकी जीवनी लिखनेवाले अत्यन्त दुर्लभ हैं।

जुलाई '५०]

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

"क्या यह सच है कि किसी पडोसिनने आपकी माताजीके पास अचार डालनेके लिए कच्चे आम भेजे थे और श्रद्धेय माताजीको फिक्र हो गई थी कि नमक खरीदनेके लिए घरमें पैसा नही, अचार कैसे पड़ेगा ?" मैं धृष्ठतापूर्वक माननीय श्रीनिवास शास्त्रीसे पूछ बैठा। निशाना ठीक-ठिकाने बैठा था। सहृदय शास्त्रीजीके नेत्रोंके कोने सजल हो गये, पर वह तुरन्त ही सँभल गये और उन्होंने बड़े प्रेमपूर्वक कोमल स्वरमें कहा—

"हाँ, वह घटना बिल्कुल सत्य है। नमक-करके विरुद्ध भाषण देते हुए मैंने कौंसिलमें यह बात कही थी। सर० पी० सी० राय इस घटनासे इतने प्रभावित हुए कि जब मैं कलकत्ते पहुँचा तो उन्होंने मुझे हृदयसे लगाकर कहा—"शाबाश शास्त्री! तुम्ही अपनी गरीबीका ऐसा स्पष्ट वर्णन कर सकते थे।" .

अन्त:करणसे मैंने भी शास्त्रीजीकी माताका अभिनन्दन किया।

शास्त्रीजीकी माताजीकी एक समानशीला छोटी बहन ग्राम भयाना शुजालपुर (ग्वालियर)में रहती थी। उनके पूज्य पति पक्के वैष्णव थे और "भोजनाच्छादने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवा:" मन्त्रके कट्टर उपासक! वही एक गोशालामें आजसे पचास-बावन वर्ष पहले एक बालकने जन्म लिया था। यदि आज 'नवीन'जीमे अलल-बछेड़ो-जैसा कुछ नटखटपन पाया जाता है तो उसमे उनका कुछ भी अपराध नही! वह तो उनके जन्म-स्थानकी महिमाको ही प्रकट करता है। खुद नवीनजीके ही शब्दोको सुन लीजिये—

"मेरी माताजी कहा करती है कि गायोंके बाँधनेका एक बाड़ा मेरे ताऊजीके घरमें था। उसीमें अपने रामने जन्म लिया। वहाँ कई गायोने

बछड़े ब्याये होंगे। मेरी जननीने उसी गोशालामें मुझे भी जना। ..
मेरे पिता बहुत गरीब थे—नि साधन, किन्तु भगवद्भक्त ब्राह्मण। अत
जन्मके वक्त सिवा थाली बजनेके कुछ धूमधाम न हुई। गाँवका सादा
जीवन, गरीबी और अर्थाभाव मेरे चिरपरिचित मित्र हैं। . मेरे
परिवारके लोग चार आने महीनेके मकानमें रहते थे, फिर शायद आठ
आने महीनेकेमें रहने लगे। बरसातमें मकान टपकता था। रात-
भर सोना दूभर था। मैं खूब खाता था। कुछ दूधकी भी जरूरत महसूस
होती थी, पर दूधके लिए पैसे कहाँसे आयें? तब माताजीने अनाज
पीसना शुरू किया। इससे जो पैसे मिलते थे, उससे मैं दूध पीता था।"

अभी साल-डेढ़साल पहले वह सती-साध्वी तपस्विनी माता इस
संसारसे चल बसी और अवश्य ही वह उस लोकको गई होगी, जो ऐसी
माताओंके लिए ही सुरक्षित है। यदि भारतवर्ष आज भी जीवित तथा
जाग्रत है तो वह शास्त्रीजी और नवीनजीकी माताओं और उनकी बहनोंके
कारण ही।

नवीनजी लिखते हैं—"कपड़ोंकी ऐसी कोई इफरात नहीं रहती
थी। पैबन्द लगे कपड़े पहनना और सालमें सिर्फ दो धोतियोंपर गुज़र
करना एक मामूली और बिल्कुल स्वाभाविक बात थी।"

और हमें फिर माननीय शास्त्रीजीके जीवनकी एक घटना याद आ
रही है। जब शास्त्रीजी अन्नामलाई विश्व-विद्यालयके उप-कुलपति
हो गये तो वह विद्यार्थियोंपर किये हुए जुर्माने निरन्तर माफ कर दिया
करते थे। एक बार सब प्रोफेसर उनके पास गये और बोले—"देखिये,
आपकी क्षमाशीलताके परिणामस्वरूप हमारे कालेजका सारा अनुशासन ही
नष्ट हुआ जा रहा है। हम नियंत्रण रखनेके लिए जुर्माने करते हैं और
आप उन्हें माफ कर देते हैं।"

इसपर शास्त्रीजीने उत्तर दिया—"असली बात यह है कि ये जुर्माने
मुझे अपनी छात्रावस्थाकी एक घटनाकी याद दिला देते हैं। एक बार

एक शिक्षक महोदयने मुझे क्लासमें डाटते हुए कहा—"शास्त्री, तुम्हारे कपड़े साफ क्यों नहीं ? जाओ, तुमपर आठ आने जुर्माने किये गये।" उस समय आँखोंमें आँसू भरे हुए मैं क्लाससे बाहर आया और सोचने लगा, साबुनके लिए एक आना तो माताजीके पास है नहीं, अठन्नी कहाँसे लायेगी ? सो जनाब ! आप लोग जो जुर्माने करते हैं, वे प्राय: गरीब माता-पिताओंको भुगतने पड़ते हैं !"

हमें यहाँ शास्त्रीजी तथा नवीनजीकी तुलना नहीं करनी है, यद्यपि अनुपम सहृदयता तथा सम्मोहक भाषण-शक्ति दोनोंमें समान हैं। हमारा कथन केवल इतना ही है कि ये दोनों ही 'धरतीके पूत' हैं।

राजनैतिक नवीनजीसे हमारा बिल्कुल परिचय नहीं, पर साहित्यिक नवीनजीको हम तीस-तीस वर्षसे जानते हैं। सम्भवत: अक्तूबर सन् १९१७में 'प्रताप' कार्यालयमें श्रद्धेय गणेशजीने उनका सूक्ष्म-सा परिचय दिया था, पर व्यर्थाभिमानवश हमने उस विद्यार्थीकी, जो क्राइस्ट चर्च कालेजमें एफ० ए०में पढ़ता था, बिल्कुल उपेक्षा ही की थी। और 'प्रताप'-कार्यालयमें ही उससे अधिक उपेक्षा की थी, एक बन्दूकधारी अन्य युवककी, जिसे लोग आज श्रीराम शर्मा कहते हैं ! कहाँ राजकुमार कालेजका ख्याति-प्राप्त प्रोफेसर और कहाँ ये दोनो देहाती रंगरूट ! हम भी उन दिनो अपनेको कुछ समझते थे और स्वभावत: अपने अभिमानमें मस्त रहे। अपनी उस भूलका दुष्परिणाम हमें पिछले वर्षोंमें काफ़ी भुगतना पड़ा है। यदि कोई पाठक उन हुक्मनामो, फ़रमानो और फटकारोंको पढ़े, जो इन दोनों महानुभावोंसे हमें समय-समयपर मिलते रहते हैं तो वह हमें अव्वल नम्बरका फ़ालतू आदमी समझेगा। "तुमने यह नहीं किया, वह नहीं किया, तुम प्रमादी हो, वक्त बर्बाद करते हो" आदि-आदि अजीबोग़रीब उपदेश हमें समय-समयपर मिला करते हैं !

'प्रताप'-परिवारके सदस्य होनेके कारण नवीनजीकी रचनाओंसे हम प्रारम्भसे ही परिचित रहे और तभीसे प्रशंसक भी। जब कभी स्व०

पद्मसिंहजी शर्माका लेख या नवीनजीकी कविता 'विशाल भारत'में आ जाती तो उस दिन एक उत्सव-सा हो जाता और स्वर्गीय ब्रजमोहनजी वर्माके उत्साहका क्या कहना! स्पेशल चाय आर्डर की जाती। उन्हीं दिनों मुझे यह बात सूझी कि नवीनजीकी कविताओंका संग्रह किया जाय। पर एक अन्य बन्धु, श्री सूर्यनारायण सक्सेना, हमसे भी अधिक नवीन-जीकी रचनाओंके प्रेमी थे। उन तक खबर पहुँची तो उन्होंने हमें लिखा—"हैंड्स आफ नवीनजी" (नवीनजीपर हाथ न रखिये), पर उनका यह आदेश बिल्कुल अनावश्यक था। साँडोंसे खेती कराना जितना कठिन है, नवीनजीसे कोई साहित्यिक कार्य लेना उससे भी ज्यादा मुश्किल।

एक दिन 'प्रताप' कार्यालयमें हमने बहुत ज़िद की तो बड़ी गम्भीरतासे बोले—"सब संग्रह बिल्कुल तैयार है; बढ़िया कागज़का—फैदरवेट पेपरका—आर्डर फ्रांस भेजा था, सो वहाँकी गवर्मेण्ट ही फेल हो गई। अब जब वहाँ स्थायी मन्त्रिमण्डल बने, तब तुम्हारे मनोनीत काव्य-संग्रह के लिए कागज़ आवे।"

मैंने पूछा—"क्या कागज़के प्रश्नपर ही फरासीसी मन्त्रिमण्डल टूट गया है?"

नवीनजीने कहा—"और क्या?"

ऐसा प्रतीत होता है कि निम्नलिखित चार घटनाएँ एक साथ ही—शायद सन् १९५०में—घटेंगी —

(१) नौ मन तेलका एकत्रीकरण, (२) राधाका नृत्य, (३) स्थायी फ्रेंच सरकारकी स्थापना और (४) नवीनजीके गद्य-पद्य ग्रन्थोंका प्रकाशन।

हाँ, एक बार किसी शुभ मुहूर्तमें कुंकुम अवश्य प्रकाशित हो गया था और उसमें नवीनजीने बड़ी चालाकीसे काम लिया था—यानी अपनी सर्वोत्तम रचनाएँ उसमें प्रायः नहीं ही आने दीं। शायद उनका लेखा-जोखा ही उन्होंने नहीं रखा।

362

पर नवीनजीके भक्त इतने मूर्ख नहीं है, जितना उन्होंने समझ रखा था। सुनिये, एक जोगी महाराज क्या फरमाते हैं :

"ओ मेरे प्राणोंकी पुतली !
आज जरा कुछ कह लेने दो,
यह प्रवाह कुछ तो बहने दो।
संयम ? मेरी प्राण, जरा तो—
आज असयम में बहने दो ?
जरा देर तो अपने द्वारे—
मुझ जोगीको रह लेने दो।
आज जरा कुछ कह लेने दो।'

× × ×

मेरे इन उत्सुक हाथोंको
अपने युग पद गह लेने दो।

और नवीनजीकी 'आँखकी किरकिरी'का वह अनुपम चित्रण !—

अरी पड़ गई है कँकरी-सी मेरी आँखोंमें रानी,
बहता ही आता है रह-रह, देखो बूँद-बूँद पानी,
कंकराहट है, अकुलाहट है, नैनोंमें सुर्खी भी है;
आशा है, तृष्णा है, विष है, आँखोंमें है नादानी।
अपर निशाके अर्धचन्द्र-सी,
मम तममय मन-अम्बरमें
चिन्तन-क्षितिज ओटमें
प्रकटो, झलको मम दृग-निर्झरमें
चकित, थकित, अति मथित,
व्यथित है हृदय-सिन्धु जलराशि प्रिये !
आवाहन हो रहा निरन्तर,
हहर-घहरते सागरमें।"

वह देखिये, कानपुरसे इलाहाबाद जाते हुए रेलमें ही नवीनजी कोई चीज लिख रहे हैं—

'आज तुम्हारी आँखोंमें
आँसू देखे, तड़पन देखी,
अमित चाह देखी, रिस देखी,
लोक-लाज, अडचन देखी,
आज तुम्हारे नयन-पुटोंमें
सपनोंको जगते देखा,
आज अचानक सजनि, तुम्हारे
हियकी नव धडकन देखी।
आज पान देते ही देते,
छलका नयनोंसे पानी;
देख तुम्हारी यह आतुरता,
मेरी मति गति अकुलानी,
मेरे धीरजकी भी कोई,
सीमा है कुछ सोचो तो!
देख अश्रु तो भड़क उठेगी,
मेरी भावुक नादानी।

यदि नवीनजीसे इस विषयमें कोई अधिक पूछताछ करे तो वह कह देंगे—

"रहने दो उनकी सस्मृतियाँ,
बडी विकट, तूफानी हैं।
उनके सभी अथकहे जुमले,
गहरे हैं, तूमानी हैं।'

सुना है कि एक बार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने नवीनजीसे पूछा—"क्योंजी, यह तुम्हारी सजनी, सानी सानी

प्राण, यह है कौन ? ज़रा बताओ तो।"

नवीनजीने तनिक ढिठाईसे लेकिन कुछ झेंपते हुए उनसे बैसवाड़ीमें कहा—"अब आप बूढ़ भयौ, अब इनका परिचय पूछिके का करिहौ ?"

× × ×

अगर वर्तमान भारत सरकारमें कुछ भी साहित्यिक कल्पना-शक्ति होती तो वह नवीनजीको जेलमें बन्द कर देती और यह कहती, "जब आप 'गणेशजीके साथ पन्द्रह वर्ष' लिखकर हमें देंगे और सौ दो सौ ब्रिटिश जेलोंकी तरहकी बढ़िया कविताएँ, तब आपका छुटकारा होगा !"

धन्यवाद है ब्रिटिश गवर्नमेंटको कि उसने अलीगढ़ जेलमें नवीनजीसे यह 'आरती' लिखवा ली—

सखी, मँजोती हूँ जब दीपक,
तब होती गुदगुदी हियेमें,
बाँह झटक देते हैं वह, जब
भरती हूँ मैं तेल दियेमें।
'हटो दूर' जब कहती हूँ तो,
और पास वह आ जाते हैं,
मुझे खीजती देख हुलसते,
वह नयनोंसे मुसकाते हैं।

इनका यह 'विप्लव गायन' तो हिन्दी साहित्याकाशको गुंजारित कर चुका है—

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाये,
एक हिलोर इधरसे आये,
एक हिलोर उधरसे आये,

प्राणोंके लाले पड़ जायें,
त्राहि-त्राहि! रव नभमें छाये
नाश और सत्यानाशोंका
धुँआधार नभमें छा जाये।

ऐसा प्रतीत होता है कि कविकी यह भविष्यवाणी कहीं सत्य ही न सिद्ध हो जाय! पर एक बार तो वह बिल्कुल असत्य सिद्ध हो चुकी है!

कुछ ऐसा ही-सा विधान है
मेरे इस लघुजीवनका,
कि बस नहीं मिलनेका मुझको
चिरसंगी मेरे मनका।

यदि हमारे कथनमें किसीको आशंका हो तो उसे ५ नं० विंडसर प्लेस, नई दिल्लीमें हमारे कथनका साक्षात् प्रमाण मिल सकता है। विंडसर नामकी महिमा अपरम्पार है!

यद्यपि हमें नवीनजीका यही प्रेमी रूप प्रिय है, तथापि उनका एक वीर रूप भी है और जनताके लिए वही मुख्य है। क्या ही गम्भीर ध्वनिसे वह कहते हैं—

आज खड्गकी धार कुण्ठिता है,
खाली तूणीर हुआ,
विजय-पताका झुकी हुई है
लक्ष्यभ्रष्ट यह तीर हुआ।

स्वाधीनता-युद्धके वीर सेनानीकी इस मर्मस्पर्शी वेदनाको उन दिनों जिसने पढ़ा था, नवीनजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। ऐसी दो-चार कविताएँ भी किसी कविको अमर बना सकती हैं, पर चूंकि नवीनजीके उस चिरपरिचित क्षेत्रमें जानेका सौभाग्य हमें कभी प्राप्त नहीं हुआ इसलिए हम उन रचनाओंका उचित मूल्यांकन नहीं कर सकते। पर जब नवीनजी कहते हैं—

यों ही इस सूने जीवनमें,
संग मिला है कभी-कभी,
किन्तु अचिर ही रहे हृदयके
मेरे ग्राहकवर्ग सभी,
कुछ क्रीडा-सी करते आये,
कुछ शरमाये, कुछ मचले,
एक मधुर सौदा तो देखो,
टूट चुका है अभी-अभी।

तो उनके इस व्यापारसे हृदयमें कुछ गुदगुदी-सी हो जाती है !

हमारी प्रिय कविताओंमे उनकी 'धरतीके पूत' नामक कविता अग्रगण्य है और जब कभी नवीनजीको हम अपनी कल्पना शक्ति द्वारा उषाकालकी चायपर बुलाते हैं तो उनसे वही कविता सुनते हैं—

तुम पृथ्वीके सुवन, अरे तुम,
औ, मृत्तिका-प्रसूत निरे,
तुम खेतों-खलिहानोंके सुत,
तुम धरतीके पूत निरे,
घास और कड़वी-संग शैशव-
काल बितानेवाले ओ !
तुम हो मक्का, ज्वार, चनोंके
संग-संग सम्भूत निरे।
वह नंगे पैरों नित रहना,
वह निःसाधनता प्यारी,
अपर्याप्त वे वस्त्र तुम्हारे,
वह दारिद्रय कष्टकारी,
ये तो बचपनके साथी हैं,
अबतक साथ निभाते हैं

अति दारिद्र्य दैन्य पीडाके,
तुम हो शूल-मुकुट-धारी।

पर जब हमारी कल्पित चाय-पार्टीमें नवीनजी फर्माते हैं—

असफल जीवनमें रहे, रहे सदा श्रीहीन।
रहे न काऊ कामके, तुम अलमस्त नवीन॥

तो हमारे मुँहसे सहसा ये शब्द निकल पडते हैं—

मस्तीमें जीवन बसे, राग भरी ज्यों बीन।
सकल काम तव सफल हैं, ओ निष्काम नवीन॥

बन्धुवर हरिशंकरजी शर्मा, पालीवालजी और श्रीरामजी शर्माके साथ-साथ नवीनजी भी बडा प्रभावशाली और प्रवाहयुक्त गद्य लिखते हैं। उनके कितने ही निबन्ध हमने अपने अध्ययनके लिए रख छोड़े हैं और हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि नवीनजीके निबन्धोंका प्रकाशन साहित्य-जगत्की एक महत्त्वपूर्ण घटना होगी। देखें, किस प्रकाशकको वह सौभाग्य प्राप्त होता है! हिन्दी गद्यकी वह यौवनपूर्ण शैली अभी तो यत्रतत्र बिखरी पड़ी है।

नवीनजीके पत्र-लेखकके रूपको सर्वथा गोपनीय रखना ही ठीक होगा। उनके पत्रोंमें सहज स्वाभाविकता है, कृत्रिमताका नामोनिशान नहीं पर दुर्भाग्यवश वे अन्तर्राष्ट्रिय भाषामें हैं और उनमें ऐसी ऊटपटांग बातें भरी हैं कि क्या कहना!

उनकी भाषण-शक्तिके विषयमें हम इतना ही कहेंगे कि गोरखपुर-सम्मेलनपर हमें उसका बहुत कटु अनुभव हुआ। इस ख्यालसे कि घासलेट-विरोधी प्रस्ताव पर कुछ रंगत रहेगी, हमने उनसे कह दिया—"तुम हमारे प्रस्तावका विरोध करो तो कुछ मजा आ जाय, नहीं तो यह सर्वसम्मतिसे पास हो जायगा।" पहले तो नवीनजीने टालना चाहा, पर विशेष आग्रह करनेपर राजी हो गये और बिना किसी तैयारीके हमारे विरुद्ध ऐसा जोरदार भाषण दिया कि हमें सारा मामला उलटता हुआ नजर आता।

श्री पालीवालजी

कलकत्तेके ग्रेट ईस्टर्न होटलके एक शानदार कमरेमें अमेरिकाकी सुप्रसिद्ध पत्रिका 'एशिया'के सम्पादक मि० वाल्शसे बातचीत हो रही थी। राजनैतिक विषयोंके छिड़नेपर मि० वाल्शने कहा—"मैं साधारण जनताका दृष्टिकोण इन मामलोंपर जानना चाहता हूँ। कल ही मैं उत्तर-भारतकी ओर जा रहा हूँ। क्या किसी ऐसे नेताका नाम आप बता सकते हैं, जो Masses के भावोंको मुझे बता सके।"

तुरन्त ही हमने कहा—"आप पालीवालजीसे मिलिये।"

मि० वाल्श आगरे आये, और पालीवालजीके घरपर उनसे मिले और उनके विस्तृत राजनैतिक ज्ञान, अद्भुत क्रियात्मक बुद्धि और स्पष्ट विचारशैलीसे अत्यन्त प्रभावित हुए।

पालीवालजीके व्यक्तित्वके प्रभावका मूल कारण उनकी वह प्रबल सहज बुद्धि है, जो प्रकृतिसे युद्ध करनेवाले श्रमिकोंमें पाई जाती है, और वह स्पष्ट विचारशैली है, जिसपर कोई भी सुलझे हुए दिमागका तार्किक गर्व कर सकता है। राजनैतिक दाँव-पेंचके जिस जंगलमें वास्तविकतासे कोसों दूर रहनेवाले शहरी नेता आसानीसे उलझ जाते हैं, वहाँ पालीवालजीकी ग्रामीण सहज बुद्धि उन्हें अपना मार्ग स्पष्ट बतला देती है।

पुराने ढंगके किसी कांग्रेसी नेताके और पालीवालजीके व्यक्तित्वोंकी तुलना करते हुए दोनोंका अन्तर साफ मालूम हो जाता है, और नेतृत्वके क्रम-विकासकी तस्वीर आँखोंके सामने खिंच जाती है। उन दोनोंका अध्ययन 'आरामकुर्सी' और 'कंटकाकीर्ण पथ'का तुलनात्मक अध्ययन है।

भारतकी साधारण जनता किसी ऐसे नेताको नहीं चाहती, जो साहबी

इससे ऊँची स्टाइलमें रहनेवाला विचित्र जन्तु हो। वह केवल उन्हींको स्वीकार कर सकती है जो उनकी तरह रहते हों, उन्हीं-जैसा खाते-पीते हों, उन्हींमेंसे एक हो। वह 'लीडर' नहीं चाहती, बन्धु (Comrade) चाहती है, और यह कामरेडशिप या बन्धुत्व पालीवालजीमें पूर्ण मात्रामें पाया जाता है। यदि उनके साथी दो-तीन बार जेल जाते हैं तो वे छः बार, और यदि उनके साथियोंपर आर्थिक सङ्कट पड़ता है तो वे भी रूखी रोटीपर गुजर करके उनकी भरपूर सहायता करते हैं। आजसे कुछ वर्ष पहले जब इन पङ्क्तियोंका लेखक हिन्दीके एक अत्यन्त प्रतिष्ठित पत्रकारके सम्मुख पालीवालजीकी कटु आलोचना कर रहा था, उन्होंने कहा—

"पालीवालजीको आप शुष्क-हृदय समझते हैं! मैं आपको बतलाऊँ कि अपने साथियों तथा कार्यकर्ताओंके प्रति ऐसा सहृदयतापूर्ण बर्ताव बहुत कम लोग करते होंगे। आर्थिक सङ्कटके दिनोंमें मुझे उनसे कई सौ रुपयेकी मदद मिली थी, जिसका जिक्र भी उन्होंने किसीसे नहीं किया।" पालीवालजीने अपने सहयोगियोंकी जितनी आर्थिक सहायता की है, उतनी दानशीलताका दम भरनेवाले अनेक धनाढ्योंने भी न की होगी।

इस बातसे लोगोंको आश्चर्य होगा, पर है यह बिलकुल ठीक कि पालीवालजीकी कठोर प्रवृत्तिके पीछे एक अत्यन्त कोमल प्रेमी हृदय छिपा हुआ है। उनका वात्सल्यपूर्ण हार्दिक आलिंगन क्या कभी भुलाया जा सकता है? पर देशकी स्वाधीनताकी बलिवेदीपर वह निर्मोही सैनिक प्रेमकी कोमल-से-कोमल भावनाओंको भी बेखटके बलिदान कर सकता है। किसी देश-द्रोहीके लिए पालीवालजीका आलिंगन वैसा ही सिद्ध हो सकता है, जैसा धृतराष्ट्रका भीमकी मूर्तिके प्रति हुआ था, अथवा शिवाजीका अफजलखाँके लिए।

पालीवालजीका घर किसी [illegible] स्वतन्त्र सेनाका [illegible]

है, जहाँ जाते हुए हमारे-जैसे पढे-लिखे आदमीको भी डर लगता हो, गँवार किसानकी बात तो दूर रही। वह तो कार्यकर्त्ताओंका आश्रय-स्थान है, और ऐसे अवसरोपर भी, जब खुद पालीवालजीके पास खानेको पैसा नहीं था, उन्हे आठ-आठ दस-दस कार्यकर्त्ताओंके भोजनका प्रबन्ध करते हुए हमने देखा है। पालीवालजीके लिए राजनीति आरामतलबीके साथ ब्लूबुक्स (सरकारी रिपोर्ट)का अध्ययन नही है और न उनकी क्रियाशीलता अँगरेजीके Fine phrases (कोमलकान्त पदावली) के प्रयोग तक ही परिमित है।

पालीवालजी उन लोगोंमेंसे नही हैं, जो हाथ-पाँव बचाकर मूज़ीको टरकानेकी नीतिमे विश्वास रखते हैं, उनकी नीति सदा मूज़ीकी गर्दन पकड़नेकी रही है, चाहे इस प्रयोगमें अपने हाथ-पाँव तो क्या, जान भी सही-सलामत न निकले !

भारतीय जनता अब कोरम-कोर विद्वत्तासे प्रभावित नही हो सकती। वह त्याग और तपकी महिमाको भलीभाँति समझ गई है, और पालीवाल-जीका जीवन एक तपस्वी सैनिकका जीवन रहा है।

पिछली बार जब पालीवालजी जेलसे छूटकर आये, तो उनसे मिलनेके लिए हम उनके घरपर गये। माईथानकी एक गन्दी गलीमें उनका मकान मिला। पालीवालजी घरपर थे नही। उस वक्त हमें एक मज़ाक़ सूझा। एक दोहा लिखकर वहाँ रख आये—

"कहाँ आइकै हौ बसे गन्द गलीके तीर ;
जहाँ जाइबेमें परै भक्तनपै अति भीर।"

जब दूसरी बार हम उनसे मिलनेके लिए गये, तो पालीवालजीने सारा मामला समझाया, जिससे हमें अपने व्यंगपर मन-ही-मन अत्यन्त लज्जित होना पडा। यदि पालीवालजी चाहते, तो किसी प्रोफेसरकी भाँति सात-आठ सौ रुपये पाते होते और शहरकी गन्दगीसे दूर किसी बढ़िया कोठीमे रहते और बैंकमें हज़ारो रुपये होते और होती चढ़नेके

लिए मोटर। पर तब पालीवालजी निर्जीव इतिहास पढ़ाते, और आजकल वे सजीव इतिहासका निर्माण कर रहे हैं।

पालीवालजीको अपनी निर्धनतापर उचित अभिमान है—उस निर्धनतापर, जिसे उन्होंने स्वयं ही निमन्त्रित किया है। इस दृष्टिसे वे भृगु ऋषिके असली वंशज हैं—उन भृगुके, जिन्होंने लक्ष्मीपतिके लात मार दी थी।

जब दूसरे कितने ही नेता—केवल लिबरल दलके ही नहीं, कांग्रेसी भी—बड़े आदमियोंकी खुशामद करते फिरते हैं, पालीवालजीके अदम्य स्वाभिमान और गौरवमय अक्खड़पनको देखकर अत्यन्त हर्ष होता है। लोग कहते हैं कि पालीवालजी कठोर भाषाका प्रयोग करते हैं, वे सहनशील नहीं हैं, वे कभी-कभी साहित्यिक शिष्टताका उल्लंघन कर जाते हैं। यह सुनकर हमें अमेरिकामें गुलामी-प्रथाके विरुद्ध घोर आन्दोलन करनेवाले गैरीसनकी एक बात याद आ जाती है। जब गैरीसनसे किसीने कहा—"आप जरा माडरेट भाषाका प्रयोग किया कीजिये", तो गैरीसनने कहा—"जनाब, गुलामोंकी दुर्दशा देखकर मेरा दिल जल रहा है। आप चाहते हैं कि वह ठंडी हो जाय!"

पालीवालजीकी मनोवृत्तिके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। किसानों और मजदूरोंपर होते हुए अत्याचार उन्होंने अपनी आँखों देखे हैं। नौकरशाहीका नंगा नाच वे नित्य-प्रति देखते हैं (जब शायद दूसरे प्रकारके नेता साहबों और मेमोंका 'डान्स-नाच' देखते हों)। पुलिसके जुल्मोंके सैकड़ों दृष्टान्त उनके सामने गुजरे हैं, और देशकी गुलामीके कारण उनकी अन्तरात्मामें वह अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई है, जो उन्हें कदापि शान्त नहीं रहने देती।

पालीवालजीकी कठोरता एक सैनिककी कठोरता है, और जिस दिन उन्होंने 'साहित्य-रत्न' होते हुए साहित्य-क्षेत्रको तिलांजलि देकर सैनिक क्षेत्रमें प्रवेश किया, उसी दिन उन्होंने माडरेटपन और कोमल भावोंको

अन्तिम नमस्कार कर दिया।

जो महानुभाव पालीवालजीके उग्र स्वभावसे घवराते है, उनसे हमें इतना ही कहना है कि हरएक आदमीकी कुछ मानुषिक कमज़ोरियाँ हुआ करती है, और जिह्वापर सयम न होना पालीवालजीकी एक वडी भारी कमज़ोरी है। पालीवालजी सचमुच ही एक ऐतिहासिक महापुरुष होते, यदि वे ज़वानपर कावू रख सकते—खानेमे भी और वोलनेमें भी। पर पालीवालजीके इस मरखनेपनपर विजय प्राप्त करनेके कुछ उपाय है। एक अनुभूत प्रयोग हम यहाँ लिखे देते है। जव पालीवालजीसे राजनैतिक विपयोपर वाद-विवाद किया जाय, उस समय चार पैसेकी गँडेरी मँगाकर रख ली जावें। हमने ऐसा ही करके फिर पालीवालजीके सामने माननीय श्रीनिवास शास्त्री और पत्रकार-शिरोमणि सी० वाई० चिन्तामणिकी दिल खोलकर प्रशसा की है। जिस समय अपने राजनैतिक विरोधियोंके प्रति सहिष्णुता न होनेके कारण पालीवालजी दाँत पीसते है, उसी समय गँडेरी उनकी दाढके नीचे दवकर जिह्वाकी सरसताको वढ़ाकर उनकी कटुताको कम कर देती है! पर एक मुश्किल है कि गँड़ेरी हर मौसममें मिलती नही। अभी उस दिन पालीवालजी दो महिलाओंसे लड़ पडे। तव हमने अपना आज़मूदा नुस्खा वतलाया। चूँकि गँडेरीका मौसम न था, इसलिए एक महिलाके प्रस्तावपर यह निश्चित हुआ कि गँडेरीकी जगह 'कसेरू' ले सकते है।

पालीवालजी प्रगतिशील है। राजनैतिक क्षेत्रमें अपनेको उचित ट्रेनिंग देनेका कोई अवसर वे नही छोडते। स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी पालीवालजीकी राजनैतिक सूझ की अत्यन्त प्रशसा करते थे, और उनकी सहज-वुद्धिपर अटल विश्वास रखते थे। पालीवालजीकी प्रगतिशीलताका एक दृष्टान्त सुन लीजिये। शहरोमें रहते हुए और पत्रोमे लेख लिखते हुए उन्हे ज्ञात हुआ कि वे अपनी ग्रामीण भापाका प्रयोग भूलते जाते है। उन्होने शीघ्र ही अपनी इस त्रुटिको दूर करनेका

उपाय करना प्रारम्भ किया, और ग्रामवासी कार्यकर्ताओंके भाषण सुनकर उन्होंने अपनी इस कमीकी पूर्ति कर ली। आज युक्त-प्रान्तमें शायद ही कोई ऐसा नेता निकले, जो ग्रामीण जनताको अपने हृद्गत भाव इतनी आसानीके साथ समझा सके। जब गाँववाले किसी अँगरेज़ीदाँ नेताके भाषणको सुनते हैं, तो कहते हैं—"रही तो बातें कछु जरूर, बाके ओठऊ हिले, पर जि समझिमें नई आई कि का कहि गयौ।"

यदि इस देशमें क्रान्तिका युग लाना है, तो न वह बामुहावरे अँगरेज़ीसे आवेगा और न लच्छेदार कोमल साहित्यिक भाषासे, उसके लिए तो पालीवालजीकी ठेठ गँवारी भाषा सीखनी पड़ेगी। लेनिनकी स्त्रीने अपने सस्मरणोंमें एक जगह लिखा है कि लेनिनने बहुत प्रयत्न करके मज़दूरोंकी भाषण-शैली सीखी थी।

लोग कहते हैं कि पालीवालजीने यह त्याग किया है, वह त्याग किया है, पर वे उनके सबसे बड़े त्यागको भूल जाते हैं। पालीवालजीमें अद्भुत लेखनशक्ति है, उनकी कलममें जादू है, आश्चर्यजनक परिश्रमशीलता है, और यदि वे अपनेको राजनैतिक झंझटोंसे अलग रखकर साहित्य-निर्माणमें लगाते, तो वे भारतके 'अप्टन सिनक्लेयर' बन जाते। अपने साहित्यिक भविष्यको राजनीतिक बलिवेदीपर कुर्बान कर देना, एक ऐसे आदमीके लिए, जो अपनी लेखनीके प्रभावको जानता है, अत्यन्त कठिन है।

पालीवालजीके विषयमें फैसला देते हुए लोग एक बात भूल जाते हैं, वह यह कि वे क्रान्तिकारी हैं। चुगी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, कौंसिल और एसेम्बलीमें पदार्पण उनके जीवनका लक्ष्य न कभी था और न कभी होगा। ये सब अन्तिम लक्ष्यके साधनमात्र हैं। सरकार इस बातको अच्छी तरह जानती है, और उसने पालीवालजी, उनके सैनिक तथा उनके साथियोंको दमन करनेमें कभी ढिलाई नहीं की। स्वर्गीय गणेशजीके 'प्रताप'को छोड़कर स्वार्थत्याग तथा बलिदानका 'सैनिक'-जैसा दृष्टान्त हिन्दी-जगत्में कोई दूसरा न होगा।

युक्तप्रान्तीय सरकारने अपनी एक रिपोर्टमें लिखा था—" 'सैनिक' निरन्तर साम्यवादी सिद्धान्तोंका प्रचार करता रहा ।" आज तो साम्यवादकी चर्चा पत्रोमें बहुत काफी चल रही है; पर आजसे कितने ही वर्ष पहलेसे पालीवालजी साम्यवादका विधिवत् अध्ययन कर रहे है और साम्यवादी विचारोका प्रचार भी।

पालीवालजीके राजनैतिक विचारोकी बडी-भारी कमजोरी वही है, जो शासन या डिक्टेटरशिपमें विश्वास रखनेवालोकी होती है। ऐसे लोगोकी समझमें यह बात कदापि नही आ सकती कि असली साम्यवाद तो अराजकवादी साम्यवाद है, और यदि किसी देवताको भी डिक्टेटर बना दिया जाय, तो वह स्वभावतः दानव बन जाता है। देवराज इन्द्र तककी डिक्टेटरीके दुष्परिणाम जानते हुए भी लोग डिक्टेटरीमें कैसे विश्वास कर लेते है, यह बात हमारी बुद्धिके तो परे है। एक अराजकवादी तो पालीवालजीकी निर्दय डिक्टेटरीके अधीन रहनेके बजाय उनकी जेलमें रहना अधिक पसन्द करेगा।

पालीवालजीका राजनीतिक भविष्य क्या होगा? यह प्रश्न जरा कठिन है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि पालीवालजी उन आदमियोमेंसे है, जिनके हाथमें या तो शासनकी बागडोर होगी, या फिर जिनकी गरदनमें रस्सीका फन्दा और सच बात तो यह है कि पाली-वालजी पहली चीजकी अपेक्षा दूसरीको ही अधिक पसन्द करेंगे।

मैनपुरी-षड्यन्त्र केसके पालीवालजी और लेजिस्लेटिव एसेम्बलीके सदस्य श्रीयुत श्रीकृष्णदत्त पालीवाल एम० एल० ए०की मनोवृत्तिमें जरा भी अन्तर न होगा। पालीवालजी क्रान्तिकारी थे, है और रहेगे।

दिसम्बर १९३४]

श्री पथिकजी

समाचार-पत्रोंमें जहाँ कहीं राजस्थान नाम आता, वहीं पथिकका नाम दीख पड़ता, देशी रियासतोंकी अत्याचार-पीड़ित मूक जनताका जब कभी जिक्र आता—लोग पथिकका नाम लेते। मित्रोंसे जब कभी बातचीत होती वे कहते "भाई, काम करनेवाला तो एक ही है, 'पथिक'।"

मैं सोचता था पथिक कौन है? पथिकका जन्म कहाँ हुआ, उन्होंने क्या और कैसी शिक्षा पाई, इत्यादि बातोंके जाननेकी इच्छा मेरे दिलमें न तब थी, न अब है। मैं चाहता था कि कोई आदमी मुझे पथिकके उन गुणोंका परिचय दे, जिनके कारण उनका नाम दुखित जनताके लिए इतना आदरणीय हो गया है, उनका चरित्र-चित्रण करे। मेरी यह इच्छा कुछ दिनों बाद पूर्ण हुई और बड़े आश्चर्यजनक ढंगसे पूर्ण हुई।

× × × ×

देशबन्धु सी० आर० दासके मकानपर महात्मा गान्धीजी व दीनबन्धु ऐंड्रूज बातचीत कर रहे थे। वहीं बैठा हुआ मैं भी इस वार्तालापको सुन रहा था। कुछ देर बाद मि० ऐंड्रूजने कहा "महादेव भाई कहाँ है?" महात्माजीने उत्तर दिया "वे कहीं बाहर गये हुए हैं, क्या आपको उनसे कुछ काम है?" मि० ऐंड्रूजने कहा "पथिकके विषयमें उनसे कुछ पूछना था। कौन है, कैसे आदमी है?" महात्माजी मुस्कराते हुए बोले—

"I can tell you something about Pathik. Pathik is worker while others are talkers Pathik is a soldier, brave, impetuous, but obstinate He was

Mahadev's infallible guide in Bijaulia and the remarkable thing is that the masses of Bijaulia have implicit confidence in him."

अर्थात् "मै आपको पथिकके वारेमे कुछ वतला सकता हूँ। पथिक काम करनेवाला है, दूसरे सव वातूनी है। पथिक एक सिपाही आदमी है—वहादुर है, जोशीला और तेज़ मिज़ाज है, लेकिन ज़िद्दी है। जव महादेव भाई विजौलिया गये थे, तव पथिक उनके निर्भ्रान्त साथी थे। महत्त्वपूर्ण वात तो यह है कि विजौलियाकी जनताका उनपर पूरा-पूरा विश्वास है।"

मनुष्य-चरित्रके जितने उत्तम ज्ञाता महात्मा गान्धी है, उतना शायद ही कोई दूसरा हो। "Pathik is a soldier" "पथिक एक सिपाही है" इन चार शब्दोमें महात्माजीने पथिकके सम्पूर्ण चरित्रका परिचय दे दिया।

× × × ×

शान्ति निकेतनके कवितामय शान्त वायुमडलमे रात्रिके समय प्राय. मि० ऐंड्रूज़से वार्तालाप करनेका सौभाग्य मुझे मिला करता था। कभी-कभी मि० ऐंड्रूज़ राजस्थानकी पीड़ित जनताका ज़िक्र करते और स्वय वहाँ वेगार वन्द करानेके लिए जानेका विचार करते थे। पथिकके विपयमें भी प्राय. वातचीत होती थी। वे पथिककी वहादुरी और सेवा-भावकी वडी प्रशंसा करते थे। उन्होने पथिकके साथ विजौलिया तथा दूसरे स्थानोमे घूमनेका निश्चय भी कर लिया था। दुर्भाग्यवश वे वीमार पड़ गये और राजस्थानकी यात्रा न कर सके।

उन दिनोकी एक घटना मुझे याद है। पहले श्रीमान् वीकानेर-नरेशने मि० ऐंड्रूज़को अपने यहाँ निमन्त्रण दिया था, लेकिन जव महाराजा साहवने सुना कि मि० ऐंड्रूज़ पथिकके वुलाये हुए आ रहे है तो वे डर गये और अपना निमन्त्रण वापिस ले लिया!

राजस्थानके नरेशोंके हृदयपर पथिककी कैसी धाक बैठी थी, इसका यह एक उदाहरण है।

× × × ×

पथिकजीसे मेरा अब कई वर्षसे परिचय है। जब कभी मैंने उनके दर्शन किये, उनकी राजपूती डाढ़ी, तेजस्वी नेत्र, मुस्कराता चेहरा और वीरतापूर्ण बातचीत सभीमें उनके सिपाहीपनकी झलक मुझे दीख पड़ी। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि कुछ दिन उनकी सेवामें रहकर उनके मनोरंजक अनुभवोंको सुनता। लेकिन यह सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ।

एक साथ ही अखबारोंमें पढ़ा कि पथिकजी गिरफ्तार कर लिये गये। इससे मुझे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। एक बार आबू स्टेशनसे राजपूतानेके ए० जी० जीके आफिसके एक क्लार्क उसी गाड़ीमें आ बैठे जिसमें मैं बैठा हुआ था। बातचीत होनेपर मैंने उन महाशयसे पूछा "पथिकजीके विषयमें अधिकारियोंके क्या विचार हैं?" उन्होंने उत्तर दिया "अधिकारी लोग उनको गिरफ्तार करनेका मौका देख रहे हैं।' जब पथिकजीके पकड़े जानेका समाचार मैंने पढ़ा, मैंने समझ लिया कि अधिकारियोंने अब मौका पा लिया है।

यद्यपि पथिकजीके लिए हृदयमें कुछ चिन्ता हुई, तथापि यह सन्तोष था कि महाराणा प्रतापके वंशज उनके साथ मनुष्यताका बर्ताव करेंगे। लेकिन मेरी यह धारणा निर्मूल थी। बड़े दुःखके साथ मैंने पत्रोंमें पढ़ा कि पथिकजीके शरीरमें खून नहीं है, उनकी बीमारी बढ़ रही है और उनका स्वास्थ्य गिरता जाता है। लेकिन उससे भी अधिक दुःख यह जानकर हुआ कि अधिकारी लोग पथिकके विरुद्ध राजस्थानमें असत्य विचार फैलानेका प्रयत्न कर रहे हैं। वे लिखते हैं कि पथिक [illegible] राजस्थानमें गड़बड़ मचा रहा था। [illegible] बिजौलियेमें [illegible] सूचना [illegible] रहते हैं।

× × ×

पथिकजी इस समय क्या विचार करते होंगे ? उन्हें किस बातकी चिन्ता होगी ? तरुण राजस्थानकी ? नही, वह तो योग्य हाथोंमें है। राजस्थान-सेवासंघकी ? नही, क्योंकि वह तो अत्याचार-पीड़ित हृदयोंका संघ है, और हृदयोंके संघको आजतक संसारकी कोई निरंकुश शक्ति नही तोड़ सकी। अपने स्वास्थ्यकी ? हर्गिज़ नही, जिस दिन पथिकने देशभक्तिके कण्टकाकीर्ण पथके पथिक होनेका निश्चय किया था, उसी दिन उन्होंने अपनी जान हथेलीपर रख ली थी।

तो फिर पथिकको चिन्ता किस बातकी होगी ? महाराणा प्रतापके वंशजोंके गौरवकी। वे सोचते होंगे कि आज प्रातःस्मरणीय वीर प्रतापके वंशज एक सिपाहीके साथ सिपाहीकी तरह बर्ताव करना भी नही जानते ! यदि पथिकजी महाराणा प्रतापके समयमें होते तो वे प्रतापकी सेनाके एक वीर सेनाध्यक्ष होते। आज प्रतापके वंशज उन्हें ज़िन्दा गाड़नेका सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं !

आइये, हम लोग अब उस भविष्यकी एक झलक भी देख लें जब न अत्याचारी शासक होंगे और न मुसरिम अमृतलाल, जब निरंकुशता रूसी ज़ारके मार्गका अनुसरण कर चुकी होगी, जब भारतके संयुक्त राष्ट्रोंमें स्वतन्त्र जनता स्वाधीनताका सुख अनुभव कर रही होगी। राजस्थानके तेजस्वी बालक अपनी माताओंसे पूछेंगे 'माँ ! पथिक कौन थे ?' और वे उत्तर देंगी, 'बेटा, पथिक स्वाधीनता-संग्रामके एक सिपाही थे, कायर शासकोंने घोल-घोलकर उनके प्राण ले लिये। न वे राजा रहे न वे शासक।' लोग उस समय समझेंगे कि महात्माजीके इस वाक्यका कितना गम्भीर अर्थ है 'Pathik is a soldier' 'पथिक एक सिपाही आदमी है।'

दिसम्बर १९२३]

श्री भगवानदासजी केला

१२ जुलाई, १९१०

रेलगाड़ी सहारनपुरसे मेरठ चली आ रही थी। मेरठ आनेमें अब बीस-पच्चीस मिनटकी देर थी कि इतनेमें एक बीस वर्षीय युवककी, जो उसी गाड़ीसे यात्रा कर रहा था, हालत बहुत खराब होने लगी। हृदयकी धड़कन बेहद बढ़ गई और उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जीवनका अन्त निकट है और अब प्राणपखेरू उड़ने ही वाले हैं। उसी समय उस युवकने एक दिवास्वप्न देखा, मानो श्वेत वस्त्र पहने कोई देवी सामने खड़ी है, चेहरेपर उनके तेज है, दृढ़ता है और प्रेमकी स्पष्ट भावना है, और वह उस युवकको फटकार रही है—"तू व्यर्थ ही शोक करता है कि मैं माताकी सेवा न कर सका। तेरी बड़ी माता, तेरी मॉंकी भी माता भारतमाता तो मौजूद है। तेरे मनमें सेवा करनेकी भावना है, तो तू उसकी सेवा कर। मैं तो उसी बड़ी मातामें मिल गई हूँ। तू मेरे लिए इतना घबराता है! जरा हृदयकी आँखोंको तो खोल और अपनी माताको पहचान।"

युवक सम्हलकर उठ बैठा। स्वप्न टूट चुका था। वहाँ कोई देवी नहीं थी, पर उन देवीका सन्देश अब भी उस मातृ-प्रेमी युवकके कानोंमें गूँज रहा था। वह सन्देश ही मानो उसके लिए संजीवन बूटी सिद्ध हुआ। स्टेशनके आते-आते हृदयकी गति ठीक हो गई, शरीरमें भी कुछ चेतना शक्ति आई और ऐसा प्रतीत हुआ कि उसे नवीन जीवन मिल गया है! वस्तुतः उस युवकको जीवनका एक लक्ष्य प्राप्त हो गया था और उसी क्षण उसने यह निश्चित कर लिया कि साहित्य-सेवा द्वारा मैं भारतमाताकी अर्चना करूँगा।

यही श्रद्धेय श्री भगवानदासजी केलाके पुनर्जन्म तथा भारतीय ग्रन्थ-मालाके जन्मकी कहानी है। केलाजीके समस्त जीवनमें यही मातृ-सेवाकी भावना विद्यमान है। और कैसी सती-साध्वी माता थी वह और कितने भयंकर दुःखोंका उस गरीब माँने सामना किया था!

वस्तुतः केलाजीके ही शब्दोंमें उनकी पुण्यगाथा सुन लीजिए —

"मेरे जन्मके अगले ही वर्ष पूज्य पिताजी (श्री मथुरादासजी) का देहान्त हो गया। माताजीकी उम्र उस समय लगभग चालीस वर्षकी होगी। मैं उनकी अन्तिम सन्तान था। मुझसे पहले दस-ग्यारह सन्तानें हो चुकी थी। उनमेंसे हम तीन भाई और एक बहन ही जीवित रहे थे। सन्तानके वियोगने माताजीको बहुत दुःखित कर दिया था और उनकी आँखें कमजोर हो गई थी। जब कि मैं चार वर्षका ही था, मेरे ज्येष्ठ भ्राता (श्री बालमुकन्द) का स्वर्गवास हो गया। पीछे मेरी बहन भी चल बसी। तत्पश्चात् मेरे बिचले भाईका भी सन् १९०८ में स्वर्गवास हो गया! अकेला मैं ही रह गया था। पिताजी पासके गाँवमें मुनीमी (या कारिन्दे) का काम किया करते थे। कुछ लेन-देन भी होता था। थोड़ी-सी ज़मीन भी थी, जिसमें खेती कराई जाती थी। पिताजी विशेष व्यवहार-कुशल न थे, इसलिए कुल मिलाकर उनकी आमदनी बस इतनी होती थी कि घरका काम साधारण तौरपर चलता जाता था। उनके स्वर्गवासपर घरमें विशेष जमा-पूँजी न थी। बड़े भाईने तीन वर्ष पटवारीगीरी की थी और वे ज़िलेदार बनने ही वाले थे कि उनका देहान्त हो गया। अब घरमें आमदनीका कोई साधन न रहा।

"माताजी कपास ओटती, सूत कातती और कपड़ा सीती थीं। सर्दी-के मौसममें वे सवेरे उठ जाती और बहुधा अँधेरेमें ही चर्खा चलाती रहती। अक्सर रातको सोते समय रुई चर्खेके पास रख दी जाती और सब व्यवस्था ऐसी कर दी जाती कि अँधेरेमें ही काम शुरू किया जा सके। अगर किसी दिन कुछ खास ज़रूरत पड़ती, तो दिया जलाकर पूरी कर ली जाती।

पीछे दिया बुझा दिया जाता। इस तरह रातको भी दिया सिर्फ उतनी ही देर तक जलाया जाता, जितनी देर उसकी ज़रूरत होती। कपास ओटनेसे जो बिनौले मिलते, उन्हें माताजी समय-समयपर बेचकर रोज़मर्राका फुटकर खर्च चलाती। रुई जब कोई इकट्ठा मोल लेनेवाला सौदागर आता, तब बेचती थीं। कुछ रुई अपने घरके वास्ते, सूत कातने-के लिए रख लेती थीं।

"माताजीकी निगाह कमजोर होनेसे बारीक सिलाईका काम नहीं होता था। पर वे दोहर, चद्दर, रजाईका गिलाफ, मिरजई, अंगरखा आदि सीनेका काम खूब करती थीं और गाँवमें इसकी ही विशेष ज़रूरत रहती थी। सिलाईके कामके नकद दाम मिलनेकी कोई बात नहीं होती थी। गाँवमें बहुत-से घर जाटोंके थे। उन्हें जब जो कपड़ा सिलानेकी ज़रूरत होती थी, सी दिया जाता था। कुछ दिन आगे-पीछे उनके यहाँसे बदलेमें कोई चीज़ आ जाती थी। मिसालके तौर पर किसीके यहाँसे चावल आ जाता, किसीके यहाँसे एक-दो भेली गुड़की आ जाती, किसीके यहाँसे तिल या दूसरा अन्न ही आ जाता। दूध तो समय-समयपर आता ही रहता था। यद्यपि माताजी बहुधा चना, ज्वार, बाजरा, मकई आदि खाती थीं, मेरे लिए प्राय गेहूँकी रोटी बनाती थीं। गुड़, तेल आदि तो मेरे लिए वर्जित ही थे।'

केलाजीके जीवन और उनके कार्यको समझनेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उनकी मातृ-भक्तिको ध्यानमें रखा जाय। इसी धुरीपर उनका समस्त जीवन घूमता रहा है। बाल्यावस्थामें उन्होंने एक कविता पढ़ी थी और वह उन्हें इतनी पसन्द आई थी कि उन्होंने उसे कंठस्थ कर लिया और आज भी वे उसे बड़े प्रेमसे दुहरा लेते हैं—

बहुत सुनने थी माय मेरे भलाई
मेरे वास्ते, दुःख सहना उठाई

प्रभू आयु-धन मुझको देते जो भाई
तुम्हारी मैं दिलसे करूँ सेवकाई
मेरी प्यारी अम्मा !
मेरी जान अम्मा !

केलाजीके जीवनका एकमात्र लक्ष्य माताजीकी सेवा करना था। किसी ज्योतिषीसे उनके साथी-संगियोंने अपने-अपने भविष्यके विषयमें अनेक प्रश्न किये थे; पर केलाजीने एक ही सवाल पूछा—'क्या मुझे अपनी माताजीकी सेवा करनेका मौका मिलेगा ?' पर दुर्भाग्यवश यह अवसर केलाजीको नहीं मिल सका। जब वे परीक्षा देनेके लिए रुड़की गये हुए थे, तभी माताजीका स्वर्गवास हो गया। वे अन्त समयमें उनके दर्शन भी न कर पाये ! केलाजीके समस्त जीवनका आधार ही जाता रहा, और उनकी निराशा इतनी बढ़ गई कि वे मृत्युकी कामना करने लगे ! बार-बार उनके मनमें यही भाव आता था कि अब जीवन निष्फल हो गया, जिन्दा रहकर करना ही क्या है ! इसी प्रकारकी मानसिक पीड़ा तथा जन्मजात शारीरिक दुर्बलताके दिनोंमें उन्हें मातमपुर्सीके लिए सहारन-पुरके एक ग्रामकी यात्रा करनी पड़ी थी और वहाँसे लौटते हुए रेलकी यात्रामें वह दुर्घटना, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, होते-होते बची।

इस प्रकार भारतीय ग्रन्थमाला केलाजीके लिए कोरमकोर जीविका-का साधन नहीं है और न वह सिर्फ़ व्यापारकी ही चीज़ है; वह तो मुख्यतः उनकी मातृ-पूजाका ही एक रूप है। जो मातृ-वियोग केलाजीके लिए एक अभिशाप था, वही हिन्दी-साहित्यके लिए महान् वरदान सिद्ध हुआ, और सबसे बड़ी बात यह हुई कि उपर्युक्त दुर्घटनाने केलाजीके समस्त जीवनकी दिशा ही बदल दी। यह भी अच्छा ही हुआ कि केलाजी रुड़कीकी परीक्षामें असफल हुए, नहीं तो हिन्दी-जगत् अपने एक अनन्य साधककी सेवाओंसे वंचित ही हो गया होता ! पर केलाजी इंजीनियर तो फिर भी बन ही गये—नहरोंके न सही, साहित्य-धाराके सही ! जो कार्य

एक संस्था भी आसानीसे न कर सकती, उसे उन्होंने अकेले ही कर दिखाया है।

कितनी विनम्रता पूर्वक और विकट भावनासे साथ असने साधारण स्वास्थ्यके बावजूद यह साधक अपने निर्दिष्ट पथपर ३५ वर्षसे चलता रहा है। केलाजीने कोई छुट्टियाँ नहीं मनाई, और अब साठ वर्षकी उम्रमें छुट्टी मनानेका ख़याल ही उनके मनसे उतर गया है। हिन्दी-जगत् मे ऐसे कार्यकर्त्ताओंकी संख्या कई सौ तो होगी, जिन्हे मानसिक भोजन केलाजीके ही सद्ग्रन्थोंसे मिला है और जिनकी क्षुद्रत्वकी भावनाओं दूर करनेमे उनकी पुस्तकोंने अद्भुत सहायता दी है। अभी अपनी टीकम-गढ-यात्रामे केलाजीको कई कार्यकर्त्ता ऐसे मिले, जिन्होंने उनके सामने कृतज्ञतापूर्वक यह स्वीकार किया—'हम तो बीस-बीस वर्षसे आपके ही दिये हुए साहित्यसे ज्ञानार्जन करते रहे है। आपकी किताबोंने ही हमे दिमागी खुराक दी है।' केलाजीके लिए निस्सन्देह यह सबसे बड़ा सर्टीफिकेट है, पर इसे अर्जित करनेके लिए उन्हे बहुत खपना पड़ा है। घोर-से-घोर दुर्घटनाओंके समयमें भी वे अपने निश्चित कार्यपर डटे रहे हैं। केलाजीके सुपुत्र चिरंजीव ओमप्रकाशने अपने एक पत्रमें मुझे दो घटनाएँ लिख भेजी थीं, जो केलाजीके जीवन पर अच्छा प्रकाश डालती हैं। उन्हे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"१५ जून, १९३४ की घटना मुझे भुलाये नहीं भूलती। मेरे बड़े भाईकी अवस्था उस समय १८ वर्षकी थी और स्वास्थ्यको छोड़कर अन्य गुणोंमें वे पिताजीके सर्वथा अनुरूप ही थे। पिताजीका स्वास्थ्य जितना खराब है, उनका स्वास्थ्य उतना ही अच्छा था। १८ वर्षकी उम्रमें वे २४ वर्ष-जैसे हृष्ट-पुष्ट युवक प्रतीत होते थे। भाषा-शक्ति उनमें असाधारण थी, क्योंकि बचपनसे ही उन्होंने इसका अभ्यास किया था। पिताजीने उन्हें सर्वथा अपनी रुचिके अनुसार ही पाला था और उनसे भी बड़ी-बड़ी आशाएँ, केवल उन्होंने ही नहीं, उनके मित्रोंने भी लगा रखी

थीं। उन्हे उस वर्ष मोतीभरा निकला। आरम्भसे ही योग्य चिकित्सकों का इलाज कराया गया। १५ जूनके प्रातःकाल तक हालत काफ़ी अच्छी थी; पर दोपहरको यकायक दशा विगड़ने लगी और फिर वह वहुत खराव हो गई। तीन वजेके करीव उन्हे शय्यासे उतारकर भूमिपर ले लिया गया। पन्द्रह मिनटमे ही चार वार 'हरि ओ३म्' कहनेके वाद उन्होंने प्राण त्याग दिये। उनका यमुनामें जल-प्रवाह कर दिया गया और ६ वजे तक पिताजी श्मशानसे लौट आये। लौटकर वे तुरन्त ही लिखनेमें लग गये। जो मित्र इस समाचारको सुनकर शोकमें धैर्य वँधाने आये थे, उन्हे यह भ्रम हुआ कि शायद उन्हें ग़लत खवर मिली है। कुछ लोग तो इस भ्रमसे लौट ही गये; पर जिन्हे निश्चित पता था, उन्होंने पिताजीसे कहा कि आप ऐसी अवस्थामें कुछ लिख कैसे पा रहे है! पिताजीका संक्षिप्त उत्तर था—'मैंने और आपने भरसक प्रयत्न किये, पर ईश्वरकी इच्छा यही थी। मुझे अपना कार्य करना ही चाहिए।' गीताका उपदेश और वैराग्यकी वातें मैंने लोगोंसे प्राय. सुनी है; पर पिताजीके मुंहसे मैंने ऐसे कोई उपदेश नही सुने किन्तु घोर वज्रपातके समय उन्होंने अपने धैर्यपूर्ण व्यवहार द्वारा जो उपदेश दिया, वह जीवन-भर स्मरण रहेगा।"

केलाजी एक रास्तेके चले हुए आदमी है। दुनियादारीकी य लल्लो-चप्पोकी वातें उन्हें नही आतीं। अपने निर्णयको वे सीधी-सादी भाषामें कह देते है और यही खूवी उनकी लेखनशैलीमें भी है। हमारी पिछली वीमारीमें वे कई वार अस्पतालमें पधारे और अनेक साहित्यिक विषयोंपर उनसे विचार परिवर्तन हुआ। अपनी कई योजनाएँ हमने उन्हें सुनाईं। केलाजीने धैर्यपूर्वक सव-कुछ सुना और अन्तमें एक वाक्यमें अपना फैसला दे दिया—'चौवेजी, आपने अपनी दुकान वहुत फैला रखी है; इसे समेटोगे कव?" एक ऐसे महान् परिश्रमी व्यक्ति पर, जिसका सम्पूर्ण जीवन शक्तियोंके केन्द्रीकरणपर निर्मित हुआ है, हमारी कल्पनाकी

उनपर कोई प्रभाव नहीं डाल सकी और उन्होंने हमारी विरोधिनी शक्तियोंपर एक वाक्य द्वारा गम्भीर टिप्पणी कर दी। हम उनकी स्पष्ट-वादितासे चकित रह गये। पर इस स्पष्टवादिताका एक और भी उज्ज्वल दृष्टान्त भाई ओमप्रकाशजीने मुझे लिख भेजा है, जो इस प्रकार है—

"सन् १९४४ में द्वितीय महायुद्ध अपनी पूर्ण भीषणतापर था। सेनाके लिए आफिसर और सिपाही भारी संख्यामें लिये जा रहे थे। यह भी प्रतीत होने लगा था कि लड़ाईका निर्णय मित्र-राष्ट्रोंके पक्षमें होगा। मैं इसी समय बी० ए० पास करके आ चुका था। भविष्यमें क्या करूँगा, इसका निश्चय नहीं था। आफिसर बननेकी चाह थी। एमर्जेन्सी कमीशन प्राप्त करनेके लिए दो इंटरव्यू पारकर अन्तिम निर्णयके लिए देहरादून पहुँचा। वहाँ सेलेक्शन-बोर्ड द्वारा चुन भी लिया गया। देहरादूनसे लौटनेके पश्चात् भी इस बातको मैंने पिताजीसे गुप्त ही रखा और जिस दिन जाना था, उसी दिन मैंने पिताजीको यह सूचना दी कि मैं युद्धमें आफिसर बननेके लिए ट्रेनिंग प्राप्त करने जा रहा हूँ। पिताजीने मुझसे एक ही प्रश्न किया—'क्या तुम यह कार्य उचित समझते हो? क्या यह देशके प्रति विद्रोहात्मक नहीं है?' मेरा भी स्पष्ट उत्तर था—'मैं तो अंग्रेजी सेनामें भाड़ेका सिपाही बनूँगा और मेरे लिए एकमात्र आकर्षण भावी उन्नति है।' यह सुनकर पिताजीने केवल इतना कहा—'मुझे इस बातका भय नहीं कि तुम युद्धमें मारे जाओगे। मुझे दुःख भी नहीं होगा, क्योंकि मैं सिद्धान्तहीन व्यक्तिके जीवनको जीवन ही नहीं मानता। तुम्हारी मृत्यु तो आज हो चुकी। मुझे दुःख केवल इस बातका है कि जो बच्चा बाल्यावस्थामें यह गीत गाता था—

हम सूखे चने चबायेंगे
काँटोंपर दौड़े जायेंगे,
पर शीश न कभी झुकायेंगे!

जिसके संस्कार देशभक्तिके डाले गये थे, जो उसी वातावरणमें पला था, वही आज अपनेको साम्राज्यवादी और शोषक शक्तियोंके हाथ बेच रहा है ! समय आनेपर सम्भव है, तुम अपने भाइयोंपर गोली चलवानेमे भी न चूको !' फिर भरे हुए कठसे उन्होने कहा—'तुम्हारे भाईकी मृत्युसे जो दुःख मुझे नही हुआ, वह तुम्हारे सेनामें भर्ती होनेसे हो रहा है। यह तुम्हारी ही मृत्यु नही, बल्कि आशिक रूपसे मेरी भी मृत्यु है !' यह सुनने-के बाद मैं देहरादून न जा सका।"

केलाजीका यह एक नियम रहा है कि वे सूर्योदयसे पूर्व ही अपनी साहित्यसेवा या मातृ-पूजाके कार्यपर बैठ जाते हैं और भोजनके समय तक बराबर उसीमे संलग्न रहते हैं। केलाजीको ज्यादा बातचीत करनेका अभ्यास नहीं और भिन्न-भिन्न प्रकारके व्यक्तियोसे परिचय बढानेकी कला उन्होने सीखी ही नही ! प्रयागमे रहते हुए उन्हे इतने वर्ष हो गये, पर इस बीचमे वहाँके केवल चार व्यक्तियोंसे ही उनका घनिष्ठ परिचय हो पाया है ! वृन्दावनमें भी वे इसी प्रकारके एकाकी जीवनके अभ्यस्त थे। किसी मीटिंगमे वे एक महानुभावके पास बैठे हुए थे। अकस्मात् उनसे आप पूछ बैठे—'आप कहाँ रहते है ?' उन्होने उत्तर दिया—'जनाब, बीस वर्षसे आप ही के पिछवाड़ेके मकानमे रह रहा हूँ !' केलाजी बहुत लज्जित हुए। हमने कही पढा था कि न्यूटनने किसी लेखपर अपना नाम देना इसलिए अस्वीकार कर दिया था कि नामके प्रकाशित होते ही उनके परिचितोकी संख्यामे वृद्धि हो जायगी, जो उनके कार्यमें विघातक होगी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बारेमे केलाजी न्यूटनके सिद्धान्तसे बहुत आकर्षित हो गये हैं !

केलाजीके जीवनकी एक फिलासफी है और उसमें भी माताजीके उपदेशोका प्राधान्य है ! उनकी बातचीतमे भी यह स्पष्टतया प्रकट हो जाता है। अभी उस दिन केलाजीने कहा—'हमारी माताजी भाभीको उपदेश देती थी कि देख बेटी, अगर दस आदमी हमसे अच्छी हालतमें है, तो कितने ही हमसे बुरी हालतमें भी है, इस बातसे हमे सन्तोष कर लेना

चाहिए।' केलाजीके जीवनकी सफलताकी कुंजी उनकी परिश्रमशीलता तथा सन्तोषमें है। अभी कुछ दिन हुए एक बैंकमें उनके सोलह सौ रुपये डूब गये। ये रुपये किताबोंकी बिक्रीसे आये थे, जिनमें कुछ तो उन्होंने उधार लेकर भेजी थी और एक सप्ताह पूर्व ही ये रुपये उस बैंकमें जमा किये गये थे। केलाजीके छोटे-से व्यापारपर यह एक घोर विपत्ति थी, पर केलाजीने इसका जिक्र अपने पुत्र तकसे नहीं किया। यहाँ तक कि अपने कारोबारमें किसीका पैसा एक दिनके लिए भी न रोका। कोई दो महीने बाद प्रसंगवश उन्होंने घरवालोंको यह बात बतलाई।

सोलह सौ रुपयेकी यह चोट एक ऐसे आदमीको, जिसने एक-एक पैसेके बचानेकी कोशिश की थी, कितनी व्यापी होगी, इसकी कल्पना पाठक केलाजीके निम्नलिखित पत्रको पढ़कर कर सकते हैं जो उन्होंने अपने पुत्रको नागपुरसे लिखा था—

"इस बार मैंने निश्चय कर लिया था कि मेरा मासिक खर्च यहाँ १५ रु० से अधिक न हो। यहाँ घी सहित भोजन-खर्च १०) है और बिना घीका ७)। इस प्रकार केवल घीके तीन रुपये माहवार होते हैं। हम घर पर तीन-चार रुपयेका घी सब परिवार खर्च करते हैं। इसलिए मैंने यहाँ बिना घीके भोजन लेना शुरू किया और १०-१२ दिन वैसे ही लिया। फिर श्रीरामगोपालजी विनोदसे घी ले आये, सो मैंने मोल मँगा लिया। अब घीका खर्च अनुमान रुपया-सवा रुपया महीना होगा। दूध पहले हम रोज लेते थे। एक डेयरीवालेसे बात [illegible], तीन आदमी सेर-भर लेते थे। ॥) का [illegible] सेर मिलता था। फिर इसे गरम करने आदिका काम रहता था परन्तु ऐसे शहरोंमें दूध तो रोज केवल पैसेवाले धनिक लोग ही ले सकते हैं। इसलिए इसे बन्द कर दिया। अब ४-५ दिनसे पानी बहुत ठंडा हुई इस दिन गरम [illegible] हर एक प्याला ले लिया, इसके -) से -)॥ लग सकते हैं। [illegible] धुलाईका खर्च भी शहरमें बहुत अधिक होता है। मैंने [illegible]

धोने शुरू कर दिये हैं। ~) का साबुन ले लिया। हर एतवारको =) से ≡) तककी धुलाई कर लेता हूँ। ~) के साबुनसे शायद ।।।) या १) तककी बचत हो सकेगी। इस प्रकार आदमी जरा ध्यान दे, तो अपने खर्चमे थोड़ा-थोड़ा करके भी बहुत बचत कर सकता है। एक-एक पैसेकी भी बहुत कीमत समझनी चाहिए।"

केलाजीको अपनी साधनाके विषयमें कोई अत्युक्तिमय धारणा नहीं है। कोई उसका जिक्र भी करे, तो यही कहकर टाल देते हैं—"अरे भई, औरोंके देखे हमें तो बहुत काफी विज्ञापन मिल गया है, साधन भी मिले हैं। हिन्दी-जगत्मे अनेक सुयोग्य व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जो सचमुच बड़े साधक थे और जिन्होंने जीवन-भर कष्ट ही पाये! उनके देखे हमारा जीवन तो बहुत सुविधामय रहा है। हमने क्या साधना की है?"

इधर दो-तीन वर्षसे केलाजीको दमेकी बीमारी हो गई है और फिर एक बार तो वे अपने जीवनसे इतने निराश हो गये थे कि उन्होंने अपनी एक पुस्तकमें यह लिख दिया था—'शायद यह हमारी अन्तिम रचना है।' पर उनकी यह आशंका गलत सिद्ध हुई और केलाजी हम लोगोंके सौभाग्यसे हमारे बीचमे विद्यमान है। कभी दम उखड़ आता है, तो रात-रात भर तंग रहना पड़ता है! प्रातःकालमें दम उखड़ आनेपर टहलना भी बन्द हो जाता है, पर केलाजी अपने कार्यपर डटे रहते है। इस विषयमें बन्धुवर सियारामशरणजी ही उनका मुकाबला कर सकते है। वे भी अपने क्षणिक विश्रामके समय में उत्तमोत्तम कविताओंका निर्माण कर लेते है। हिन्दीके सहस्रों पाठकोंको इस बातका पता भी नहीं कि किस विषम परिस्थितिमें इन दोनो महान् साधकोंको अपनी रचनाएँ करनी पड़ती है!

अपनी एकाग्रता तथा एकाकीपनसे केलाजीके जीवनमें कुछ त्रुटियाँ भी आ गई हैं, जो उनकी सांसारिक सफलताके मार्गमें बाधक बन गई है! उनको 'सामाजिक प्राणी' बनाना प्रायः असम्भव ही समझिए। किसी पार्टीमें उनको भोजन कराना खतरेसे खाली नहीं! चायको तो वे छूते

ही नही ! भोजन भी नपा-तुला तीन-चार छटाँक ही करते हैं और [illegible] श्री दयाशंकरजी दुबे के, 'केलाजीने भारतीयोंकी भोजन-समस्या [illegible] ही [illegible] दिया है ! अभी उस दिन हम उन्हें जामुन खिलानेके लिए ले गये। साथमें डाक्टर सत्येन्द्रजी भी थे। अभी पाँच-सात जामुन ही खा पाये होंगे कि केलाजी बोल उठे—'बस तृप्ति हो गई !' हमने उस समय यही कहा—'केलाजी, आप बहुत असामाजिक जीव हैं ! हम लोगोंने अभी जामुन खाना प्रारम्भ ही किया है और आप इस प्रकारकी [illegible] बात कहने लगे ! आप कहीं साथ ले जाने लायक नहीं !' [illegible] हँसी हुई। यद्यपि केलाजी-जैसे वयोवृद्ध व्यक्तिसे मज़ाक करना हम लोगों के लिए धृष्टताकी बात थी, तथापि उसमें हम लोगोंका अपराध अधिक नहीं था। स्वयं उनका भोलापन ही हमें प्रोत्साहित कर रहा था !

वस्तुतः केलाजीको पैंतीस वर्ष तक इतना अधिक एकान्त वास करना पड़ा है कि वे सामाजिक दृष्टिसे पंगु बन गये हैं। रेलमें अकेले यात्रा करना उनके लिए बहुत कठिन है। जयपुर गये, तो रेलमें उनका [illegible] हो गया, और जब उतरे, तो जेबमेंसे किसीने रुपये-पैसे तथा टिकट भी गायब कर दिये थे ! अभी टीकमगढ़-यात्राके समय रेलमें उनका सन्दूक, जिसमें उनके ग्रन्थ और कपड़े कुर्ता, धोती इत्यादि थे तीन रुपये और कुछ मिठाई भी—[illegible]। केलाजीका भोलापन उनकी [illegible] सबसे अधिक आकर्षक वस्तु है और उनकी 'असामाजिकता'से हिन्दी-जगत्को बहुत लाभ हुआ है। यदि उनमें कुछ चालाकी और होती, मिलनसारी होती तो जो महान् कार्य उन्होंने किया है उसका दसांश भी न कर पाते।

साठवर्षीय बालक

मातृ-मन्दिरमें केलाजी चौंतीस-पैंतीस [illegible]

कर चुके है।[1] यद्यपि उनका शरीर जीर्ण हो गया है; पर उत्साह ज्यों-का-त्यों वना है। अपनी किसी पुस्तकमें आदिम-निवासियोंके विपयमें एक वाक्य पढकर आपके मनमें विचार आया कि इस विपयपर तो हिन्दीमें कोई ग्रन्थ ही नही है। तुरन्त ही आपने इस विपयकी पुस्तक लिखानेकी योजना वना ली। उक्त पुस्तक लगभग तैयार है। आजकल मानव-संस्कृतिपर आप एक ग्रन्थ लिखनेकी तैयारी कर रहे है। केलाजी यह चाहते थे कि इस ग्रन्थके लिखनेका भार कोई आदर्शवादी नवयुवक उठा लेता। उन्हे इस वातकी लालसा नही कि स्वयं उन्हे ही श्रेय मिले या उक्त ग्रन्थ उन्हीकी ग्रन्थमालामें छपे। मातृभापाके भण्डारकी पूर्ति होनी चाहिए, चाहे वह किसीके द्वारा हो।

हमने किसी अमरीकन पुस्तकमें एक घटना पढी थी। अठारह-बीस वर्पकी एक युवतीका अपने प्रेमीसे विछोह हो गया था। वह इस वियोगमें पागल हो गई और उस पागलपनमें वह उस प्रेमीकी निरन्तर प्रतीक्षा ही करती रही। परिणाम यह हुआ कि सत्तर वर्पकी उम्रमें भी उस वृद्धाके चेहरेपर यौवनके चिह्न स्पष्टतया लक्षित होते थे! वह लड़की-जैसी ही लगती थी। मातृ-सेवाकी उत्कट अभिलापा और आकस्मिक मातृ-वियोगने केलाजीके स्वभावमें एक वाल-सुलभ कोमलताको चिरस्थायी वना दिया है। वस्तुत. केलाजी एक साठवर्पीय वालक है। यह मातृ-भक्त वालक निरन्तर स्वस्थ रहे और हिन्दी-माताकी गोदमें चिरकाल तक खेलता रहे, यही हम सवकी कामना है।

जुलाई १९५०]

---

[1] अन्य प्रकाशकोके लिए भी उन्होंने आठ-नौ कितावें लिखी है।

श्री गोविन्दजी

"पंडितजी, आप हमारी मीटिंगमें कभी नहीं आते। कभी आप भी पधारें, तो मैं आपकी सेवामें कुछ निवेदन करूँ', यही विनम्रतापूर्वक गोविन्दजी इस बातको अनेक बार दुहरा चुके थे और मैं उन्हें टालनेके लिए केवल एक उत्तर दे दिया करता था, "हमारे सहायक वर्माजी तो हर आने आपके साथ हैं। उनसे काम लीजिये।" यद्यपि गोविन्दजीका वृत्तान्त विशाल भारतमें छप चुका था, पर मैं उन्हें [illegible] एक धनिकी व्यापारी ही समझा करता था। इसलिए सोचता कि उनके हमारे बीचमें ऐसा कोई विषय हो ही क्या सकता है, जिस पर हम दोनों दिल खोलकर बातचीत कर सकें। शुष्क दार्शनिक विषयमें रसकी कल्पना करना मेरे लिए बालूमेंसे तेल निकालनेकी कल्पनाके समान था। मेरा यह ख्याल भी था कि गोविन्दजी अपने व्यापारके लिए घूमते-फिरते हैं और उनकी मुस्कराहट कृत्रिम है और उसके पीछे कोई स्वार्थभावना है। इसलिए गोविन्दजीके अनेकों बार हमारे कार्यालयमें आनेपर भी मैं उनसे अलग ही-अलग रहा और शिष्टाचारके सिवा और कुछ बातचीत नहीं होने पाई। पर गोविन्दजीने अमेरिकामें पन्द्रह वर्ष योंही नहीं बिताये हैं। वे चौबेजीकी कमजोरी ताड़ गये और उन्होंने कहा, 'पंडितजी, एक बार ऐसा कीजिये कि सन्ध्याको हमारे यहाँ ही पधारकर बातचीत कीजिये। कुछ जलपानका प्रबन्ध भी कर लिया जायगा।' उन दिनों [illegible] के सिवा और किसी विषयमें दिलचस्पी नहीं रखता था और उन्होंने [illegible] लक्ष्य करता था, पर जो [illegible] भी जलपान करनेके लिए तैयार हो गये और गोविन्दजीका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वहाँ पहुँचकर हमें पता लगा कि गोविन्दजीने [illegible]

रसगुल्लेसे कई गुना अधिक माधुर्य है।

गोविलजी दरअसल व्यापारी नहीं हैं, वे कवि हैं, छन्द गढ़नेवाले कवि नहीं, बल्कि कल्पनाकी ऊँची उडान भरनेवाले व्यक्ति। भारतवर्षकी अशिक्षित जनताकी अन्धकारमय झोपड़ियोंमें ज्ञानका दीपक ले जानेके लिए इस देशमे जो महानुभाव प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हे इस बातका पता नहीं है कि इस दौडमे उनका एक ज़बरदस्त प्रतिद्वन्द्वी—प्रतिद्वन्द्वी नहीं सहायक इस समय ५४ न० चौरंगी कलकत्तेमें रह रहा है। गोविलजीका सबसे अधिक आकर्षक गुण उनका फक्कड़पन है। "कभी घी घना तो कभी मुट्ठीभर चना" के सिद्धान्तका अनुकरण करनेकी प्रवृत्ति उनमें विद्यमान है, बल्कि वे उससे आगे बढ़कर यह भी कहनेको तैयार हैं, "कभी वह भी मना।" यदि आज वे बारह-सौ रुपये महीने पाते हैं तो कल अपने आदर्शके लिए बारह आने रोज़ पर मजदूरी भी कर सकते हैं। श्रीमती गोविलजी फक्कड़शिरोमणि थोरोकी प्रशसक हैं और यद्यपि गोविलजी अपनेको मामूली गृहस्थ ही समझते हैं, पर हैं वे फक्कड ही।

हमारे यहाँ जनतामें और नेताओंमें भी लोगोंपर आशका करने की प्रवृत्ति बहुत पाई जाती है और किसी कार्यकर्ताके हृदयकी तहतक पहुँच कर उसको समझनेका भाव बहुत कम। अपना अपराध हम ऊपर स्वीकार कर चुके हैं। इस समय हिन्दी लाइनोटाइप गोविलजीका सबसे बड़ा काम माना जाता है पर दरअसल गोविलजी उसे विशेष महत्त्व नहीं देते। उनका मस्तिष्क साधारण जनताकी सेवाके लिए नित नये उपाय सोचा करता है। हम लोग सिनेमाओंके सुधारकी बातें बका करते हैं, पर व्यावहारिक रूपसे उस प्रश्न पर विचार कभी नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि सिनेमाओंके पूँजीपति संचालक हम लोगोंकी आलोचनाओं पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। पर गोविलजी कोरमकोर कल्पनाशील नहीं हैं। वे उस कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत करनेकी शक्ति भी रखते हैं। उनकी सिनेमाओंके सुधारकी स्कीम ऐसी है, जो व्यावहारिक है और यदि

जब दीनबन्धु सी० एफ० एंड्रूज हावड़ेपर रेलसे उतरे तो मैंने उनसे कहा कि गोविलजी आपको लेने आये हैं। गोविलजी उस समय पचास गजकी दूरीपर थे। मि० एंड्रूजने तुरन्त ही कहा—

"I would like to meet Govil just now. He was a most sincere worker in America."

कवीन्द्र रवीन्द्रके स्वागतार्थ गोविलजीने जो प्रयत्न अमरीकामें किया था, उसके लिए गुरुदेवने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। गुरुदेवने लिखा था:—

११७२, पार्क ऐविन्यू
दिसम्बर १५, १९३०

"प्रिय गोविल जी,

आपने मेरे लिए जो कुछ किया है, उसके लिए मैं आपको पर्याप्त धन्यवाद देनेमें असमर्थ हूँ। आपने जो कोई भी काम हाथमें लिया, उसका उत्तम ढंगसे प्रबन्ध किया और उसे गौरवपूर्ण सफलतासे पूरा किया। मेरे प्रति और मेरे उद्देश्यके प्रति आपकी निस्वार्थ भक्तिका मेरे हृदयपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। भगवान् आपका भला करे।

आपका प्रिय
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

गोविलजीके व्यक्तित्वमें अजीब आकर्षण है। अमेरिकाके सुप्रसिद्ध कलाकार ऐलबर्ट स्टर्नर आपके चेहरेको देखकर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने गोविलजीसे कहा कि हम आपका लाइफ-साइज़ पूरा चित्र बनावेंगे। गोविलजी राज़ी हो गये और गोविलजीका यह चित्र न्यूयार्क, फिलेडेलफिया, वाशिंगटन तथा अन्य नगरोंकी बड़ी-बड़ी प्रदर्शनियोंमें प्रदर्शित भी किया गया। यद्यपि अब गोविलजीके शारीरिक सौन्दर्यमें कमी आ गई है, पर उनका बौद्धिक और आत्मिक सौन्दर्य बढ़ गया है।

गोविलजी जो काम कर सके हैं, उसके श्रेयका ५१ फीसदी श्रीमती गोविलजीको मिलना चाहिए, क्योंकि उन्होंने आठ वर्षतक पियानो बजानेका

श्री नाथूरामजी प्रेमी

सबसे पहले प्रेमीजीके दर्शन इन्दौरमें हुए थे। स्थानका मुझे ठीक-ठीक स्मरण नहीं, शायद लाला जुगमंदरलालजी जज साहबकी कोठीपर हम दोनों मिले थे। इन्दौरमें महात्मा गान्धीजीके सभापतित्वमें सन् १९१८में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जो अधिवेशन हुआ था, उसीके आसपासका समय था। प्रेमीजीकी ग्रन्थ-मालाकी उन दिनों काफ़ी प्रसिद्धि हो चुकी थी और प्रारम्भमें ही उनके बारह सौ स्थायी ग्राहक बन गये थे। उन दिनों भी मेरे हृदयमें यह आकांक्षा थी कि हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालयसे मेरी किसी पुस्तकका प्रकाशन हो, पर प्रमादवश मैं अपनी कोई पुस्तक उनकी ग्रन्थ-मालामें आजतक नहीं छपा सका। सुना है जैन-शास्त्रोंमें सोलह प्रकारका प्रमाद बतलाया है। सत्रहवें प्रकारके प्रमाद—साहित्यिक प्रमाद—का प्रेमीजीको पता ही नहीं! इसलिए पच्चीस वर्ष तक वे इसी उम्मीदमें रहे कि शायद उनकी ग्रन्थ-मालाके लिए मैं कुछ लिख सकूँगा।

प्रेमीजीका यह बड़ा भारी गुण है कि वे दूसरोंकी त्रुटिके प्रति सदा क्षमाशील रहते हैं। अनेक साहित्यिकोंने उनके साथ घोर दुर्व्यवहार किया है, पर उनके प्रति भी वे कोई द्वेष-भाव नहीं रखते।

प्रेमीजीके जीवनका एक दर्शनशास्त्र है, उसे संक्षेपमें हम यों कह सकते हैं—खूब डटकर परिश्रम करना, अपनी शक्तिके अनुसार कार्य हाथमें लेना, अपने वित्तके अनुसार दूसरोंकी सेवा करना और सबके प्रति सद्भाव रखना। यदि एक वाक्यमें कहें तो यों कह सकते हैं कि प्रेमीजी सच्चे साधक हैं।

पिछले तैंतीस वर्षोंमें प्रेमीजीसे बीसियों बार मिलनेका मौक़ा मिला

मेरी समझमें आपके रहनेसे पत्रकी दशा अच्छी हो जायगी और आपको भी अपने विचार प्रकट करनेका उपयुक्त क्षेत्र मिल जायगा। गांधीजीके पास रहनेका सुयोग अनायास प्राप्त होगा।

पत्रका आफ़िस अहमदाबादमें या बम्बईमें रहेगा।

गुजरातीकी १५ हजार प्रतियाँ निकलती है। हिन्दीकी भी इतनी ही या इससे अधिक निकलेंगी। पत्रोत्तर शीघ्र दीजिये।

भवदीय—

नाथूराम

यद्यपि पत्रका प्रारम्भ 'प्रिय महाशय' और अन्त भवदीयसे हुआ है, तथापि उससे प्रेमीजीकी आत्मीयता स्पष्टतया प्रकट होती है। प्रेमीजी जानते थे कि राजकुमार कालेज, इन्दौरकी नौकरीके कारण मुझे अपने साहित्यिक व्यक्तित्वको विकसित करनेका मौक़ा नही मिल रहा था। इसलिए उन्होंने महात्माजीके हिन्दी 'नवजीवन'के लिए मेरी सिफ़ारिश करके मेरे लिए विचारोंको प्रकट करनेका उपयुक्त क्षेत्र तलाश कर दिया था। खेदकी बात है कि मैं उस समय नवजीवनमें नही जा सका। मै गुजराती बिल्कुल नही जानता था, इसलिए मैंने उस कार्यके लिए प्रयत्न भी नहीं किया। आगे चलकर बन्धुवर हरिभाऊजीने, जो गुजराती और मराठी दोनोंके ही अच्छे ज्ञाता है, बड़ी योग्यतापूर्वक हिन्दी-'नवजीवन'का सम्पादन किया। शायद मेरी मुक्तिकी काललब्धि नही हुई थी। प्रेमीजीके उक्त पत्रके सालभर बाद दीनबन्धु एंड्रूजके आदेशपर मैंने वह नौकरी छोड़ दी और उसके सवा साल बाद महात्माजीके आदेशानुसार मै बम्बई पहुँच गया, जहाँ कई महीने तक प्रेमीजीके सत्संगका सुअवसर मिला।

आत्मीयताके साथ उपयोगी परामर्श देनेका गुण मैंने प्रेमीजीमें प्रथम परिचयमे ही पाया था, और फिर बम्बईमें तो उन्हीकी छत्रछायामें रहा। कच्चा दूध अमुक मुसलमानकी दुकानपर अच्छा मिलता है, दलिया वहाँसे

किफायतशारीके कारण ही वे स्वाभिमानकी रक्षा कर सके है। यही नही, कितने ही लेखकोको भी उनके स्वाभिमानकी रक्षा करनेमें वे सहायक हुए है।

प्रेमीजीका सम्पूर्ण जीवन संघर्ष करते ही बीता है और जब उनके आरामके दिन आये, तब दैवी दुर्घटनाने उनके सारे मनसूबोपर पानी फेर दिया। दैवकी गति कोई नही जानता। ईश्वर ऐसा दुःख किसीको भी न दे। उक्त वज्रपातका समाचार प्रेमीजीने हमें इन शब्दोमें भेजा था—

"मेरा भाग्य फूट गया और परसो रातको १२ बजे प्यारे हेमचन्द्रका जीवन-दीप बुझ गया। अब सब ओर अन्धकारके सिवाय और कुछ नही दिखलाई देता। कोई भी उपाय कारगर नही हुआ। बहूका न थमने-वाला आक्रन्दन छाती फाड रहा है। उसे कैसे समझाऊँ, समझमें नही आता। रोते-रोते उसे गश आ जाते है। विधिकी लीला है कि मैं साठ वर्षका बूढा बैठा रहा और जवान बेटा चला गया। जो बात कल्पनामे भी न थी, वह हो गई। ऐसा लगता है कि यह कोई स्वप्न है, जो शायद झूठ निकल जाय।"

आजसे चौदह वर्ष पहले यही वज्रपात हमारे स्वर्गीय पिताजीपर हुआ था। हमारे अनुज रामनारायण चतुर्वेदीका देहान्त ६ अक्टूबर सन् १९३६को कलकत्तेमे हुआ था। अपने पिताजीकी स्थितिकी कल्पना करके हम प्रेमीजीकी घोर यातनाको कुछ-कुछ अन्दाज़ लगा सके।

"Who never ate his bread in sorrow
Who never spent the midnight hours
Weeping and waiting for the morrow
He knows you not, Ye, heavenly powers"

अर्थात् "ऐ दैवी शक्तियो! वे मनुष्य तुम्हें जान ही नही सकने,

सुर्दारिनी और बम्बई प्रवासके वे चालीस वर्ष, जिनमें सुख-दुःख गार्हस्थ्य आनन्द और दैवी दुर्घटनाओंके बीच यह अद्भुत आत्मनिर्माण, बुंदेलखंडके एक निर्धन ग्रामीण बालकका प्रसिद्ध भारतके सर्वश्रेष्ठ हिन्दी प्रकाशकके रूपमें आत्म-निर्माण—निस्सन्देह साधक प्रेमीजीके जीवनमें प्रभावोत्पादक फिल्मके लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। उस साधकको शतशः प्रणाम!

१९४९]

गुरुता अब मालूम होती है। काश, उस समय मैंने उसे उत्साहित किया होता और आगे बढने दिया होता ! अब तक तो उसके द्वारा न जाने कितना साहित्य-निर्माण हो गया होता।"

जो पछतावा प्रेमीजीको है, वही मुझे भी। इन गुरुतम अपराधोंका प्रायश्चित्त भी एक ही है वह यह कि हम लोग प्रतिभाशाली युवकोंको निरन्तर प्रोत्साहन देते रहे।

प्रेमीजीने अपने परिश्रमसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश इत्यादि भाषाओं-की जो योग्यता प्राप्त की है और साहित्यिक तथा ऐतिहासिक अन्वेषण-कार्यमें उनकी जो गति है, उनके बारेमें कुछ भी लिखना हमारे लिए अनधिकार चेष्टा होगी। मनुष्यताकी दृष्टिसे हमें उनके चरित्रमे जो गुण अपने इस तीस वर्ष व्यापी परिचयमें दीख पड़े हैं, उन्हींपर एक सरसरी निगाह इस लेखमें डाली गई है। डटकर मेहनत करनेकी जो आदत उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवनमें ही डाली थी, वही उन्हें अब तक सम्हाले है। अपने हिस्सेमें आये हुए कार्यको ईमानदारीसे पूरा करनेका गुण कितने कम बुद्धिजीवियोमें पाया जाता है। अशुद्धियोंसे उन्हें कितनी घृणा है, इसका एक करुणोत्पादक दृष्टान्त उस समय हमारे सम्मुख आया था, जब हम स्वर्गीय हेमचन्द्र विषयक संस्मरणात्मक पुस्तक बम्बईमे छपवा रहे थे। दूसरे किसी भी भावुक व्यक्तिसे वह काम न बन सकता, जो प्रेमीजीने किया। प्रेमीजी बडी सावधानीसे उस पुस्तकके प्रूफ पढते थे। पढते-पढते हृदय द्रवित हो जाता, पुरानी बातें याद हो आती, कभी न पुरनेवाला घाव असह्य टीस देने लगता, थोडी देरके लिए प्रूफ छोड़ देते और फिर उसी कठोर कर्तव्यका पालन करते।

वृद्ध पिताके इकलौते युवक पुत्रके संस्मरण-ग्रंथके प्रूफ देखना ! कैसा घोर संतापयुक्त साधनामय जीवन है महाप्राण प्रेमीजीका !

बाल्यावस्थाकी वह दरिद्रता, स्व० पिताजीकी वह परिश्रमशीलता, कुडकी करानेवाले साहूकारकी वह हृदयहीनता, छ-सात रुपयेकी वह

पंडित जयरामजी

सन् १८७४—

कोटलेके ग्राम-स्कूलमें आज बडी चहल-पहल है। इन्सपेक्टर साहब मि० लाइड वार्षिक परीक्षा लेने आनेवाले है। मुदर्रिसोंके दिलमे बड़ी धुकधुकी मची हुई है। प० वासुदेव सहाय सब-डिप्टी-इन्स-पेक्टर साहब उन्हे आदेश दे रहे है कि किस तरह परीक्षा दिलानी चाहिए। इतनेमें प० वासुदेवसहायकी दृष्टि एक तीक्ष्णबुद्धि बालकपर पड़ी। उन्होंने अध्यापक महोदयसे कहा—"देखिये पडितजी, इसे ऊँची दफाके साथ पढनेको खडा कर दीजिए। यह बुद्धिमान् है।" यही किया गया।

इन्सपेक्टर लाइड साहबने उक्त विद्यार्थीसे कहा—"पुस्तक पढकर सुनाओ।"

लड़केने पढकर सुनाया—"दाबह 'चज' उस धरतीका नाम है, जो चिनाब और झेलमके बीचमें है।"

साहब—"इसका मतलब कह सकता है?"

विद्यार्थी—"चिनाव कौ च लयौ और झेलम कौ ज लयौ—चज बनि गयौ।"

साहबने मुँहमें उँगली दी। डिप्टी-इन्सपेक्टर चकित हुए, सब-डिप्टी-इन्सपेक्टर खुश हुए, मुदर्रिसोंके हर्षका क्या कहना और लडके आश्चर्यमें एक दूसरेका मुँह देखने लगे। ग्राम और ज़िले-भरके मुदर्रिसी-आसमानमें शोर मच गया और यह घटना जगह-जगह दुहराई गई।

आप पूछेंगे—"यह चतुर बालक, जिसने ऐसा बढिया जवाब दिया, कौन था?" यह थे श्रीधर पाठक, जो आगे चलकर खडी बोलीके आचार्य बने, और पाठकजीकी भावी उन्नतिके मूल कारणोंमें थे उनके पूज्य गुरु

ग्राम-पाठशालाओंमें भी नही रहे। अगरेज़ी स्कूलो तथा कालेजोंके अध्यापकोंके विषयमें तो कहना ही क्या है, अपने शिष्योके भविष्यके विषयमें उन्हें विशेष चिन्ता नही।

मई सन् १९२० मे मुझे पद्मकोटमे स्वर्गीय प० श्रीधर पाठककी सेवामें लगभग दो सप्ताह रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय प० जयरामजीका ज़िक्र आनेपर पाठकजीने उनकी बड़ी प्रशसा की। मैंने उनसे अनुरोध किया कि प० जयरामजीके विषयमें मुझे कुछ लिखा दीजिए। उन्होने कहा, अच्छा लिखो, और निम्न-लिखित पक्तियाँ बोलकर लिखाईं—

"पूज्य प० जयरामजी उन हिन्दुस्तानी ग्रामीण सज्जनोंके नमूना थे, जिनके कारण ग्राम्य समाज अपना गौरव-युक्त स्थान सुरक्षित किये हुए है। उनमें वे सब गुण थे, जो एक साधारण मनुष्यको सच्चे मनुष्यत्वकी पदवी प्रदान करते है। सबसे प्रथम उनके गुणोंमें गणनीय उनका स्वास्थ्य था। उनका भव्य मुखमडल—जिसमें बुद्धिकी तीव्रता, सात्त्विक भावव्यंजक मस्तककी विशालता, आन्तरिक महत्त्व-प्रदर्शक नेत्रोंकी तेजस्विता, गौरवर्णकी समुज्ज्वलता-सहित अपनी-अपनी सत्ताका स्वतन्त्र रीतिसे साक्ष्य देती थी—उनके मित्र और शिष्य-वर्गके हृदय-पर शाश्वत प्रभाव उत्पन्न करनेकी शक्ति रखता था। वे सब प्रकारकी सहनशीलताकी मूर्ति थे। मुझको उनमें कोई भी अवगुण दृष्टि नही आता था। वे प्रायः अपने सिरको एक सफेद रगकी बडी पगड़ीसे विभूषित रखते थे, लम्बा अंगा पहनते थे और जहाँ वह जा निकलते थे, प्रतिष्ठित गौरवका रूप बँध जाता था। जो उनको देखता था, रौबमें आ जाता था और उनकी इज्ज़त करता था। एक दफा पंडितजीकी आगरा-कालेजके बोर्डिंग-हाउसमें वहाँके सुपरिण्टेण्डैण्ट मास्टर सालिग-रामसे मुलाकात हुई। मास्टरजीके पूछनेपर कि आप कब तशरीफ लाये, उन्होंने जवाब दिया—"हूँ सा ब चारि बजेकी गाड़ीपै आयो हो।"

हमारे एक साथी थे, जिनका नाम था नन्दराम[1]। उनके पिताजीकी यह हालत थी कि थोड़े-से चने पोटलीमें लेकर बजी किया करते थे और आवाज़ लगाते—"टाट, कम्बल, गुड़हर, लोहा, तामा, बीनन, दमड़ी छदाम।" न वे फ़ीस दे सकते थे और न किताबें ही मोल ले सकते थे[1]।

पंडितजीने पढ़नेका हम लोगोंको खूब शौक दिला दिया था। आपसमें एक दूसरेसे होड करा दिया करते थे कि देखें कौन ज्यादा पढ़ ले! जब छुट्टियोंमें घर जाते, तो इस प्रकारके सवाल बोल जाते थे—

(१) एक बनियेकी बरातमें बनिये, ब्राह्मण और ठाकुर आये। लडकेवालेने सौ थालियाँ इकठ्ठी की। सौ ही बराती आये थे। ब्राह्मणोंने कहा, हम एक-एक ब्राह्मण चार-चार थाली लेंगे। ठाकुरोंने कहा, दो-दो हम भी लेंगे। तब बनियोंने सोचा कि विवाह तो हम बनियोंका बिगड़ा जाता है, इसलिए उन्होंने कहा कि हम चार-चार बनिये एक ही थालीमें खायेंगे।

---

[1]इस विषयमें पं० जयरामजीके एक अन्य शिष्य पं० हज़ारीलालजी चतुर्वेदीने लिखाया है—"पं० नन्दरामजीके माता-पिताको अकसर भूखे रह जाना पड़ता था। नन्दरामजीकी माँ अपने चूल्हेमें झूठ-मूठ आग जलाकर धुआँ कर देती थीं, जिससे मुहल्लेवाले यह न जान पावें कि उनके घरमें भोजन नहीं बना है। ग़रीबी ऐसी भीषण थी कि नन्दरामजी कभी कभी गायोंको दी हुई रोटी खाकर अपना पेट भरते थे। वे अकसर घरोंमें सीधा लेने चले जाते और मदरसे देरसे पहुँचते। एक दिन देरसे मदरसे पहुँचनेपर पंडितजीने जब कारण पूछा, तो उनको ग़रीबीका पता चला। पंडितजी उसी समय बोले, "अच्छा, आजसे तू यहीं खाइबौ कर और जो कऊँ अब देरिमें आयौ तौ गंगा बुआई ऐसी मार लगाऊँगो।" तबसे नन्दरामजी पंडितजीके ही चौकेमें भोजन करते थे और वहीं पढ़ते थे। आगे पढ़-लिखकर पं० नन्दरामजी फीरोजाबादके अंगरेजी मिडिल स्कूलके हेडमास्टर हो गये और बड़ी शानकी हेडमास्टरी की।"

यह गच्छ निकालनेका कायदा है।

चौबे लोगोके विषयमें उनका एक सवाल था—

"पाव सवाये घौटें भग
आधे वैठे देखै रग
षष्ठमाशके खाय अफीम
वाइस गये जमुनके तीर
मानुप सख्या कितनी भई।
सो तुम हमसे कहियो सही।"

"आधी कीच, तिहाई जलमें, दसमे हिसा सिवार,
वामन गज ऊपर रही, सिला कितक विस्तार।"

"राधिका मोहन प्रीति करी इक पकज-राशि करी जलमें,
तीजी हिसा शिव शीश धरे और पचम विष्णुके पूजनमे,
चौथो हिसा जगदम्वै दयो रविको पट् भाग दयो मनमें,
शेष रहे छै फूल तहाँ सो कहो सब कितने गिन्तिनमें।"

पडित जयरामजी वडे मनोरजक ढगसे पढाते थे। सबको हँसाते-खिलाते पढा दिया करते थे। वीच-वीचमे ऐसी वाते कहते जाते थे कि हम सव वहुत खुश होते थे। एक वार उन्होने सुनाया—"एक पटवारी जोड लगा रहा था। कहता जाता था—इक्यानवेकी एक, हाथ लागी ९, वहत्तरकी दो, हाथ लागी ७, पचासीकी पाँच, हाथ लगी ८। किसानोने देखा कि पटवारी आप तो आठ-आठ नौ-नौ हाथ लगाता है और हमें एक-एक दो-दो में टरकाता है, सो उन्होने पटवारीको ठोक डाला।"

रेखागणित, वीजगणित, हिसाव, पैमाइश—इन चारोको रियाज़ी कहा जाता है, सो लोग कहा करते थे कि प० जयरामजीने रियाज़ीको पाजी वनाके छोड़ दिया है, इस कदर इन विषयोमें वे होशियार थे। वीज-गणितके वर्गसमीकरण मूलसमीकरण और अनेकवर्गसमीकरण मैंने

कोंसे पूछते थे—"तू कै रोटी खाउगो ?" उत्तरमे किसीने कहा—"चार", तो उसे तीन रोटी ही दी जाती थी। कहा करते थे—"खाग्रो चाहे चार पोत, पर थोडा-थोड़ा खाग्रो।" लडकोंके दुख-दर्दका खास ख्याल रखते थे। उनके बीमार पडनेपर उनके घरपर जाया करते थे। पढ़ने-लिखनेकी हालतमें उन्होंने लडकोको स्वतन्त्रता दे रखी थी कि धूप, छाया चाहे जहाँ बैठकर पढो। डिप्टी-इन्सपेक्टर चौबे कुजविहारीलाल उनसे बहुत खुश रहा करते थे। चौबेजीसे उन्होंने कह दिया था—"पढाऊँगा मैं, और नौकरी आपको देनी पड़ेगी।"

अपने पढाये हुओंके कामको अगर कुछ उन्नीस सुनते, तो उन्हे बडा खेद होता। एक बार उन्होंने कहा—"मैंने . . .को लादूखेड़ेमें मुदर्रिस बनाकर भिजवाया है; पर उसका काम उन्नीस सुना जाता है। अगर मुझे पहलेसे ऐसा मालूम होता, तो मै गनेसाको भेजता। वह लादूखेडेको देवखेड़ा बना देता।" जहाँ-जहाँ काम बिगड़ा, उन्होंने मुझे भिजवाया। कह देते थे—"भेज देउ गनेसाकों।" उनके आशीर्वादसे हमने बिगड़े मदरसोको बनाया और उनके आशीर्वादसे ही नाम पाया। पडितजी बड़े प्रात.काल ही स्नान कर लिया करते थे। मेले-तमाशेमें कभी न जाते थे। जब कभी हम लोग बहुत ज़िद करते, तो हम लोगोको लेकर जाते और थोड़ी देर देख-भालकर हम लोगोंको पीछे छोड आते। अपने कामको मुख्य समझते थे।

५९ वर्ष पहलेका—सन् १८७५ का—दृश्य अब भी मेरी आँखोके सामने है। मै पढ-लिखकर ६) रुपये महीनेपर मुदर्रिस हो गया था। जब मुझे पहले महीनेकी तनख्वाह मिली, तो छुट्टीके दिन मै पडितजीकी सेवामें पहुँचा। उनके चरण छुए और पहले महीनेकी तनख्वाह उनकी भेंट की। उन्होंने हाथसे छूकर मुझे आशीर्वादके साथ वापस कर दी और कहा—"जा बेटा, पहले डोकरा (जमनादासजी, मेरे पूज्य) को दीजे।" उसके बाद जब मैंने उन्हे उनके नायब मुदर्रिसोके साथ निमन्त्रण

हैं। पाँच-पाँच सौ रुपये पानेवाले प्रोफ़ेसरोंसे नहीं, हज़ार पानेवाले प्रिंसिपलोंसे नहीं, बल्कि पन्द्रह-बीस पानेवाले और बिना किसीके जाने अपने जीवनको खपा देनेवाले उन ईमानदार ग़रीब मुदर्रिसोंसे ही इस भूमिका गौरव है। वे ही इस भव्य-भवनकी आधारशिला हैं; उस विशालतर भव्य-भवनकी, जिसका आगे चलकर कभी निर्माण होगा। ऐसे पूज्य शिक्षकोंको हमारा सादर पालागन।

जून १९३४]

लिए ईर्ष्याकी वस्तु है, उस अमर शहीदको अकस्मात् ही मिल गई थी ? नहीं, वह तो उनकी उत्कट साधनाका परिणाम थी—मानो उनका समस्त जीवन उसकी तैयारीके लिए अर्पित था। अमरता ऐसी चीज़ नहीं, जो किसी बाज़ारमे और इतनी सस्ती मिल सके। उस महापुरुषका सजीव जीवन-चरित तो कोई उनके पथका पथिक ही लौह-लेखनीसे लिखेगा। हमारे जैसे कापुरुषके कॉपते हुए हाथमें भला वह ताकत कहाँ, जो भारतीय इतिहासकी स्मृतिमे अपनी अमिट-रेखा खीच जानेवाले उस वीर-शिरो-मणिका रेखा-चित्र भी खीच सके ?

प्रातः काल चार बजेका समय है। जाड़ेके दिन हैं। फुलेना बाबू उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो, सरसोका तेल मलकर, हज़ार-डेढ हज़ार दड-बैठक लगा रहे है। तत्पश्चात् मुग्दरो और डम्बलोका नम्बर आता है। शरीर खूब कस गया है। उन वृषभ-स्कन्ध, विशाल वक्षस्थल और मासल भुजाओपर कोई पेशेवर पहलवान भी मुग्ध हो सकता है। व्यायामके बाद वे चने खाते और तत्पश्चात् दूध पीते है। फिर अपने देशसेवा-सम्बन्धी कार्यमें लग जाते हैं। कभी किसानोका काम है तो कभी मज़दूरोका। दिन-भर परिश्रम करके वे अपने-आपको थका डालते हैं। ग्यारह बजे सोना और चार बजे उठ बैठना उनका नित्यका नियम है।

रातका वक्त है। फुलेना बाबू छतपर निरन्तर टहल रहे हैं। उम्र उस समय चौबीस वर्षकी है। विवाह हुए दो वर्ष हुए और तत्पश्चात् दो वर्ष गृहस्थका जीवन व्यतीत कर उन्होने ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया है। उनका विश्वास है कि संतान-पालन और देश-सेवा दोनो एक साथ नहीं हो सकते। दोनोको एक साथ ईमानदारीसे नही चलाया जा सकता। बराबर वे गुनगुना रहे हैं—'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन-सीताराम।' फिर कविवर मैथिलीशरण गुप्तकी कविताका पाठ करते हैं—

एक बार पशुओंके खानेके लिए नौकर चारा काट रहे थे तो आप भी गये और लगे काटने। अँगुली काट डाली और बड़े मजेमें घरके पीछे बागमें बैठकर खून गिरा रहे थे कि उधरसे उनकी बुआ आ निकली और रो उठी! उन्हें कलेजेसे चिपटाकर वे उस खूनको देख सहमी खडी थी, जब कि उन्होंने हँसकर कहा—"देख, कितना लाल है बुआ! इसमें हम अपनी माँकी धोती रँगेंगे।" मिट्टीके गढ़ेमें कटी हुई अँगुलीका खून देखकर घर-भर कराह उठा, पर उनको लगता था कि कुछ हुआ ही नहीं! फिर उसमें पिताजीने पट्टी बाँधी और वे खेलने चले गये। आज भी पचलखी ग्रामके निवासी उन वीर बालककी याद कर लेते है।

बगलमें बस्ता दावे उस देहाती सड़कपर अकेले, एक लाइनसे नित्यप्रति छै मील ज़मीन पार करके जाना और आना यही उनके जीवनका क्रम था। न किसीसे बोलना, न चालना। स्कूलके लड़के चिढाते थे— "ओहो, योगिराज है आप! हम गरीबोंसे क्यो बोलने लगे!" इने-गिने ही साथी थे उनके। अन्य लड़के उन्हें कहते थे झेंपू! बड़े होनेपर उनका कथन था कि मेरी झेंपनेकी आदतने ही स्कूली दुराचारोंसे मेरी रक्षा कर दी।

हाईस्कूलकी परीक्षाके समय छोटा भाई इतना बीमार हो गया कि दिन-रात वे उसकी सेवामें जुट गये। उसके परिणाम-स्वरूप वे खुद बीमार पड गये और इसी अवस्थामें परीक्षा दी। फेल हो गये। जिस पर प्रथम बार ही वे धैर्य खो कर रो पड़े थे और फिर दूसरे सालकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये।

उनकी माताजीका कहना है कि घरमें किसीके बीमार हो जानेपर तो मँझले बाबू सब काम छोडकर उसकी सेवामें लग जाते थे। माँके सिरमें तेल लगाना तो उनका सबसे प्रिय कार्य था। उमर बढनेपर जिन भाभियोंसे बोलते तक नही थे (बड़े शर्मीले थे), वे भी यदि बीमार होतीं तो सिरमें तेल लगाना, दवा पिलाना, रात-भर जागना, यह उन्हींका काम था।

बिल्कुल नगे बदन आदमी सो रहे है। भीषण दृश्य था दरिद्रताका, जिसे देखकर वे सहम गईं। घर आकर श्रीवास्तवजीने उस कोटके कपड़ेको लौटा दिया और छोटे-छोटे मजदूर बच्चोंके लिए कपड़े खरीद लाये। इस सच्ची शिक्षाका वे विरोध न कर सकी। फुलेनाप्रसादके जीवनका यही क्रम था। मुँहसे न कहकर खुद आँखोंसे वे साक्षात् परिचय करा देते थे। उनका कहना था कि जिस देशमें लाखो नर-नारी जीवनकी साधारण आवश्यकताओंसे वंचित है, करोडो आधे-पेट दम तोड़ रहे है, वहाँ कुछ व्यक्तियोंका ऐशो-आराममें फँसा रहना घोर पाप है, जघन्य अपराध है।

उस तेजस्वी पुरुषके असाधारण व्यक्तित्वको शब्दोमे बाँध देना कोई आसान काम नही। जिस अमर-आत्माके प्रयाणके ४८ घंटे बाद भी शरीर सजीव-सा लग रहा था, चितापर रक्खे हुए भी जिनके मुँहसे ऐसा नहीं मालूम होता था कि कुछ हुआ है, मूँछे ऐंठी हुई थी, काली आँखें खुली हुई थी, चेहरे और आँखोपर मुस्कराहट थी, उसके सयमकी कल्पना ही की जा सकती है। मानो उन्होने अपने-आपको कठोर नियमो में आजके ही लिए कसा था। उनका भोजन-सम्बन्धी नियम जो किसी भी ब्रह्मचर्य-व्रतधारीके लिए अनिवार्य है, इसी पूर्णाहुतिके लिये था। वे प्राय. गेहूँका दलिया खाते थे, दूध और फलोका सेवन करते थे और रातमें बिना नमकका खाना खाते थे। उनका मुस्कराता हुआ चेहरा उनके अन्तस्तलका प्रतीक था। सक्षेपमें इतना कहना पर्याप्त होगा कि जो अमरता उन्हे मिली, वह उनके सम्पूर्ण जीवनकी साधनाका अवश्यम्भावी परिणाम थी।

उनकी अर्द्धाङ्गिनी

अमर शहीद फुलेनाप्रसादका यह रेखाचित्र अधूरा ही रह जायगा, यदि उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती तारा रानीका कुछ वृत्तान्त यहाँ न दिया जाय। श्रीमती तारा रानीमें जो कुछ भी योग्यता, संगठन-शक्ति अथवा कार्यशीलता

श्रीयुत 'भूगोल'

अररर छप !

रातके कोई साढ़े नौ बजे होंगे। महीना सितम्बरका था। जमनाजी भरी चली जा रही थी। अथाह जल था। बीच पुलसे कोई चीज़ जमनाजीमें गिरी और आवाज़ हुई अररर छप! काफी अँधेरा था। एक महानुभाव जमनाजीके किनारे स्नान करनेके लिए गये हुए थे। उन्होंने समझा कि बदमाशोंने किसीको जमनाजीमें ढकेल दिया है। तुरन्त ही आवाज़ दी, "कौन है। मैं आता हूँ, डरना नहीं।" पर उसका जवाब कुछ नहीं मिला। उन महानुभावको यह डर था कि जिन बदमाशोंने उस आदमीको ढकेला है, वे कहीं हमारा भी पीछा न करें। ज्यादा सोचने विचारनेका वक़्त नहीं था। लँगोट पहनकर आप कूद पड़े। कुरतेकी जेबमें दोसौ रुपये के नोट थे, वे आपने वहीं किनारेपर छोड़ दिये। बहुत दूर तक तैरते-तैरते कुछ न दिखाई दिया, फिर थोड़ा और आगे बढ़कर काला सिर दिखाई दिया। पर यह ज्ञात न हो सका कि आदमी है या कोई और चीज़। पीछे पहुँचकर धक्का दिया, तब मालूम हुआ कि कोई आदमी ही है। धीरे-धीरे ढकेलते-ढकेलते उसे किनारेकी ओर लानेका प्रयत्न करने लगे। साथ ही यह भी डर था कि कहीं कोई पागल न हो, और वह उन्हें भी पकड़के न डुबो दे! आध मीलपर जाके दोनों किनारे लगे। तब पता लगा कि जिसको उन महानुभावने निकाला था, वह एक स्त्री है। सिर उसका मुड़ा हुआ था। विधवा थी। वैधव्यसे दुःखी होकर अपने गहने-पाते एक प्रयागवाले पण्डेको सौंपकर अपने प्राण देनेके लिए वह जमनाजीमें कूदी थी!

जब उस स्त्रीको होश हुआ, तो उसने उन महानुभावसे कहा तुमने

करनेमें आपको बड़ा आनन्द आता है। विद्यार्थी अवस्थामें भी आप प्रति वर्ष कहीं-न-कहीकी यात्रा अवश्य करते रहे। बी० ए० पास करने और ट्रेनिंग कालेजसे छुट्टी होनेके बाद सन् १९२० में आपने राजपूतानेकी रियासतों तथा गुजरात और काठियावाड़में पर्यटन करनेका निश्चय किया, पर दो महीनेकी इस लम्बी यात्राके लिए आपके पास केवल पचास रुपये थे। तीसरे दर्जेके किरायेके बाद शायद आठ रुपये और बचते थे। इसलिए आपने रेलके किरायेके अतिरिक्त और किसी तरहकी सवारीपर कोई खर्च नही किया! भोजनपर भी आप औसतसे दो ढाई आने रोजसे अधिक खर्च नही करते थे। यदि किसी बड़े शहरमें पेट न भरनेके कारण दो एक आने अधिक खर्च हो जाते तो आप उस शहरसे दो एक स्टेशन पैदल चलकर रेलगाड़ीपर चढते। द्वारिकाजीके लिए उन दिनो रेल नहीं थी, इसलिए आप पोरबन्दरसे द्वारिकाको पैदल गये, और फिर वहाँसे जामनगरके रास्ते लौटे। फिसलनी ज़मीनपर पैर दबाकर चलना पड़ता था, पर पैर ज़ोरसे ज़मीनपर जमते ही कोई न कोई मज़बूत काँटा टूट जाता था। १७० मील-की पैदल यात्राके बाद रेल तक पहुँचते-पहुँचते दोनों पैरोंमें पन्द्रह-बीस काँटे चुभे पड़े थे। इस यात्राके बाद जब आप सत्याग्रह आश्रममें तीन दिनके लिए ठहरे तो आपको वहाँका जीवन वैसा ही सुखमय प्रतीत हुआ, जैसा कि एक रेगिस्तानी चरवाहेको हरे-भरे मैदानका जीवन प्रतीत होता है। इस यात्रामें आप बिल्कुल अकेले थे। इसके बाद आपने दूसरे वर्ष मध्य प्रान्त, बम्बई, मदरास और दक्षिण भारतकी यात्रा की। तीसरे वर्ष संयुक्त प्रान्त, बिहार और आसाममें घूमे और अगले वर्ष पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, सीमाप्रान्त और काश्मीरमें भ्रमण किया। इसके बाद आपने सीलोनका सफर किया और आजकल आप विलायतकी यात्रा पर गये हुए है।

इन यात्राओंने आपमें भूगोलकी ओर विशेष प्रेम उत्पन्न कर दिया। यही विषय आपको पढाना भी पड़ता था। पर विद्यार्थी अंग्रेजीकी विवर-

मार्गमें बाधक है। इसी कारण योरोपकी भिन्न-भिन्न भाषाओमें प्रकाशित इस विषयका साहित्य तथा पत्रिकाएँ नही मँगाई जा सकती। इधर तो श्रीरामनारायणजी मिश्रको धनकी चिन्ता थी, और उधर पुलिसवालोको शायद यह शक हो गया कि उन्हे बोल्शेविक रूससे सहायता मिलती है! फिर क्या था, आपकी डाक खुफिया पुलिसके दफ्तरमे जाँचके लिए जाने लगी। बलोचिस्तान, सीमाप्रान्त तथा बर्माकी यात्रामे आपके साथ ऐसा व्यवहार किया गया, मानो आप कोई खूनी क्रान्तिकारी हो। पुलिसका यह भ्रम सम्भवत. अब दूर हो गया है, और आपको अपनी डाक वक़्त पर मिलने लगी है!

इधर हिन्दी जनताकी उपेक्षासे भी मिश्रजीको काफी हानि उठानी पड़ी है। यद्यपि मध्यप्रान्त, बरार, बिहार, उडीसा, सयुक्त प्रान्त, पजाब आदिके शिक्षा-विभागोने भूगोलको अपने स्कूलोके लिए स्वीकृत कर लिया है, पर इस स्वीकृतिसे आर्थिक लाभ तभी हो सकता है, जब हेडमास्टर और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्यूनिसिपल बोर्डके अधिकारी लोग भूगोल खरीदें। लेखकोकी कमी भी उनके मार्गमें बाधक रही है और कभी-कभी उन्हे ही सब लेख लिखने पडे है!

पिछली बार जब मिश्रजी कलकत्ते पधारे थे, तो उनसे बहुत देर तक बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी यात्राओंका मनोरंजक वृत्तान्त सुना। सीलोनकी यात्रामे जब उनकी मोटरबस बत्तीकोला जा रही थी, उलट गई। मिश्रजीके चोट आई, पर जान बच गई। मिश्रजी बड़े सकोचशील है, अपने विषयमें पत्रोमें कुछ भी छपाना पसन्द नही करते। जब मैंने उनसे प्रार्थना की—"'लीडर'में स्थानीय खबरोमे एक स्त्रीकी जान बचानेके बारे मे जो चार-पाँच लाइनका नोट छपा था, उसका सारा हाल कहिए" तब बहुत आग्रह करनेपर आपने सब बातें बतलाईं। मैंने पूछा, "फिर उस स्त्रीका क्या हुआ?" मिश्रजीने कहा—"पहले तो हम लोगोने यह विचार किया कि उसे विधवा आश्रममें रख दें। सहगलजी

यह है अख्तर हुसैन रायपुरीके बचपनकी एक झलक और उन्हींके शब्दोंमें !

- बन्धुवर अख्तर हुसैनको खूब अनुभव हुए हैं और खासे गम्भीर अनुभव, और इन्ही अनुभूतियोके कारण उनकी भाषामें और उनके भावोंमे एक प्रकारका निरालापन तथा प्रवाह पाया जाता है, जो अन्यत्र बहुत कम देखनेको मिलता है। पर इन कटु अनुभवोंने अख्तरके जीवनमें कटुता उत्पन्न नही की, दृढ़ता अवश्य उत्पन्न की है। इसका मुख्य कारण यह है कि वे अपनी विपत्तियोंपर हँस सकते हैं। हिन्दीप्रेमी राष्ट्रिय मुसलिम युवकका जीवन कितना सकटमय हो जाता है, इसका अन्दाज हम अख्तर हुसैनको देखकर लगा सके। हिन्दी-पत्र-सचालक उसपर इसलिए आशका करते है कि वह मुसलमान है, और मुसलिम पत्र उसे इसलिए त्याज्य समझते है कि वह राष्ट्रिय है! एक बार तो कलकत्तेके मुसलिम पत्र 'स्टार आफ इडिया' में उन्हें इसी कारणसे नौकरी नहीं मिली, कि उनके विचार राष्ट्रिय थे! और अलीगढ मुसलिम यूनिवर्सिटीमें आप इसलिए निकाले गये कि आपके विचार अन्तर्राष्ट्रिय या यों कहिए साम्यवादी थे!

अपने १४-२-३५ के पत्रमें उन्होंने स्वर्गीय व्रजमोहन वर्माको लिखा था—"पिछले चार महीने कैसे बीते, इसका ब्यौरा सुनिये। अक्टूबरमें अलीगढ यूनिवर्सिटीके प्रो-वाइस चांसलरने कहा कि आप खुशीसे बोरिया-बँधना न उठाइयेगा, तो निकाले जाइयेगा! अच्छा यही समझा गया कि अभी अखबारोंकी Cheap publicity (सस्ते विज्ञापन) से बचा जाय। कांग्रेसका मेला लगनेवाला था। हम भी अपने आप खासी सवाददाता बने वहाँ जा पहुँचे। मगर हजरत दिल—हाय वर्माजी इस दिलने कहीका न रखा! कम्बख्त सिसीपर आता नही, यो ही धड़का करता है! बस साहिब, वहाँ हम करीब-करीब लम्बे हो चुके थे कि डाक्टर अन्सारी तक पहुँच हुई। नुसखा मिला, मगर इस शर्तके साथ कि दो महीने लगातार

श्री अख़्तर हुसैन रायपुरी

"मुझे याद है कि मै बहुत छोटा था, शायद अपने पैरो पर खड़ा भी न हो सकता था। शीतकाल और सध्या वेलाकी वात है। दादी तवेपर रोटी सेक रही थी, और मै उसके पास बैठा लालटेनकी रोशनीमें साबुनके पानीसे बुलबुले निकालनेकी कोशिश कर रहा था। एकाएक सारा घर क्रन्दनकी गूंजसे काँप उठा और दादी अपने हाथोको सारीमें पोछकर बाहर भागी। मेरी समझमें बस इतना आया कि लोग किसी बातपर रो रहे है और समवेदना कहती है कि इनके साथ रोना चाहिए। चूल्हेके पास बैठकर मै भी जोरसे रोने लगा; पर बुलबुलो का खेल इतना मनोरंजक था कि आँखोमें आँसू न आये। बाहर इतना अँधेरा था कि अपने आमनसे डोलनेका साहस न हुआ। रोने-धोनेका सिलसिला देर तक जारी रहा, यहाँ तक कि मेरा कौतूहल बढ गया। कुछ देर बाद कई औरतें आईं और मुझे गोदमे उठाकर फूट-फूटकर रोने लगी। इतना तो मै भी समझ गया कि अम्माकी बीमारीसे इसका कुछ सम्बन्ध है; सम्बन्ध किस प्रकारका है, यह मै न भाँप सका। सच तो यह है कि इनने लोगोको अपने लाड़-प्यारमें तत्पर पाकर मेरा हृदय अभिमानसे फूल उठा। मुझे उस रातकी सब बाते याद है। लकड़ीके एक सन्दूकमे अम्माका लिटाया जाना, मेरा उनके समीप जाकर कुछ पूछना, फिर मातमका हृदयविदारक दृश्य! मैंने केवल इतना समझा कि अम्मा इलाजके लिए कही गई है और अब मेरे लालन-पालनका कुल भार दादीपर है। दादीके दुर्बल हाथोका सहारा लेकर मैंने बचपनका कँटीला रास्ता तै किया, उसकी लोरियो और कहानियोंने मेरी कल्पनाको रंगीनी दी। उसके ज्योतिर्हीन नेत्र शून्यमें न जाने किस बिछुडे हुएको ढूंढा करते थे?"

लिखा करते थे, और फिर तो वर्माजीके साथ वे भी विशाल भारत परिवारके एक सदस्य बन गये। चर्तुवेदीजीने 'विशाल भारत' को दो लेखक दिये—वर्माजी और अख्तर, और इसके लिए हम उनके आजीवन ऋणी रहेंगे। वे दिन क्या कभी भुलाये जा सकते हैं, जब मुंशी नवजादिक लाल, श्री ब्रजमोहन 'वर्मा' और श्री अख्तर हुसैन रायपुरीके साथ कहीं मित्र-मण्डली जुटती थी। वर्माजीको उर्दूके बहुतसे शेर याद थे, जिन्हें वे बड़े मौकेसे कहते थे और मुंशीजीके पास तो उनका खजाना ही समझिए। बस, फिर कहकहेपर कहकहे उठते थे और घंटे बीतते देर न लगती थी।

कलकत्तेमें मुसलमानोंके किरायेके मकान अधिक नहीं हैं इसलिए हिन्दू मकानोंकी अपेक्षा उनका किराया ज्यादा ही है, और उनके आसपास का वायुमंडल भी अच्छा नहीं। अख्तर साहबको सम्भवत ५०—५५) 'विश्वमित्र' से मिलते थे और उनमे १७) किरायेमे ही चले जाते थे! हमारे निकट बारह रुपयेपर एक अच्छा कमरा खाली था, पर वह मकान एक ब्राह्मण देवताका था, और उसमें मुसलमान भला कैसे रह सकता था? रहनेकी बात तो रही दूर, कितने ही हिन्दू मकान मालिक इस बातपर भी एतराज करते हैं कि कोई मुसलमान उनके किसी भाड़ेतूके यहा आवे! सेण्ट्रल एवेन्यू और विवेकानन्द रोडके सेलपर मैंने एक कमरा लिया, किरायेके पेशगी तीन रुपये भी दे दिये, बादको कहीं मेरे मुँहसे यह बात निकल गई कि मेरे कमरेपर मेरे ईसाई या मुसलिम मित्र भी कभी-कभी आया करेंगे! बस, फिर क्या था, किराया वापस कर दिया गया! पीछे पता लगा कि मेरे कमरेके ठीक ऊपर मारवाड़ी सज्जनका पूजाघर बनता था। भला, यह कैसे हो सकता था कि पूजा-घरके नीचे कोई मुसलमान या ईसाई आवे?

अख्तर साहब पत्रकार थे और मैं भी, पर इस साम्प्रदायिकताके कारण हम दोनोंका साथ रहना असम्भव था। सन् १९३८ में मैंने, जब वे कलकत्ता छोड़ चुके थे, उनसे अनुरोध किया कि आप अपने संस्मरणोंको

पडे रहो । नवम्वरमे एक्सरे हुआ, इजेक्शन लिए और इस रोगसे शायद वहुत दिनोके लिए छुट्टी मिली ।"

अलीगढसे निकाले जानेके वाद अख्तर हुसैनको दिल्लीमें महीने-भर फाके करने पडे और फिर किसी तरह लाहौर पहुँचे । लाहौरसे उन्होने वर्माजीको एक कार्ड लिखा—

"प्रिय वर्माजी,

आपको याद होगा कि हिन्दी-ससारमे अख्तर नामी एक आवारा कभी रहता था । अव वह पटवारीकी जरीवके समान ज़मीन नापता लाहौर चला आया है । अलीगढ, वम्वई, दिल्ली कही उसे आश्रय न मिला । वीचमें वरावर वीमार और वेकार रहा । तग आकर हिन्दीसे नाता तोड़ रहा है, उर्दूमें अधिक लिखने लगा है । इन दिनो 'उर्दू' औरंगावादका कुछ काम करने लगा है । शायद रोटियो का कोई सामान हो जाये । कही मूलचन्दजी मिले या वनारसीदासजी पूछें, तो मेरी वन्दगी कहकर यह शेर सुना दीजिये, हालाँकि दोनो महानुभावोमेंसे किसीको 'हुस्न' या 'इश्क' से कोई वास्ता नही—

क्या 'हुस्न' ने समझा है, क्या 'इश्क' ने जाना है;
हम खाकनशीनोकी ठोकरमे ज़माना है ।

यदि आप अव भी मेरा मोल इतना समझते है कि 'विशाल भारत' मुफ्त भेज दिया करे, तो अमीर मजिल, अलीगढका पता वदलकर लाहौरका पता कर दीजिए । वहुत दिनो तक यही रहनेका इरादा है ।

आशा है कि आप सव लोग सकुशल होगे । जो याद करते हो उनको धन्यवाद, जो भूल गये हो उनका भी शुक्रिया । आपका—

अख्तर हुसैन रायपुरी"

अक्टूवर सन् १९२७ मे मैं 'विशाल भारत' की सम्पादकी करनेके लिए कलकत्ते पहुँचा था और शायद जून १९२८ में अख्तर साहव कलकत्ते आये । शिष्टशिरोमणि गर्देजीके 'श्रीकृष्ण-सन्देश' में वे कभी-कभी

"तीसरे मकानमें हर हफ्ते मेरी आँखोंके आगे एक ऐसा दृश्य आता था, जो आजीवन मुझे न भूलेगा। शुक्रवारके प्रातःकालको भिखारियोंकी भीड़ उस विशाल अट्टालिकाके प्रांगणमें जमा होती थी। मकान-मालिक उन्हें एक-एक पैसा देकर अजस्र पुण्यका संचय किया करता था। अपने कमरेके बरामदेमें खड़ा होकर हमेशा मैं कोढ़ी, लंगड़े और अन्य भिखमंगोंके इस जमघटको देखा करता था। इसके बाद कई-कई दिन मेरी आत्मा क्षुब्ध और सन्तप्त रहती थी। ऐसा लगता था कि पददलित और लुण्ठित मानव-समाज अपने ईश्वरसे भीख माँगनेके लिए इकट्ठा होता है। और वह जगत्सेठ इन अपाहिजोंको ठोकरोंके साथ कुछ झूठे टुकड़े बाँटा करता है। मेरे चित्तपर इस घटनाका प्रभाव इतना गहरा है कि मैं 'दान-वीर' पूँजीपतियोंसे तीव्र घृणा करता हूँ। मेरी एक कहानी 'भिखारी' इसी दृश्यसे प्रभावित है।

"चौथे मकानके ठीक सामने एक प्रोलितेरियन होटल (भटियारखाना) था। उसके तन्दूरपर भोरसे लेकर आधी रात तक रोटियाँ पका करती थीं। यह भटियारा बुद्धदेवके समान पालथी मारकर तन्दूरके मुँहके पास बैठ जाता था। कठौतीसे गुँधे हुए आटेका एक विशेष परिमाण तोलकर पटरेपर रखता और बेलनकी मददसे उसे एक खास गोल आकारमें लाकर फिर चौतालेकी रफ्तार उसे बजाकर तन्दूरमें थोप दिया करता था। उसकी प्रत्येक गति इतनी जँची-तुली थी कि वह कोई पुराना राग पढ़ता था। जब रोटी आखिरी धमाकेके साथ तन्दूरमें थोप दी जाती थी तो भटियारा सन्तोषकी गहरी साँस लेकर माथेसे पसीना अँगुलियोंसे छिटकाता और पास रखी हुई गुड़गुड़ीका एक कश लिया करता था। दिनमें १३६० बार यही ढफली बजा करती थी। उसकी हर तालसे मानो मेरे दिमागमें जैसे हथौड़ा लगता था, यह मालूम होता था कि कोई सनकी नर्तक दिमागकी एक रगमें याद दिलानेके लिए गाँठ बाँध रहा है। रोटीके पोलनेकी वह अनवरत थाप—वह भैरव ताल—अब भी मेरे कानोंमें गूँजती

मकानोका वृत्तान्त लिख भेजिये। उन्होने जो कुछ लिखा, वह यहाँ उद्धृत किया जाता है—

"कलकत्तेमें मुझे जिन चार विभिन्न मकानोमें रहनेका दुर्भाग्य प्राप्त हुआ, उन सबकी एक-एक विशेषता मेरी स्मृति में सदाके लिए अंकित हो गई है।

पहले मकानके आँगनमें सुवह-सवेरे किसी रगरेजकी भट्ठी चढ़ती थी। पत्थरके कोयलोका धुआँ किसी परदार साँपकी तरह उड़ता हुआ मेरे कमरेकी खिडकीमें घुस आता था। उस समय कभी-कभी मैं वडे भयावने सपने देखता था। एक वार मुझे ऐसा भान हुआ कि पाठकजीने (जो उन दिनो 'विश्वमित्र' के प्रधान-सम्पादक थे) कम्पोजीटरोको मुझे कम्पोज कर देनेका हुक्म दिया! और मैं सशरीर फरमेपर चढा दिया गया। जव मैं हड़वड़ाकर उठ वैठा, तो देखा कि कमरा धुएँसे भरा हुआ है। सूरजकी पहली किरणके साथ वह कश्मीरी रगरेज अपनी नाँद भट्ठीपर चढा देता था। अव तक मुझे उसकी तपी हुई देह और तमतमाता हुआ दढ़ियल चेहरा याद है। उसके सहकारी ऊँचे सुरोमें कोई गीत गाया करते थे, जिसकी तान इस पदपर टूटती थी—'अय शाल! उवलते हुए पानीसे जव तू निकलेगी, तव कही इस योग्य होगी कि प्रियाकी सहेली वने।'

"दूसरे मकानका रास्ता एक ऐसी सड़कसे होकर गुज़रता था, जिसके दोनो ओर चमड़ेके गोदामोके सिवा कुछ न था। पथिकोंको कच्चे चमडो-के ढेर लाँघकर गुजरना होता था। मूक पशुओकी उन सूखी हुई खालोमें मनुष्यकी पाशविकताकी दास्तान घिनौनी दुर्गन्धसे लिखी हुई थी। मालूम नही कितनी वीमारियोके कीड़े उस गलीमें विलविलाया करते थे। कई साल वीत गये; पर अव भी उस गलीकी नारकीय वदवू मेरी नाकमें वसी हुई है। भैंसकी वू कुछ अफराई होती थी, गोहके चामसे भुने हुए कटहलकी वू आती थी; इसी तरह विभिन्न खालोसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी दुर्गन्धें निकला करती थी।

चेतनताका अब यह हाल है कि नाक हमेशा अन्याय और अत्याचारकी बू सूंघती है, आँखें समाजकी बुराइयाँ ढूँढनेके सिवा कुछ नहीं करती और ज़बान व कलम बराबर प्रतिवाद और प्रतिकारके मौके ढूँढती है। मैं कोई समाजका ठेकेदार या ख़ुदाई फ़ौजदार हूँ ? क्यों न आज उमर ख़ैयामकी रुबाइयात ख़रीदूँ और 'मै' के नशेमें सराबोर हो जाऊँ।

आज फिर दारुण मानसिक यातना! भोरमें जब मैं स्टेशनसे लौटा, तो सेठोंकी हवेलियाँ वेश्याओंके समान स्वप्नलिप्त थीं। केवल अलसाये हुए इक्के-दुक्के साँड और उनकी जुगाली करती हुई भैंसोंको ताकनेवाले, फुटपाथपर लेटे हुए भिखारी भुवनभास्करका भजन गा रहे थे। सेठानियाँ लठबन्द दरबानोंकी छत्रछायामें नन्दी देवताको पकवानोंका भोग लगाती जाती थीं। किसी भिखारीको जो शामत आई तो उसने एक अघाये हुए नयनमुंदे साँड़के आगेसे थाली सरका ली। साँड़ तो अपने आसनसे हिला तक नहीं, मगर दरबानने तावड़तोड़ कई लाठियाँ भिखारीपर बरसा दीं। उस बेचारेने मुंहमें इतनी पूरियाँ ठूंस ली थीं कि चिल्ला भी न सका। वह उस कुत्तेसे अधिक चालाक था, जो पालीसे मुंहके मांसकी परछाईं देखकर उसपर लपटा और अपनी जमा भी गँवा आया। यही नहीं, गंगामाईकी ओर क्षमा-प्रार्थियोंके समान देखकर कीचड़में वह उन पूरियोंको उठाने लगा, जो इस छीना-झपटीमें गिर गई थीं।

४ अगस्त—फिर रेलका सफ़र! मेरा जीवन ठ्रानसलान्टरकी परकार या पटवारीकी जरीबके समान हो गया है। ब-मजबूर निरन्तर जहाज़ी हो गया हूँ; पर न वहाँ सोने-चाँदीकी खानें होती हैं, न हीरे-मोतीके ख़जाने मिलते हैं, और मैं उनकी खोजमें मारा-मारा फिरकर दुरवस्थाको और भी दयनीय बनाता जाता हूँ।

अब तो साँका पेट रेलका डिब्बा या होटल हो गया है जिसमें भाँति-बहुत मुसाफिरोंके समान कुछ समयके लिए जमा होते और फिर बिखरते-

भीतर तबलेके चौतालेके समान गूँजा करती है। और रोटीपर मुक्कोंकी आवाज़ वर्गयुद्धकी थ्योरीके समान दिमागके सूने आसमानमें कडकती रहती है।"

क्या ही अच्छा होता, यदि अख्तर साहब अपनी डायरी लिखते। एक बार उन्होंने कोशिश की थी, और वह चीज़ लाजवाब बन पडी। मासिक 'विश्वमित्र' के एक अकसे उसके कुछ अश हम यहाँ उद्धृत किये बिना नही रह सकते—

१७ जुलाई—कल मुझे एक हृदयवेधक अनुभव हुआ। जब पथिकोंके धक्कोंसे पतलूनकी कीच बचाता हुआ होटलके आगे पहुँचा, तो एक भिखमगेने मेरी बाँह पकड ली। मेरी ठुटपुँजिया (पैटी बुर्जुआ) अन्तरात्मा रोषसे सजग हो उठी। मैं उसे धकियानेवाला ही था कि हाथ ज्यो के त्यो रह गये। उसके हाथोको लकवा मार गया था, और वे घासके समान थरथरा रहे थे। उसकी बाँहमें रोटीके टुकडे दबे हुए थे, पर उसमे इतनी भी ताकत न थी कि खुद उन्हे खा सकता। नाकसे रेंट बहकर दाढ़ी-मूंछके बालोमें लिपट गया था। क्या मनुष्य इससे भी अधिक असहाय हो सकता है? वह केवल इतना चाहता था कि उसकी रोटियाँ कोई उसे खिला दे। उसी सड़कपर न जाने कितने लोग साँडो, कुत्तो, बिल्लियों और बटेरोका दुलार करते थे—पर मनुष्यके दुख-दर्दपर किसीकी आँख नही! जब मै उसके मुँहमे कौर भरने लगा, तो वह वनपशुओके समान बिलबिलाकर बिना चबाये उन्हे निगलने लगा और उसकी आखोसे आँसू मेरी उँगलियोपर टपकने लगे।—वह मनुष्य था और मानव-प्रेमको समझ सकता था।—मेरे परिचित विस्मय और घृणाके साथ दूर खडे मेरी हँसी उडा रहे थें। आह शोपेनहार और उसके हृदयहीन, भावहीन दुरगें जानवर!

२१ जुलाई—मैं अपने दिलको कितना समझाता हूँ कि भलेमानस तू जिस आदमियतको ढूंढ़ता है, वह इस ससारकी वस्तु नही। मेरी स्व-

समझना कठिन है। कहिये तो सही, कायाको माया न कहे तो क्या कहे और—अरे विसालू, कम्बख्त डेढ़ घटा देखने आ रहा है? ऐं—बच्चेके लिए दवा लेने गया था! हमने तो उसे पैदा नही किया। मुन्शीजी एक पहरकी मजदूरी काट लीजियेगा!—जी हाँ, और मौलाना रूमने भी अपनी मसनवीमें एक समानार्थक शेर कहा है, सुनिये—(थोडी देर बाद)

साहब, अहिंसाके सिद्धान्तपर ठण्डे दिलसे तो सोचिये। यही मानव-धर्म है, यही मनुष्य और पशुका वास्तविक भेद है। जिसे आप जिला नही सकते, उसे मारनेका अधिकार—सुनो जी बोधराम, तुम्हारे जिम्मे जो तीसरे सालका १६ रु० आता था, वह अब सब मिलाकर ३३॥=)॥ हो गया। चलो ॥=)॥ छोड देते है, अगर पूरा भुगतान अभी कर दो।—क्या कहा?—जमीन बन्धक रखकर, हे, तो हमपर क्या अहसान किया!—लडकेका क्रिया कर्म? तो बाबा हमने इसका कुछ ठेका ले लिया है—न खाओ सिर हमारा!—जी हाँ, यही है महात्माजीकी शिक्षा।

मेरा सिर घूमने लगा, मै भागा। आत्माके साथ दरिद्रोका शोषण और अहिंसाके साथ किसानोकी हिंसा मुझे अनुलिप्त दिखाई देने लगी।

२९ सितम्बर—यह वातावरण कितना जहरीला है, इसमे मेरा दम घुटा जाता है, जैसे इसके नागपाशमें मेरे व्यक्तित्वका खून जम रहा है। मेरा शरीर ही रुग्ण नही, मेरी आत्मा भी रुग्ण हो गई है। यह स्थान गोबरका ढेर है, जिसमे शिक्षाके प्रकाश-पुजसे कीडोके समान छोटे आदमी बिलबिला रहे है। इनके बीचमे मेरी आत्मा जुगनूके समान कभी जलती और कभी बुझ जाती है। मै यहाँसे भागना चाहता हूँ लेकिन संसार मेरे लिए या तो बहुत तग है या इतना बडा कि इसमें रहके घुनके समान मै पिस रहा हूँ।

कुछ दिनोंसे फिर हृदयकी धडकन शुरू हो गई है। सब पढ़ते-पढ़ते एकाएक मेरे हाथ थर्राने लगे दिल पत्तेके समान लरजने लगा और

अपनी राह लेते है। केवल यही एक स्थान है, जो हमारे देशमें अन्तर्जातीय मेल-मिलाप और अछूतोद्धारका प्रतीक है। यही हिन्दू-मुसलमान मिलते है, यही छूत-अछूतका झगडा मिटता है, यही परदेकी कठोरता कम होती है, यही स्त्री-पुरुषकी समानताका विज्ञापन होता है, यही हिन्दुस्तानी रोमास शुरू होता है! धन्य है भारतीय रेलका डिब्बा और उसकी महिमा।

विशाल भारतकी इस छोटी-सी आवृत्तिमें दो चीजें सबसे दिलचस्प है। एक तो वह वोहरा, जो तकियेके खाली खोलमे रुपयोकी थैली भरे उसे सिरहाने रखे आँखें बन्द किये है। दूसरे यह लालाजी, जो अपनी धर्मपत्नीको बेचपर सुलाकर स्वय नीचे सो रहे है। थोडी-थोड़ी देरमें वे सिर निकालकर देख लेते है कि श्रीमतीजी सकुशल है या नही, और फिर वही खर्राटेका ताँता!

लालाजीके चिरंजीवीके रोनेकी आवाज़! ललाइनने अपने पयोधर उसके मुँहसे लगाये, फिर भी यह अभागा चुप न हुआ। तग आकर माँने उसे धमकानेके लिए कहा—'पीता है तो पी, नही इन बाबूजीको दे दूँगी!'

क्या मै इतना भूखा मालूम होने लगा हूँ?

११ सितम्बर—आज ठाकुर...से भेंट हुई। पक्के राष्ट्रवादी, जेलयात्री और आध्यात्मिकताके रसिया है। मकानोकी मरम्मत हो रही है, अपनी निगरानीमें मजदूरोंसे काम लेनेके लिए सुबहसे शामतक बैठकमे जमे मोटी ऐनकके भीतरसे उनकी गतिविधिका निरीक्षण करते है। आज ज़मीदारीके कुछ किसान पावना चुकाने भी आये है। मुझे देखते ही उन्होने हाथो-हाथ लिया और बातचीतका सिलसिला शुरू हो गया। नेपोलियन और हैदरअली अगर एक साथ कई काम कर सकते थे, तो यह महोदय कम-से-कम एक साथ किसान, मजदूर और आत्मासे तो निवट सकते है!

वे—जी हाँ, आप ऐसे भयंकर भौतिकवादीके लिए कबीरकी साखीको

अद्वितीय है। उनका दृष्टिकोण समाजवादियोंका है। अपने ०।३।३५के पत्रमें उन्होंने लिखा था—

'मेरे आपके दृष्टिकोणमें जो भेद है, वह आपके 'सन्मी देवाय' और मेरे 'साहित्य और क्रान्ति' नामक लेखोंसे स्पष्ट हो जाता है। आपने केवल प्रत्यक्षवादका समर्थन किया था, और मैंने एक कदम आगे बढ़कर कहा कि क्रान्तिकारी प्रत्यक्षवादकी आवश्यकता है क्योंकि ट्राट्स्कीके शब्दोंमें "Art is not only a mirror, it is a hammer as well." यानी—(कला केवल दर्पण ही नहीं, बल्कि वह एक हथौड़ा भी है।' जब युद्ध छिड़ा हो, तो साहित्यिक 'सत्य शिव सुन्दर'का वेदान्त लिये प्रत्यक्षवादकी कुर्सीपर नहीं बैठ सकता। या तो वह प्रतिक्रियाके किलेमें होगा या क्रान्तिके मैदानमें। केवल किसानका दुखड़ा रोने और जमींदारके उत्पीड़नपर आँसू निकालनेसे कुछ न होगा। ऐसी भावुकताका अन्त रवि बाबू और प्रेमचन्दजीके सुधारवादमें होता है। आप 'भविष्य किसका है?' इस विषयपर लिखना चाहते हैं। इस प्रश्नका उत्तर इतिहाससे माँगिये, तो वह कहेगा कि भविष्य किसानों और मज़-दूरोंका है। भविष्य उन साहित्यिकोंका है जो उन्हें जगानेके लिए अभि-यान करते हैं। मैं साहित्यको फोटोग्राफी नहीं समझता वह भी एक हथियार है जो किसी एक श्रेणीके स्वार्थोंकी रक्षा परोक्ष या प्रत्यक्ष रूपसे कर रहा है। जिन 'साहित्यवादों'की ओटमें [illegible] चाहते हैं उनके विषयमें टाल्स्टायने What is art में बड़े मज़ेके फिकरे लिखे हैं। ... आवश्यकता इस बातकी है कि पददलितोंको बताया जाय कि शोषण क्यों होता है और उसका अन्त किस प्रकार हो सकता है। यह कहना काफी नहीं है कि शोषण कैसे होता है—हालाँकि आवश्यकता इसकी भी है। जब आप किसानों और मज़दूरोंके लिए लिखना चाहते हैं, तो उन्हींके उनकी हालत [illegible] देखनी है। उनके [illegible] उनकी चीज़ों पर [illegible] समझ सकता है? उन्हें तो यह बताना है कि

भाँय-भाँय करने लगे, मुँह रक्त-प्रवाहकी तेज़ीसे लाल हो गया। मैंने साँस रोक ली कि कही इस कम्प-विकम्पमे रुक ही न जाये! ऐसा दौरा कभी न हुआ था। फिर प्रतिक्रियासे हाथ-पैर निढाल हो गये—अँधेरा और सन्नाटा!

३० सितम्बर—क्या मनुष्य रोटी कमाने और खानेवाले जानवरके सिवा कुछ नही? क्या यही जीवनका अर्थ और इति है, क्या यही इस शब्दका अन्तिम अर्थ है? अगर काम करने और जीनेमे कोई भेद नही, तो मै हरगिज़ काम न करूँगा। क्यो न इन पक्षियोंके कूजन और समीरके विलापको सुनते हुए निश्चल पड़ा रहूँ और इसी प्रकार मर जाऊँ। ससारको मेरे जीवनकी ज़रूरत नही, तो मुझे इस ससारकी क्या आवश्यकता?

२९ अक्तूबर—कौन-सी वह तीन चीजे है, जो मुझे ईश्वरकी सुरुचि-का कायल बनाने लगी है?—समुद्र, नारी और टोमेटो! एक विशाल है, दूसरा अबूझ पहेली है, तीसरेमे पंजाबी खोनचेके '१० स्वादो'का मज़ा है!

१३ नवम्बर—रुपयेपर शासकोकी मोहर क्यो दी जाती है? क्यो नही साक्षात् भगवान्‌की छवि इसपर अकित कर दी जाती। यही मेरुदण्ड है, यही शेपनागका मस्तक है, यही अल्ला मियाँका सिंहासन है। छत्तीसो रागि-रागनियोंकी मधुरता रुपयेकी झनकारमें सिमट आई है, सत्यके सारे प्रयोगोका अर्थ है—भज कल्दारम्! नैतिकता और धर्मकी आत्मा पिघली हुई चाँदीमें समा गई है। आइन्सटीन क्यो कहता है कि ब्रह्माण्ड विद्युत्-कणोका ढेर है; वह क्यो नही कहता कि यह विश्व रुपया और रुपया पैदा करनेवालोंका अखाड़ा है? ईश्वर चाँदीकी खानोका मालिक और पूँजीपति उसके दलाल है। तूरकी पहाड़ीपर मूसा किसकी प्रभामे चौंधियाकर अचेत हो गया था? ईश्वरके तेजसे या रुपयेकी झलकसे!"

अख्तर साहबने कितनी ही कहानियाँ लिखी है, जो अपने ढंगकी

खुश था, और उसके माता-पिता भी इस आकस्मिक स्नेहसे गद्गद हो रहे थे। मौका देखकर अख्तरने उसे थोड़ा-सा नोच दिया। फिर क्या था, वह रोने-चिल्लाने लगा। बस, झट आपने कहा—'अरे! अरे! लल्ला रोता क्यों है? ले एक पेड़ा खा ले।' और तुरन्त टोकरीमेंसे एक पेड़ा निकालकर उसे दे दिया। अब चौबेजी घबरा गये—'अरे! जि का करी! मलेच्छने सब पेड़ा खराब कर दए! फेंकौ इन्हें!' अख्तर साहब भूरि-भूरि क्षमा-याचना कर रहे थे और चौबेजी टोकरीको रेलके बाहर फेंकनेको आमादा थे। बाकी विद्यार्थियोंमेंसे, जो दूर बैठे थे किसीने कहा—'चौबेजी, जो-कुछ हो गया, सो हो गया, अब इन पेड़ोंको बाहर फेंकनेसे तो यही अच्छा है कि इन्हीं लोगोंको दे डालो।' आखिर यही हुआ, और सब लड़के मिलकर चौबेजीके टोकरी-भरे पेड़े चट कर गये! डाक्टर अन्सारी साहबने ही यह किस्सा हमें सुनाया था। इसे शैतानी और किसे कहते हैं?

डकैती का जुर्म इन सबसे अधिक संगीन है। हमारे पाठकोंने कालपी-का नाम सुना होगा, उस कालपीका जो तीन महापुरुषोंकी जन्मभूमि होनेके कारण प्रसिद्ध है—एक स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्मा, दूसरे [illegible] 'ठग' और तीसरे लाला सूरजचन्दजी अग्रवाल ('विश्वमित्र वाले')। सो उसी कालपीके एक पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्टके यहाँ डाका पड़ा। किसी साहित्य-सेवीको इसकी खबर भी नहीं दी गई, कोई [illegible] जा भी कैसे सकता था! नतीजा यह हुआ कि अख्तर साहबके किसी [illegible]-ने यह खबर फैला दी—'हम तो पहलेसे ही कहते थे कि अख्तर बड़ा [illegible] आदमी है, नहीं तो पुलिस आफिसरके यहाँ डाका डालनेकी हिम्मत किसकी होती!'

हाँ, तो ये तीन मुकद्दमे अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके कराचीवाले अधिवेशनमें 'जर्नलिस्ट सोसाइटी'के सामने पेश होंगे। सजाएँ भी तय हो चुकी हैं—

पाठकोंको यह बतला देना ज़रूरी है कि अख्तर साहबका जन्म सन् १९१७मे रायपुर (मध्यप्रदेश)में हुआ था, और वे कुल जमा २७ वर्षके है।

यदि किसी भोलेभाले पाठकने उन्हे भलामानस समझ रखा हो, तो उसे अपना यह भ्रम तुरत दूर कर लेना चाहिए। आजकल अख्तर साहब निज़ाम सरकारकी छात्रवृत्ति लेकर पेरिस गये हुए है "ऐसी आशा की जाती है कि वे कोई डाक्टर होकर लौटेंगे—पी-एच० डी० या डी० लिट० इसका हमें पता नही, पर एक बात प्राइवेट तौरपर हमे मालूम हो गई है, वह यह कि हिन्दुस्तानकी जमीनपर पैर रखते ही वे गिरफ्तार कर लिये जायेंगे और उनपर तीन मुकदमे चलेंगे—एक चोरीका, दूसरा उठाई-गीरीका और तीसरा डकैतीका ! इन अभियोगोंका सारा मसाला तैयार हो चुका है।

चोरी—हाली-शताब्दीके अवसरपर मौलवी अब्दुलहक साहबके साथ हम पानीपत गये हुए थे। वहाँ जो डेरा मिला, उसमे सिर्फ एक खाट थी और आदमी थे तीन। जब अख्तर साहबको यह पता लगा, तो बजाय इसके कि स्वागतकारिणी सभाके किसी सदस्यसे रिपोर्ट करते, ज़रा झुटपुटा होते ही पासके खेमोंसे दो खाट चुरा लाये ! उन बेचारे उर्दू-कवियोंको रातको जो तकलीफ़ हुई होगी, उसका अन्दाज़ा पाठक लगा सकते है।

उठाईगीरी—इस बारेमे खुद अख्तर साहबने इकबाल किया था और डाक्टर अन्सारी साहबके सामने, उन्हींके बँगलेपर। एक बार अलीगढके कितने ही मुसलिम विद्यार्थी रेलके एक डिब्बेमे यात्रा कर रहे थे, और उसमें एक चौबेजी भी जा रहे थे। उनकी चौबाइनजी तथा एक छोटा बच्चा उनके साथ थे और पासमें थे एक टोकरी-भर मथुराके पेडे। उन विद्यार्थियोने अख्तरसे कानमें कहा—"भाई, किसी तरह ये पेड़े खिलवाओ, तब जानें।' अख्तर साहबने एक तरकीब सोची। आपने चौबेजीके बच्चेको अपनी गोदमें ले लिया और उसे खूब खेलाने लगे। बच्चा बहुत

मुंशी जगनकिशोर 'हुस्न'

संसार विज्ञापनबाजीका है। विज्ञापनके अभावमें अच्छी-से-अच्छी वस्तु जहांकी-तहां पड़ी रहती है, उसे कोई जानता भी नहीं, और विज्ञापनके द्वारा बुरी-से-बुरी वस्तु भी जनताके आदरका पात्र बन जाती है। कवि और उनकी कीर्तिके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। हां, जो महाकवि तुलसीदासकी तरह अत्यन्त उच्चकोटिके हैं, उनके बारेमें हम ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि उनकी प्रतिभा-रूपी नदी अनेक कृत्रिम बाधाओं और चट्टानोंको दूर करती हुई, धाराप्रवाह रूपमें बहती और सहस्रों-लक्षों हृदय-क्षेत्रोंको अपने अमृतोपम रससे प्लावित कर देती है। विज्ञापनके बिना ही गोस्वामीजीकी रामायणका जितना प्रचार हुआ है, उतना भारतकी किसी भी देशी भाषाकी किसी भी पुस्तकका नहीं हुआ। परन्तु आधुनिक कवियोंको जनताके सम्मुख लानेके लिए अनेक साधनोंकी आवश्यकता है, और इन साधनोंके अभावके कारण कितने ही अच्छे-अच्छे कवि उस सम्मान और कीर्तिसे वंचित रह जाते हैं, जिसके वे पूर्णतया अधिकारी थे। फीरोज़ाबादके उर्दू भाषाके कवि मुंशी जगनकिशोर 'हुस्न' की गणना ऐसे ही कवियोंमें की जा सकती है, जिनकी कीर्ति कतिपय कारणोंसे परिमित रही, यद्यपि उनके काव्योपवनमें वह सौन्दर्य विद्यमान है, जो उनके यश-सौरभको दूर-दूर तक फैलानेमें समर्थ हो सकता था।

मुंशी जगनकिशोरका जन्म सन् १८६६ ई०में फीरोज़ाबादमें एक प्रतिष्ठित भटनागर (कायस्थ) कुलमें हुआ था। उनके पिताका नाम मुंशी रूपकिशोर था। उर्दू और फ़ारसीकी पढ़ाई शिक्षा आपने हसन हसनसे और फिर मौलवी उमरावबेगसे पाई थी। बुद्धि तीव्र होनेके कारण अपनी कक्षाके सब विद्यार्थियोंसे आगे रहते थे। इन्होंने इस स्कूल

(१) अख्तर साहब अपनी कहानियों और लेखोंका एक संग्रह तुरन्त छपावें।

(२) भविष्यमें मुख्यतया हिन्दीमें ही लिखनेकी प्रतिज्ञा करें।

(३) अपने पेरिस-प्रवासका वृत्तान्त चौबेजीके 'विशाल भारत'के लिए लिखें, क्योंकि मथुराके वे चौबे हमारे रिश्तेदार थे!

और चौथी यह कि सब हिन्दी-पत्रकारोंको एक भोज देकर चौबेजीके पेड़ोंका प्रायश्चित्त करें। यदि ऐसा न किया गया, तो यह निश्चित समझिए कि वे पत्रकार-जातिसे बहिष्कृत हो जायेंगे। डाक्टर अख्तर हुसैन रायपुरीका यही माकूल इलाज है। उन्होंने समझ क्या रखा है! वह तो खैरियत हुई कि रेलके उस डिब्बेमें कोई धर्मात्मा हिन्दू उपस्थित न थे, नहीं तो इसी बातपर फौजदारी हो जाती—फौजदारी क्या, जनाब साम्प्रदायिक दंगा, और फिर भारत दो भागोंमें बँट जाता—हिन्दू भारत और मुसलिम पाकिस्तान! हाँ।

मई १९३९]

कवितामें उनके गुरु कोई नहीं थे। महाकवि गालिबके काव्यमें उनको बड़ी रुचि थी, और उसको वे बहुधा पढ़ते भी थे। एक दिन 'दीवाने गालिब' पढ़ रहे थे और उसमें मग्न थे। मित्रगण सामने बैठे हुए थे। उनको ग़ालिबके काव्यकी खूबियाँ समझा रहे थे। उस समय वे इतने उत्साहित हुए कि बहुतसे बताशे मँगवाकर उस पुस्तक ('दीवाने गालिब') पर चढ़ाये, जिससे सारी पुस्तक ढक गई। यही उनकी दीक्षा थी। आगे चलकर एक दिन मित्रोंके अनुरोधसे आपने 'अमीर' मीनाई साहबके पास संशोधन (इसलाह) के लिए एक गज़ल भेजी। उसमें महाकवि अमीरने लिखा कि इसलाहकी गुंजाइश तो थी नहीं, परन्तु आपकी इच्छानुसार इधर-उधर कलम चला दिया है।

ऊपर जिस काव्य-ग्रन्थ 'बहारे-[illegible]' का उल्लेख किया गया है, वह फ़ारसीमें है। इसमें भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन है। यह ग्रन्थ उन्होंने २१ वर्षकी उम्रमें लिखा था, जैसा कि निम्नलिखित पद्यसे ज्ञात होता है—

"गुज़श्त अज़ उम्रे आज़िम बिस्तो यक साल,
तुरा ऐ बा हमें [illegible] हाल।

यह पुस्तक छप चुकी है।

उनका द्वितीय ग्रन्थ था 'नौहा हज़रत नासिर[illegible]'। यह एक शोक-प्रकाशक कविता थी, जो उन्होंने अपने उस्ताद [illegible] उमरावबेगके गुरु नासिर शाहकी मृत्युके अनन्तर लिखी थी। यह पुस्तक भी छप चुकी है। अपना दुःख वर्णन करते हुए आपने लिखा है—

"[illegible] नालये [illegible] हुस्ने [illegible]।
एक आलमको रुलायेगा जो [illegible]।

'[illegible]-हुस्न'—मुंशीजीके ग्रन्थोंमें यह [illegible] सर्वोच्च है। इसका पूरा नाम है '[illegible]' [illegible]

थे कि सारे दिन खेलते रहनेपर भी, जो पाठ्य-विषय एक दफे सुन लेते या पढ़ लेते, वह सदाके लिए कण्ठस्थ हो जाता। मिडिलकी परीक्षाके थोड़े ही दिन रहे थे कि आपको उसमें शामिल होनेकी उमग पैदा हुई। पिताजीसे कहा। वे समय कम रह जानेकी वजहसे पहले तो सहमत न हुए, परन्तु बालक जगनकिशोरके विशेष अनुरोध करनेपर अनुमति देनी ही पड़ी। परीक्षा हुई और आप उसमे बैठे। पर्चे अच्छे हुए थे, और आप सन्तुष्ट ही नहीं, बल्कि खुश थे, परन्तु जब नतीजा आया, तो आपका नाम उत्तीर्ण विद्यार्थियोंमें न था! आपने तुरन्त परीक्षा विभागको लिखा। लिखा-पढ़ी होते-होते ही दूसरी परीक्षाका भी समय आ गया। आप उसमें भी शामिल हुए। इस बार आप प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए। उसके कुछ दिन पीछे ही, गत वर्षवाली परीक्षाका भी नतीजा निकल आया—और आप इतनी थोड़ी तैयारीके बाद भी दूसरी श्रेणीमें पास हुए थे, परन्तु किसी ग़लतीकी वजहसे नाम रह गया था! इस तरह मुशीजीको दो सार्टिफिकेट प्राप्त हुए।

इसके बाद वकालतका इरादा हुआ और आप फतहाबादमें स्व० मुशी कालकाप्रसादके पास रहकर वकालतकी तालीम लेने लगे, और मुख़्त्यारीकी परीक्षा पास की। इनकी मुख़्त्यारी फीरोज़ाबादमें खूब चली, और आगरेमें प्रैक्टिस करते हुए आप राजा साहब अवागढके ख़ास वकील भी रहे।

'कवि बनाये नहीं बनता'—मुशीजी भी जन्मसे ही कवि थे। सचमुच ही, उनकी कविता-प्रारम्भका समय निर्धारित करना कठिन है। बचपनमें चुटकले 'मिसरों' के रूपमें प्रकट होते थे; फिर ज्यों-ज्यों समझ आती गई, त्यों-त्यों उन चुटकुलोंमें भी रंग आने लगा। केवल २१ वर्षकी उम्रमें 'बहारे-अजुब्या'—जैसे गम्भीर काव्य-ग्रन्थकी रचना करना निश्चय ही असाधारण कार्य है। यह उनका प्रथम ग्रन्थ था, पर उससे उनकी प्रतिभा यथेष्ठ मात्रामे प्रकट होती है।

तबीबे-मरीज़ान आलम यही था,
अज़ीज़े-दिलोजान आलम यही था।

ख़िरदमन्द चीनी है जिसके सनाख़्वाँ,
निसारा हुआ जिससे यूरोपका ताबाँ।
किया मिस्र यूनानको जिसने चुस्ताँ,
रहा जिससे ख़ुरशीद हिकमत दुरख़्शाँ।

फ़ज़ायलके आदाब जिसने बताये,
रज़ायलके असबाब जिसने घटाये।

करिश्माँ वह इक हिकमते-हिन्दका है
नतीजा वह इक ख़िदमते-हिन्दका है
नमूना वह इक फ़ितरते हिन्दका है,
नगीना वह इक दौलते-हिन्दका है।

बिछा फ़र्शे-आलम पै दामाँ उसीका,
रहा सबकी गर्दन पै अहसाँ उसीका।

इसी बागे-रंगीनि आलम था रंगीं,
इसी रश्के-जन्नतका हर इक था गुलचीं,
इसी गजे हिकमतकी होती थी तहसीं,
इसी कासे-सुरजन्से थी सबको तस्कीं।

मगर आजकल इन्क़लाबे-ज़माने
फ़ज़ीलतके गौहर हुए गुम ख़ज़ाने।

मुक़ामे तअस्सुफ़ है, हसरतकी जा है,
कि ये क़ौमें मुस्ताज़ दर दर गदा है,
न दस्तारमें इसकी पश्मन ज़रा है,
न महफ़िलमें नाज़ीम इसकी रवा है।

न कोई फ़क़ीराना इसमें है काबिल
न मुस्ताज़ है यह वे हैरत मसाइल।

हुस्न मौसूम व मद्दो जज़र हिन्द'। यह मौलाना हालीके सुप्रसिद्ध मुसद्दस-के जवाबमें लिखा गया था।

मौलाना हाली साहबने अरबकी उन्नतिका चित्र खींचते हुए लिखा था—

"इधर हिन्दमें हर तरफ था अँधेरा,
उधर था जहालतने फारसको घेरा;
न भगवानका ज्ञान था ज्ञानियोंमें,
न यज़दाँपरस्ती थी यज़दानियोंमें।"

यह भ्रमात्मक वर्णन मुंशी जगनकिशोरको पसन्द नहीं आया, और इसी कारण आपने मौलाना हाली साहबके मुसद्दसके उत्तरमें अपना मुसद्दस लिख डाला। हिन्दुस्तानकी तारीफ करते हुए आपने उसमें लिखा है—

"अरब ले गया इसके खिरमनसे खोशा
मिला इसके भण्डारसे सबको तोशा।"

मुंशीजीका यह काव्य देशभक्तिके भावोंसे परिपूर्ण है। इसके कुछ पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं.—

"जिसे आज सब हिन्द कहते है क्या था,
जहाँसे निराला जज़ीरानुमा था,
लताफ़तसे शक्ले—जिना दिलकशा था,
शुजाअतसे आलम पै फ़र्मारवा था।
हरएक जा तहव्वुर नुमायाँ था इसका,
सितारा बलन्दी पै ताबाँ था इसका।
इसीकी ज़मींमें शफ़ाका असर था,
इसी खाकमें कीमियाका असर था,
इसीकी दवामें बलाका असर था,
इसीकी दुआमें दवाका असर था।

वह अतनाफ थे जिनकी हैबतसे लरजां,
लरे चर्ख़ हर लहज़ा मिर्सोज़ो-कंवां।
जो देखें वही आज नस्लोंको यारां,
तो रह जायें दांतोंमें उंगली दबाकर।
जो मोहताजो बेजर हो रुसवा तो सच है,
जो मुफलिसको हो जाय सौदा तो सच है,
जो मख़लूक हो ख्वारे-दुनियां तो सच है,
जो मायूस हो गर्के-दरिया तो सच है।
मगर जब कि बेआबरू हो तवंगर,
तो समझो कि अब बस उलटता है दफ्तर।

× × × ×

खेद है कि यह उत्तम काव्य-ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित पड़ा हुआ है!

'मुबाहिसा फीरोज़ाबाद'—सन् १८८३ में आर्यसमाज फीरोज़ाबादसे जैनियोंने शास्त्रार्थ किया था। मुंशीजीने उस शास्त्रार्थका यथार्थ वर्णन बड़ी रोचक कवितामें किया था। आप आर्य-समाजी विचारोंके थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पुस्तक आर्य-समाजी दृष्टिकोणसे लिखी गई थी।

'नाटकावली'—आपको नाटक लिखने और खेलनेका बड़ा शौक था। आपके मित्रोंने भारत [illegible] नाटक खेला था जो लोगोंको बहुत पसन्द आया था। तत्पश्चात् आपने विद्या-अविद्या नाटक लिख डाला। इसमें भारतकी उन्नति और अवनतिका चित्र बड़ी सरल भाषामें चित्रित किया गया था। इस नाटकको आपने अपने साथियोंके साथ स्टेजपर खेला भी था। आपके मित्रोंने भारतोद्धारक नाटक मण्डली बनाई थी, और आपके नाटक दूसरे नगरोंमें भी खेले गये थे।

'विद्या-अविद्या'—दुर्भाग्यसे यह नाटक कहीं खो गया। इसके एक-आध पद्य किसी-किसीको याद रह गये हैं। भारत [illegible]

ताम्मुलसे वरबादियाँ इसकी देखो,
खराबीमें आबादियाँ इसकी देखो,
असीरीमे आज़ादियाँ इसकी देखो,
गमो-दर्दमें शादियाँ इसकी देखो।
फकीरी है लेकिन अमीरीकी बू है,
फितादा है पर दस्तगीरीकी बू है।

विगड़कर न बननेको तैयार हैं हम,
फिसलकर न उठनेको नाचार हैं हम,
सम्हलकर न चलनेको वीमार हैं हम,
बनावटकी बातोंमें हुशियार हैं हम।
तनज्जुलको इक खेल जाना है हमने,
विगड़नेको तकदीर माना है हमने।

कहाँ हैं वे अहले-नज़रके खज़ाने,
कहाँ हैं वे खूने-जिगरके खज़ाने,
कहाँ हैं वे इल्मो-हुनरके खज़ाने,
कहाँ हैं वे अब मालो-ज़रके खज़ाने।
यकायक ही गैरोंके कावूमें पहुँचे,
वो किसके थे और किसके पहलूमे पहुँचे।

जहाँमे अगर हर मरज़की दवा है,
तो अज़मतकी तदवीर क्यों नारवा है,
हर इक दर्दे-इन्साका दरमाँ लिखा है,
मगर नाउमेदीका रहना बुरा है।
अलालतमें सेहतकी उम्मेद खुश है,
फलाकतमें दौलतकी उम्मेद खुश है।

वह असलाफ थे जिनकी ग़मगीरें बुरीं,
उदूपर ववक्ते विगा शौला अफगाँ,

मुंशीजीके जो हस्त-लिखित नाटक अभी मिलते हैं, वे ये हैं गोपीचन्द, प्रह्लाद, नलदमन और शीरीं-फरहाद।

पाठकोंके मनोरंजनके लिए गोपीचन्द नाटकके दो-एक पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं —

रानी अभयसिंह दरबानसे कहती है—

"गौरसे सुन अरे दरबाँ ये हकीकत मेरी,
है गमो रंजसे लबरेज हिकायत मेरी।
शबको एक ख्वाबे परेशां नजर आया मुझको,
याँ लगी आँख उधर सो गई किस्मत मेरी।
मैं तो उस ख्वाबको महशरका नमूना समझी,
क्या बताऊँ हुई उस वक्त जो हालत मेरी।
चूड़ियाँ हाथकी टूटी नजर आईं मुझको,
बढ़ गई देखके इस रंजको हैरत मेरी।
था अयाँ हर दरो दीवारसे वीरां होना,
खींचती थी सुये सहरा मुझे वहशत मेरी।
सांपकी तरहसे बल खाती नथने गाये
नाकमें आया था दम तंग थी हालत मेरी।
हो न ताखीर अभैसिंह कि है दिलको [illegible],
जल्द राजाको सुना जाके हकीकत मेरी।
बस यहाँ उनको बुला ला कि तसल्ली हो मुझे
इस घड़ी सख्त परेशां है तबीयत मेरी।'

राजा अपनी माँसे कहता है—

"सोये देती है क्यों [illegible],
तूने ऐ माँ ये क्या है [illegible]?
किस तरह अपने जनाज़े जाऊँ,
किस तरह अपने तूही [illegible]?

विद्यासे प्रेम करता था, अविद्यापर आसक्त हो गया है। विद्या फिर भी प्रेमवश होकर उसके पास आती है, और इस प्रकार अपना परिचय देती है—

"मैं विद्या हूँ तुम मुझे पहचानते नहीं,
ऐसे गये हो भूल कि कुछ जानते नहीं।
काशी नगर वतन है पुराना ग़रीबका,
पर इन दिनों नहीं है कुछ इस बदनसीबका।"

परन्तु भारतने इसकी कुछ पर्वाह नहीं की और अन्तमें अपने वैरी कलजुग राजाके हाथ गिरफ़्तार हो गया। भारत गढ़ेमें गिरा हुआ अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप कर रहा था, अन्तमें एक सन्यासी (स्वामी दयानन्द) ने हाथ पकड़कर उसे गढेमेंसे निकाला और उसकी प्रेम-पात्री विद्यासे मिलनेका मार्ग बतलाया।

"है यही फ़िक्र तो चमकेगा सितारा तेरा,
दुख ज़रा देरमें मिट जायगा सारा तेरा।
विद्‍याको न ज़मानेमें कहीं पायेगा,
वेद सागरके किनारे पै अगर आयेगा।
हाथ आ जायगी वह जाने-दिलोजाँ तेरे,
फ़ज़ले खालिकसे निकल जायेंगे अरमाँ तेरे।"

भारत उस संन्यासीकी बातपर विश्वास करके फिर अपने दिन फेरनेका उद्योग करता है।

अन्य नाटक—इसके अतिरिक्त आपने और भी कई नाटक लिखे, जैसे गोपीचन्द, प्रह्लाद, नलदमन, शीरीं-फ़रहाद और हरिश्चन्द्र। आपकी कवित्व-प्रतिभा बढती ही जाती थी, और अपने अन्तिम दिनोंमें आप फ़ारसीमें शकुन्तला नाटक लिख रहे थे। आपका विचार इस नाटकको ईरान भेजनेका था। दुर्भाग्यसे यह नाटक अपूर्ण ही रहा, और इससे भी अधिक दुर्भाग्यकी बात यह है कि यह अपूर्ण प्रति भी कहीं खो गई!

कैसे होगी ये बातें गवारा,
तूने ऐ माँ ये क्या है विचारा ?
छूट सकती है किससे अमीरी ?
मुझसे होगी न ऐ माँ फकीरी।
कैसे जगलमें होगा गुज़ारा ?
तूने ऐ माँ. . . . . .

माँका उत्तर—

छोड़ दे लोभ और मोह सारा,
मान ऐ जान कहना हमारा।
बैठ जा जल्द धूनी लगाकर,
साध अब जोग जगलमे जाकर।
बहरे हस्तीसे कर अब किनारा।
मान ऐ जान कहना हमारा।
छोड़ दे बेधड़क तख्ते-शाही,
जल्द ऐ जान हो बनको राही।
ढूँढ जाकर गुरूका सहारा।
मान ऐ जान. . . . . . .

नल-दमन नाटकके कुछ अंश यहाँ उद्धृत किये जाते है।

'नल-दमन'—नलका स्वप्नमें दमनको देखकर आसक्त हो जाना।

वज़ीरसे कहना, वज़ीरका समझाना और इश्ककी बुराई करना—

नल—"सच है जो कुछ कि कहा तुमने, मगर क्या कीजे,
दिलके लगनेको कोई शग्ल तो पैदा कीजे।"

वज़ीर—"कीजिए बहरे खुदा, सैरे गुलिस्ताँ जाकर,
देखिए आँखसे रगे गुले-खन्दाँ जाकर।"

नल—"खन्द-ए-गुल तो न ज़िनहार खुश आएगा मुझे,
खन्द-ए-यारकी फिर याद दिलाएगा मुझे।"

'रखना मेरी मज़ारपै दो सग सब्ज़ सुर्ख़' इस समस्यापर भी आपने पच्चीस शेर वनाये थे।

मुशीजी वडे आशु-कवि थे। एक वार उनके मित्र मुशी ब्रजविहारीलालने एक तरह उनके पास भेजी—

"मायूस मरीज़ोको मसीहा नही मिलता।"

उन् दिनो आप वकालतकी पढाईमें लगे हुए थे, आपने फौरन ही उक्त समस्याके नीचे लिख दिया—

"कानूनसे दम भर मुझे वकफा नहीं मिलता।"

एक वार इनके मित्र अग्रेजी मिडिलकी परीक्षाके कारण वड़े परेशान वैठे हुए थे। आप वहाँ जा पहुँचे। पूछनेपर मित्रोने कारण वतलाया। आपने उसी वक्त ये पद्य वना डाले—

"रात दिन हमसे न मेहनत होगी,
ये भी कर लेंगे जो फुर्सत होगी।
स्टडी कोहसे भारी है हमें,
किस पै पत्थरकी तवीयत होगी।
गर मुकद्दरमें नहीं शीरीनी,
दाल रोटी पै कनाअत होगी।
ऐ मिडिल तुझ पै खुदाकी लानत!
हिन्दसे कव तेरी रुखसत होगी।
मारे फिरते हैं तेरे शैदाई,
जानें क्या-क्या अभी ज़िल्लत होगी"

मित्रोंके कहनेसे आपने एक वार अपने एक साथीके विषयमें, जो कभी अपने सौन्दर्यके लिए प्रसिद्ध नही थे, तत्काल ही ये शेर वना डाले—

"दहने ज़िश्तको गोपालका गिलखन कहिये,
या इसे इक खुमे चिरकीनका रोज़न कहिये।

"कमयाव शै कलील भी होती है कीमती,
इतना भी वस्फ़ हुस्ने सुखनवरसे कम नही।"

मुशी जगनकिशोरजी खूब हँसते और हँसाते थे। आपके एक हास्य-पात्र, जो एकाक्षी थे, वैंगनके नामसे चिढते थे। उनको छेड़नेके लिए आपने तत्काल शायरी की—

"नामे वैंगनसे जो चिढ़ते हो ग़ज़व करते हो,
क्या कही भूलमें तुम खा गये काना वैंगन?
मैं न लूँगा तेरे रुख़सारे सियाहका वोसा,
कौन खाता है ज़मानेमें पुराना वैंगन?
क्यो ख़फा होते हो थू-थूका तमाशा क्यो है,
हाय, ऐसा तो वुरा भी नही नाना वैंगन।"

मुशीजी सितार वहुत अच्छा वजाते थे। आपको चौसर खेलनेका भी शौक था और शतरजके तो आप वहुत अच्छे खिलाड़ी थे।

जिसने अपनी प्रखर प्रतिभाके प्रकाशसे तत्कालीन कवि-मंडलको आश्चर्यचकित कर दिया था, जिनके हास्यप्रिय स्वभावपर सभी मुग्ध थे और जिनसे भविष्यमें वड़ी-वड़ी आशाएँ थी, वही मुंशी जगनकिशोर ३५ वर्षकी आयुमें (३० मार्च सन् १८९९को) इस ससारसे चल वसे। फ़ीरोज़ावाद नगरका गौरव वढाकर उन्होने नगर-निवासियोको अपना चिरऋणी वना लिया। मुंशीजी नि.सन्तान मरे, पर उनका काव्य ही चिरकाल तक उनके नामको जीवित रखेगा।

"रहता सुख़नसे नाम कयामत तलक है 'ज़ौक',
औलादसे तो है यही दो पुश्त चार पुश्त।"

मार्च १९३४]

थी। आपने कानून पढ़ना शुरू किया। उन्हीं दिनों आपका परिचय प्रयाग समाचारके सम्पादक प० देवकीनन्दन त्रिपाठीके साथ हुआ और उनके पत्रके लिए लेख लिखने लगे। कुछ दिनों पण्डित [illegible]के यहाँ हाईकोर्टमें क्लार्कीका काम भी किया। वेतन ४०) मिलता था। प्रयागमें रहते हुए आप हिन्दू-सभामें सम्मिलित हुए। सभापति थे प० आदित्यराम भट्टाचार्य (संस्कृत अध्यापक म्योर सेण्ट्रल कालेज)। पण्डित मदनमोहन मालवीयजी इसके सदस्योंमें से थे। सभाके वार्षिकोत्सवमें कालाकांकरके राजा रामपालसिंहजी आये। वहाँ चक्रवर्तीजीका भाषण सुनकर उन्होंने आपको 'हिन्दुस्थान' पत्रके सम्पादनका काम स्वीकार करनेके लिए कहा। हाईकोर्टकी नौकरी छोड़कर आप राजा साहबके यहाँ चले गये। उस समय पण्डित-[illegible] जी साहबने आपसे कहा—"थोड़े दिन बाकी है। कानूनकी परीक्षा पास कर लो। मुन्सिफ बनवा दूँगा।" मगर पत्र-सम्पादनके प्रति रुचि होनेसे आपने उनकी बात न मानी। राजा साहब आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। चक्रवर्तीजी उनके फैसले लिखा करते थे। सन् १८८६ में आप यह काम छोड़कर घर चले आये। एण्ट्रेन्सकी परीक्षाकी तैयारी करने लगे, राजा साहबने बहुत बुलाया, पर आप नहीं गये। एण्ट्रेन्सकी परीक्षा पास की और "भारतमित्र' में सम्पादनका काम करने लगे। [illegible] 'भारत-मित्र' के आफिसमें काम करते थे और मैट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूट (विद्या-सागर कालेज) में पढ़ते भी थे। इस प्रकार सन् १८८८ में एफ० ए० की परीक्षा पास की और सन् १८९० में आनर्सके साथ बी० ए० हुए।

सन् १८८९ ई० में हरीसन रोड बनती थी। 'भारतमित्र' के मैनेजिंग डाइरेक्टर थे जगन्नाथ खन्ना, जो म्युनिसिपल कमिश्नर भी थे। सड़क बनते समय बड़ाबाजारका एक मन्दिर टूटने लगा। 'भारतमित्र" में चक्रवर्तीजीने इसका घोर विरोध किया। खन्नाजी बिगड़े और उन्होंने कहा—"आप अपनी कलमको सुधारिये और 'भारतमित्र' में [illegible]

आपके मौसेरे भाईने आपको विक्टोरियास्कूलमें छठवीं श्रेणीमें भर्ती करा दिया। सन् १८७९ ई० में आपने अंग्रेजी मिडिलकी परीक्षा पास की। मिडिल पास करके जब सैकिण्ड क्लासमें पहुँचे तो पिता बीमार पड़े। कुछ उपार्जन करना आवश्यक हो गया। विद्यार्थियोंको प्राइवेट तौरसे पढ़ाकर पच्चीस रुपये महीने कमाने लगे। उसी समयके पढ़ाये हुए विद्यार्थियोंमें एक इलाहाबाद हाईकोर्टके जज जस्टिस श्रीलालगोपाल मुकर्जी हैं।

सन् १८८१ के दिसम्बरमें एण्ट्रेन्सकी परीक्षा होनेवाली थी, सितम्बरमें पिताजी बीमार होगये और उनकी मृत्यु भी हो गई। आप स्वयं भी बीमार पड़ गये। हेडमास्टरने खर्च भेजकर बुलाया पर परीक्षामें बैठ नहीं सके। तदनन्तर आप नौकरीकी खोजमें कलकत्ते आये; पर बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी कहीं नौकरी न मिली। उन्हीं दिनों आपने अपनी स्त्रीके गलेके सुनहरे हारको बेचकर साग बेचना शुरू किया था। आपके गाँवसे पाँच मील पर भागड़ नामक स्थानमें प्रति सप्ताह हाट लगती थी। उसीमें आप साग बेचकर चार-पाँच रुपये कमा लेते थे और इस प्रकार अपना जीवन-निर्वाह करते थे। आपके गाँवके लोग इस बातसे बड़े क्रुद्ध थे, वे आपकी बदनामी करते थे और जाति-च्युत करनेकी धमकी भी देते थे!

जब आपके पास ६०-७० रु० जमा हो गये तो आप अपने कुटुम्बके साथ गाज़ीपुर चले आये। वहांसे एक सज्जनने २०) मासिक और कुटुम्ब भरके लिए अन्न देनेका वचन देकर आपको अपनी प्रयागकी दूकानपर भेज दिया। वहीं आपने बुककीपिङ्ग सीखा। किन्तु शीघ्र ही दुकानके दुर्व्यवहारके कारण आपने यह काम छोड़कर रेलके लोकोमोटिव डिपार्टमेण्टमें नौकरी कर ली। २० रु० मिलते थे। एक दिन साहबसे झगड़ा हो गया इसलिए आपने यह काम भी छोड़ दिया और ट्यूशन करके अपनी गुज़र करने लगे।

उन दिनों एण्ट्रेन्स पास किये बिना ही कानूनकी परीक्षा दी जा सकती

कीजिये ।" चक्रवर्तीजी इसपर राजी न हुए। खन्नाजीको कोई दूसरा आदमी नहीं मिला, इसलिए उन्होंने चक्रवर्त्तीजीको नौकरी पर बना रहने दिया। उन्ही दिनों चक्रवर्त्तीजीने वंगवासीवालोंसे महाभारतका अनुवाद निकालनेको कहा। वे तैयार हो गये और ६०) रुपये मासिक पर उनके यहाँ काम करना प्रारम्भ किया। सन् १८९० में "हिन्दी-वंगवासी" आपके ही कहनेसे निकाला गया था और आप ही दस वर्ष तक उसके सम्पादक रहे। इस बीचमें सन् १८९४ में आपने बी० एल० की परीक्षा भी पास कर ली। "वंगवासी"में रहते हुए आपने कई पुस्तकें लिखीं; पर उनपर आपने अपना नाम नहीं छपाया। 'हिन्दी वंगवासी' छोड़नेके वाद कुछ समय तक आपने (Order supply) सामान भेजनेका काम किया, तत्पश्चात् फिर बाबू बालमकुन्दजी गुप्तके साथ "भारतमित्र"का सम्पादन करने लगे।

इसके कुछ वर्ष वाद आप "श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार"का सम्पादन करनेके लिए वम्बई गये। उसके वाद कुछ समय तक भारतधर्म-महामण्डलके 'मैनेजर और 'निगमागमचन्द्रिका" के सम्पादक भी रहे।

सन् १९०६ में आप घर आये और मोदीकी दूकान खोली। स्वदेशी आन्दोलनका युग था। उसमे आपने खूब काम किया।

कुछ समय वाद "भारतमित्र" में फिर आ गये। और तीन वर्ष तक वहीं रहे। फिर व्यवसायमें हाथ डाला, नारियलकी सब सामग्रीको रासायनिक अनुसधान द्वारा काममें लानेके लिए कारखाना खोला, पर पूँजी विना वह न चल सका। आप ऋणग्रस्त हो गये।

सन् १९१३में व्यावर राजपूतानेके सेठ दामोदरदासजी राठीने आपको अपने यहाँ बुला लिया। वहाँ आप उनकी मिलके सेक्रेटरी और मैनेजर हो गये। यदि आप वहाँ रहते तो आपकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी हो जाती; पर आपके हिन्दी-प्रेमने आपको वहाँ नहीं रहने दिया। आप सीधे वम्बई पहुँचे और वहाँ "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" में काम

श्रीमती सत्यवती मल्लिक

"माताजी ! यह सवाल आता ही नही। बहुत किया, नही आता।"
—सात-आठ वर्षके भाषी (सुभाष) महाशय करुणोत्पादक ढगसे शिकायत कर रहे थे। चेहरेपर बेहद चिन्ता थी।

चाय पीनेके बाद मै गोर्कीके जीवन-चरितका स्वाध्याय कर रहा था और गोर्कीने रूसी साहित्य-सेवियोकी जो अद्भुत सहायता की थी, उसका स्फूर्तिप्रद वृत्तान्त पढ़ रहा था। सुभाषकी गम्भीरतापूर्ण मुखमुद्रा देखकर गोर्कीको बन्द करते हुए मैने कहा—"लाओ भाई ! मै तुम्हारा सवाल हल करूँ।"

"३२३ गज़ १०६ हाथ, २५ गिरह और ५ अगुलके अगुल बनाओ,"—कुछ ऐसा ही सवाल था। दो बार कोशिश की, पर उत्तर ठीक नही मिला ! बड़ी झुँझलाहट हुई। सुभाषजी कह रहे थे—"सिर्फ एककी ग़लती पड़ जाती है।" फिर मैने प्रयत्न किया, पर फिर वही असफलता ! तंग आकर मैने कहा—"यह सवाल मुझसे नही होता।"

सुभाषकी सुयोग्य माता श्रीमती सत्यवती मल्लिकने, जो दूरपर बैठी हुई कुछ काम कर रही थी, बड़े प्रेमपूर्वक उसे अपने पास बुला लिया और उसका सवाल हल करनेमें लग गईं।

मैने मनमे सोचा कि बच्चोका पालन-पोषण, पढाना-लिखाना और साहित्य-सेवा इन दोनोको साथ ले चलना अत्यन्त ही कठिन कार्य है, और श्रीमती सत्यवतीजी इस कठिन कार्यको बड़ी लगन, सफलता और माधुर्यके साथ कर रही है। आदर्श पत्नी, सुसस्कृत गृहस्थ और प्रेमी माता होनेके साथ-साथ वे सफल कलाकार भी हैं। घरेलू जीवनको किस प्रकार कलापूर्ण और सौन्दर्यमय बनाया जा सकता है, यह कोई उनसे सीख ले।

एक छोटे-से स्कूल या आश्रमके लिए ही है; भविष्य जीवन और परिस्थितियोंपर निर्भर है।"

सुयोग्य माता-पिताकी सन्तान

"प्रात-कालकी शान्त स्निग्ध वेलामें, जव मेरी नीद खुलती है, अपना श्रीनगरका सफेद कमरा मेरी आँखोंके सामने घूम जाता है। सर्दियोंके दिन होते थे। कमरेके वाहर वराण्डेमे चारो ओर घासकी चटाइयाँ वर्फीली हवाको रोकनेके लिए लगी होती थी और कमरा भी चारो ओर गर्म पर्दोंसे ढका रहता था। वाहर सडकोपर और छतोपर तमाम वर्फ-ही-वर्फ पडी होती, जिसे हम रजाईमेंसे जरा-सा झाँककर खिड़कीके किसी भागमें से, जहाँ पर्दा कुछ हटा होता, देख लेती। साढे चार वजे अँगीठी सुलगाते हुए अथवा कमरेमें झाड़ू लगाते हुए माताजीके गानेकी आवाज कानोमें पडती। हम भाई-वहनोकी इच्छा होती कि अभी कुछ देर विस्तरोमे लेटी रहे, पर उसके वाद जव पूज्य पिताजी भी माताजीके साथ उसी स्वरमे गाने लगते, तो मैं भाई जयदेव तथा छोटी वहनें भी साथ-साथ गाने लगती—

"किस भरोसे सोये रह्या तूं, रहणा ई दो दिन चार वन्दे।"

"तूं कुछ कर उपकार जगत्में—

मानुष जनम अमोलक तैनूं मिलै न वारम्वार।"[1]

श्रीमती सत्यवती मल्लिकजीकी पूज्य माताजी अत्यन्त परिश्रमी थी, और उनकी भावना और तपके कारण ही यह कुटुम्व इतना सुसस्कृत वन सका। दुर्भाग्यसे माताजीका देहान्त कम उम्रमें हो गया। उस समय सत्यवतीजी १९ वर्षकी थी। उनका विवाह हो चुका था, फिर भी डेढ वर्ष तक मायकेमें ही रहकर उन्होंने भाई-वहनोका पालन-

---

[1]'मेरी माताजी' नामक एक अप्रकाशित लेखसे।

श्रीमती हैरियट एलीज़बेथ स्टोके उदाहरणसे वे भारतीय महिलाएँ जिन्हें घर-गृहस्थी चलाते हुए साहित्य-सेवा करनेका शौक है, कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। श्रीमती स्टो ५ बच्चोंकी माँ थीं और जब छठवां बच्चा उनके हुआ था, तो उन्होंने अपनी भाभीको लिखा था—"भाभी, जबतक बच्चा रातको मेरे पास सोता है, तबतक मैं कोई काम नहीं कर सकती। पर मैं करूँगी ज़रूर। अगर ज़िन्दा रही, तो दास-प्रथापर किताब ज़रूर लिखूंगी।"

श्रीमती स्टो बर्तन साफ़ करतीं, कपड़े धोतीं, [illegible] सीतीं, किवाड़ोंपर रंग करतीं और पतिदेवके जूते भी गाँठ दिया करती थीं।

श्रीमती सत्यवतीजीकी रचनाएँ

श्रीमती सत्यवतीजीने अधिक नहीं लिखा है, पर जो कुछ लिखा है बहुत अच्छा लिखा है। उनकी कहानियों तथा संस्मरण [illegible] 'दो फूल' हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बईसे प्रकाशित हुआ है। गार्हस्थ्य जीवनके माधुर्यकी जैसी अद्भुत छटा इन रचनाओंमें दीख पड़ती है वैसी शायद ही किसी हिन्दी-लेखिकाने चित्रित की हो। कई कहानियाँ, तो अपनी किस्मकी अद्वितीय हैं यथा 'नारी-हृदयकी साध', '[illegible]'— 'पतझड़' 'भाई-बहन' और 'साथी'। इनका [illegible] तो सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक [illegible] हो सकता है।

'दो फूल' के अतिरिक्त उनकी दो रचनाएँ हैं, जिनमें [illegible] अपनी नन्ही बच्चियोंके लिए सुन्दर [illegible] हैं और [illegible] बच्चोंके लिए [illegible] सुन्दर [illegible] हैं। [illegible] सत्यवती मल्लिककी साहित्यिक रुचि तथा [illegible] पाठकोंको लग जायगा। श्रीमती सत्यवतीजीकी प्रशंसा हम [illegible] नहीं कर रहे कि वे महान् लेखिका बन गई हैं, बल्कि [illegible] योग्य लेखिका बननेकी [illegible] हैं।

लालकी साधना और सवेरे के ९ बजेसे रातके ८ बजे तक दूकानपर पिसने-वाले मल्लिकजीका घोर परिश्रम ही उस सांस्कृतिक वायुमण्डलके मूलमे है, जो आज मल्लिक-परिवारमें पाया जाता है।

स्वर्गीय दीनबन्धु एण्ड्रूजने एक पत्रमें मुझे लिखा था—'Malliks are most charming people and I am grateful to you for having introduced them to me"—अर्थात् "मल्लिक-परिवार अत्यन्त आकर्षक है, और उसका परिचय करा देनेके लिए मै तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।"

श्रीमती सत्यवतीजी वस्तुतः प्रगतिशील है। आज चेखव पढ रही है, कल तुर्गनेव, तो परसो इब्सन। कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथकी तो वे अनन्य भक्त है, और मूल बँगलामे ही उनके ग्रन्थोंको पढती है। चित्रकलाका भी उन्हे शौक है, और सितार बजानेका अभ्यास उन्होने कई वर्ष किया था। घरके गोरख-धधोमें फँसे रहनेपर भी वे 'वलाका' (कवीन्द्र), 'लीज़ा' (तुर्गनेव), 'डॉल्स हाउस' (इब्सन), 'गुड अर्थ' (पर्लबक)इत्यादि को पढ़नेके लिए वक्त निकाल लेती है। श्रीमती सत्यवतीजीका पुस्तकालय उनके विवेक तथा प्रगतिशीलताका सूचक है।

११–२–३८ के पत्रमे उन्होने लिखा था—"बहुत-सा समय तो मुझे बच्चोकी पढ़ाईके लिए देना पड़ता है—विशेषतया भापीको। उर्मिलाजीका छोटा लड़का भी बड़ा समझदार किन्तु शरारती है, सो दोनो मिलकर काफ़ी परेशान करते है।"

५–५–३८ की चिट्ठीमे लिखा था—"गर्मी बहुत है, इसलिए लिखने पढनेका कुछ भी कार्य नही हो रहा है। केवल गृहस्थीके गोरख-धंधोंमें ही दिन बीत रहे है। कभी चूल्हा, कभी तन्दूर! बच्चोंके स्कूल सवेरेके हैं, सो दिन-भर उनके साथ सिपाहियोकी तरह ड्यूटी देनी होती है।"

'टाम काकाकी कुटिया'(Uncle Tom's Cabin)की अमर लेखिका

नारी-हृदयके भावोका जैसा कलापूर्ण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण श्रीमती कमला देवी चौधरीने किया है, वैसा सत्यवतीजी अभी नही कर सकती, और न उनमें श्रीमती होमवतीजीकी तरह हिन्दू-नारीके दुर्भाग्यो तथा दुःखोका वर्णन करनेकी ही शक्ति है; पर कुछ चीजें ऐसी है, जो सत्यवतीजीकी निजी विशेषताएँ है। बाल-मनोविज्ञानका बडा ही आकर्षक वर्णन उनकी रचनाओमे पाया जाता है, और प्राकृतिक सौन्दर्यका चित्रण तो मानो उन्हींके हिस्सेमे आया है। यह चित्रण नपे-तुले शब्दोंमें यथा-स्थान इतने सुन्दर ढंगसे किया गया है कि उनके उच्चकोटिके कलाकार होनेमें किसीको सन्देह नही हो सकता। काश्मीरकी हिमाच्छादित घाटियों, मनोहर झीलो तथा विशाल वृक्षोने जो पाठ उन्हे पढाये है, वे अधिकांश लेखक-लेखिकाओंके लिए दुर्लभ है।

हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी कवियित्रियों तथा लेखिकाओमें हमें एक भी ऐसी नही दीख पडी, जो सर्वसाधारणके साथ अपनेको बिल्कुल मिला देनेमें समर्थ हुई हो, जो मूक दीन-हीनोको वाणी प्रदान कर सकी हो और जिसके हृदयकी आकाक्षाएँ तथा दैनिक जीवनकी क्रियाएँ एक ही दिशामें साथ-साथ चलती हो। इसका मुख्य कारण यह है कि ये लेखिकाएँ प्राय मध्यमश्रेणीकी है, और जब कभी ग़रीब बहिनोंके साथ मिलने जुलनेका प्रयत्न वे करती भी है, तो उनके प्रयत्नमें एक प्रकारकी कृत्रिमता-सी आ जाती है। इसमें उनका दोष बहुत कम है। जब देशके सर्वमान्य नेता श्री जवाहरलालजी भी अपने आभिजात्यके अभिमानको छोडनेमें पूर्णतः सफल नही हो सके, तब मामूली स्त्री-पुरुषोकी तो बात ही क्या है। अपने वर्गकी त्रुटियों, कमज़ोरियो और सीमाओको उल्लंघन करना एक प्रकारका योग है, और योगी बनना कोई आसान बात नही। सत्यवतीजीके हृदयमे गरीब जनताके प्रति वास्तविक सहानुभूति है, और वे उस अवसरकी प्रतीक्षा भी कर रही है, जब उन्हें समाजके निम्नतम धरातलपर रहनेवालोकी सेवा-सुश्रूपा करनेका

आया। मैंने उनसे तिवारीजीका वृत्तान्त पूछा। जो कुछ उन्होंने बतलाया उसे सुनकर आश्चर्य हुआ और खेद भी। पाठक भी उसे सुन लें।

तिवारीजी फ़ीरोज़पुर ज़िलेके किसी ग्राममे सन् १८७२के लगभग पैदा हुए थे। पुराने रहनेवाले जिला कानपुरके थे। माता-पिता कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। सन् ५७के गदरमें कानपुर ज़िलेमें इनके पिता रहते थे। पिताजी तीन भाई थे। तिवारीजीके पिता इनमें सबसे छोटे थे। तीनो किसी गाँवमे रहते थे। उस समय दोनो बड़े भाई गाँवमें थे, छोटा भाई बाहर गायें चरा रहा था। अंग्रेज़ी फ़ौजने (सम्भवत. यह जनरल नीलकी फौज थी) गाँवको आकर घेरा और अन्य लोगोंके साथ-साथ दोनो बड़े भाइयोंको फाँसीपर लटकवा दिया गया! छोटेको जब पता लगा, वह बाहर-ही-बाहर भागकर अपनी ससुराल पहुँचा। वहाँ भी वही आफत थी। वहाँसे वह अपनी स्त्रीको लेकर पजाब भाग गया। उसने मुक्तसर ज़िला फीरोज़पुरमें किसीके यहाँ नौकरी कर ली। वही उसके औलाद हुई। वही तिवारीजीका जन्म सन् १८७२के लगभग हुआ था।

तिवारीजीकी दो बहनें और थीं। दोनो इनसे बड़ी थीं। एकका विवाह मेजारोडमें हुआ, जो मर चुकी है। दूसरीका विन्ध्याचल ज़िला मिरज़ापुरमें हुआ, जो अभी जीवित है। उसके कई पुत्र और कन्या भी है।

तिवारीजी जब लगभग दो वर्षकी आयुके थे, इनकी माँको ४ सालकी सख्त कैदकी सज़ा हुई। तिवारीजी अपनी माताके साथ जेल गये। वही पढना शुरू किया।

माँ पढी-लिखी थी। जेलमें और पढा-लिखा। जेल जानेसे पहले ही तिवारीजीके पिताका देहान्त हो चुका था। माँने बाहर निकलकर 'काहनसिंहवाला' ज़िला फीरोज़पुरमें किसी जाटके साथ, जिसका नाम सोभासिंह था, पुनर्विवाह कर लिया। जाटसे दो लड़के हुए, दोनो अभी

किया। इतनेमें महात्मा गान्धीने रौलेट ऐक्टके विरुद्ध सत्याग्रहका ऐलान किया। तिवारीजीने फौरन यू० पी० सत्याग्रह-सभाके मन्त्री श्री सुन्दरलालजीके नाम एक लम्बा और हृदयवेधक पत्र लिखा और अपनी सेवाएँ अर्पित कीं—केवल सत्याग्रहके ही लिए नहीं, बल्कि उस आन्दोलनके समयमें हर प्रकारके कार्यके लिए। पाठशालाका काम दूसरेको सुपुर्द करके तिवारीजी इलाहाबाद आ गये। कुछ राष्ट्रिय पुस्तक बेचनेके लिए उन्हें लखनऊ भेज दिया गया। राजद्रोहका प्रचार करनेके अपराधमें लखनऊसे दो सालकी सज़ा हुई। उन्हें बरेली जेलमें रखा गया। यह उनकी तीसरी जेलयात्रा थी। इस बारकी जेलमें उन्हें और भी अधिक यातनाएँ दी गईं। स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब हो जानेके कारण लगभग एक सालके बाद ही जेलसे छोड़ दिये गये। निकलनेके बाद फिर युक्तप्रान्तके विविध ज़िलोंमें राष्ट्रिय पत्र और पुस्तकें बेचने और राष्ट्रियताका प्रचार करनेमें लग गये। अनेक राष्ट्रिय कविताएँ उन्हें कण्ठाग्र थीं, जिन्हें गा-गाकर प्रचार भी करते थे और बेचते भी थे।

सन् १९२१में 'क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट ऐक्ट'में स्वयंसेवक बनने और बनानेके अपराधमें फिर पकड़े गये और चौथी बार जेलकी यात्रा की।

इस बार जेलसे निकलकर कई ज़िलोंमें असहयोगका प्रचार करनेमें लग गये। सन् २४में फिर बहुत सख्त बीमार पड़ गये। कारण यह था कि मण्डला ज़िलेकी एक ऐसी तहसीलमें वह उस समय असहयोग-प्रचार कर रहे थे, जहाँकी आबहवा बहुत ही खराब थी और जहाँ मलेरियाका भयंकर प्रकोप रहता है। कुछ दिनोंके लिए मिर्ज़ापुर लौट आये। फिर स्वास्थ्य सुधारनेके लिए पंजाब गये। मसोराम, ज़िला होशियारपुरमें इस बार अछूतोंकी एक पाठशाला सन् २६में खोली। पूरे एक साल तक उसमें अछूत बालकोंको पढ़ाते रहे और सदुपदेश प्रचार करते रहे। सन् २८में स्वास्थ्य इतना अधिक खराब हो गया कि पाठशाला-का काम छोड़ना पड़ा। कुछ महीने तक पंजाबमें बीमार पड़े रहे।

दसवीं क्लासमे पहुँची, तो तपेदिकसे बीमार हो गई। अन्तको वह डलहौजी-में मर गई। तिवारीजीकी आयु उस समय ३५के लगभग रही होगी। एक बच्चा होकर मर चुका था।

तिवारीजीने फिर दूसरा विवाह नही किया। स्त्रीके मरनेके बाद दो-तीन वर्ष तक डलहौजी आर्य-स्कूलमें हेडमास्टरी की। उसके बाद संन्यास ले लिया। कुछ दिनो पहाडोमे गगोत्री, जम्नोत्री इत्यादिकी ओर भ्रमण किया। योग और प्राणायामका भी कुछ शौक किया। फिर देहरागोपीपुरमें अकाल पड़ा। तिवारीजीने अकाल-पीडितोकी खूब सहायता की। अकालके बाद फिर पंजाब लौट आये। इसके बाद कई वर्ष पंजाबके अनेक आर्यसमाजी स्कूलोमें अध्यापकका कार्य करते रहे। आप अध्यापक बहुत उच्चकोटिके थे। आर्यसमाजकी ओरसे धर्म-प्रचार भी करते रहे। पजाबके विविध जिलोंमें अनेक विद्यार्थी आपके पढाये हुए इस समय मौजूद है, जो आपको बड़े प्रेमसे याद करते है।

इसके बाद जर्मन-युद्धका समय आया। तिवारीजीमें धर्मप्रेम और समाज-सेवाके साथ-साथ देशकी आज़ादीका ख्याल भी काफी था। कहा जाता है कि सन् १९१४में शत्रु-राज्योंके कुछ लोग भेष बदलकर हिन्दुस्तानसे तिब्बतकी ओर जा रहे थे। उनके साथ ६० पंजाबी खच्चर-वाले भी थे। तिवारीजी भी कहींसे उनके साथ मिल गये। शायद कही विदेश जानेका विचार था। सुना जाता है, खच्चरवालोने सरहदके इस पार लौटकर अंग्रेज़ी अफसरोको खबर दे दी। तिवारीजी सरहदपर गिरफ्तार कर लिये गये और डिफेन्स-आफ-इण्डिया ऐक्टमें ७ सालके लिए जेल भेज दिये गये। इनकी यह दूसरी जेल-यात्रा थी। इस बार जेलमें इन्हें बहुत कष्ट दिये गये, जिससे स्वास्थ्यको ज़बरदस्त धक्का पहुँचा। सन् १९१७ या १८मे जेलसे छोड़ दिये गये। फिर भगवा वेष छोडकर सफेद कपड़े धारण कर लिये।

जेलसे निकलकर मिरज़ापुरमें अछूत-पाठशालामे अध्यापकका कार्य

और सच बात तो यह है कि हममेंसे कितने ही तो, जो देश-भक्तिका ढोंग करते हैं, नाम जाननेके अधिकारी भी नहीं। यदि ऐसे लोग इन वीरोंमेंसे किसीकी आत्मासे नाम पूछेंगे तो शायद वह 'एक भारतीय आत्मा' के शब्दोंमें यही जवाब देगी—

"मुझे भूलनेमें सुख पाती जगकी काली स्याही।
दानो दूर कठिन सौदा है, मैं हूँ एक सिपाही॥"

अगस्त १९२८]

दिसम्बर सन् १९२७में इलाहावाद आये। जनवरी सन् १९२८के अन्तमें इलाहावादसे मिरज़ापुर गये। २७ मार्च सन् १९२८को मिरज़ापुरमें शरीर छूटा। स्थानीय आर्यसमाजियों और अन्य देशके सेवकोंने थोड़े-बहुत समारोहके साथ दाह-कर्म किया। मरते समय उनके पासमें एक नवयुवक और स्वयंसेवक श्री जमनाप्रसाद मौजूद था, जो उनके जीवनके अन्तिम चार वर्ष लगभग बराबर उनके साथ रहा और जिसने अन्तिम बीमारीके दिनोंमें उनकी बहुत अधिक सेवा की। अपनी आयुकी अन्तिम दो सालकी बीमारीमें तिवारीजीको गहरा आर्थिक कष्ट उठाना पड़ा था। सन् १९१८के बादसे तिवारीजीने अधिकतर सुन्दरलालजीके साथ कार्य किया। १९१९से लेकर १९२४ तक भी यू० पी० और मध्यप्रान्तमें अधिकतर उन्हींके साथ अथवा उन्हींकी सलाहसे कार्य करते रहे। उन्हें सुन्दरलालजीसे विशेष प्रेम था। उनसे कई बार यह कह चुके थे,—"मेरी यह प्रबल इच्छा है कि मेरे मरते समय आप मेरे पास हों।" इसी उद्देश्यसे वे दिसम्बर सन् १९२७मे बीमारीकी हालतमें पंजाबसे चलकर इलाहावाद आये? किन्तु मिर्ज़ापुरके किसी वैद्यके इलाजके लिए उन्हें इलाहाबाद छोड़ना पड़ा। उनके मरनेके समय सुन्दरलालजी किसी कार्यवश कलकत्ते आये हुए थे, इसलिए तिवारीजीकी पूर्वोक्त इच्छा पूरी न हो सकी।

अपने जीवनमें अन्तिम वर्षोंमे एक और इच्छा उन्होंने अनेक बार प्रकट की थीं कि मरनेसे पहले मेरी सात जेल-यात्राएँ पूरी हो जायें, किन्तु यह इच्छा भी पूरी न हो सकी। केवल चार बार जेल जा सके। इस प्रकार देशके लिए तीन बार और जेल जानेकी अपनी इच्छाको लिये हुए ही वे स्वर्ग सिधारे! पाठक शायद पूछेंगे कि आखिर तिवारीजीका पूरा नाम क्या था? नाम बतलाना व्यर्थ ही है। न जाने कितने हज़ार ऐसे 'अप्रसिद्ध सिपाही' स्वाधीनताकी बलि-वेदीपर जब प्राण दे देंगे, तब भारतको स्वाधीनता मिलेगी। उनमेंसे हम किन-किनका नाम जानेंगे?

आइ बैठे ! कछु खबरऊ है, का का लै चलनी है ? जब हम न रहेंगे, तब मालूम परैगी, कैसे घरको काम होतु है !"

मैंने कुछ झेंपकर कहा—"अच्छा, अबकी बार और माफ करो। कृष्ण भगवान्‌ने जरासन्धके सौ कसूर माफ किये थे, अभी हमारे तो चार दर्जन भी नहीं हुए ! रही अखबार-बाँचनवारी स्त्रीकी बात, सो हमने एक ईसाइन लड़कीके लिए 'देशभक्त'में विज्ञापन दे दिया है। सहायकी हमें सचमुच जरूरत है। कोई-न-कोई मिल ही जायगी। अगर बदसूरत हो, तो तुम भी उससे रोटी-ब्यालूका काम ले लेना, और खूबसूरत हुई तो तो अब हमका कहैं!"

"चलो रहन देउ, तुम्हें जेई बातें सूझति हैं !"

× × ×

मदरास-मेलसे रवाना हुआ। पत्नी तीर्थ-यात्राके लिए जा रही थी, मैं 'जर्नलिस्टिक टूर' पर था, और साथमें चार वर्षकी लड़की सरला भी थी। तीनों अपने-अपने विचारोंमें मग्न थे।

पत्नीने लम्बी साँस लेकर कहा—"अखबारवालोंका काम भी बहुत खराब। छुट्टी ही नहीं। अब पाँच वर्ष बाद निकलना हुआ है।' वह पिंजरेसे छूटे हुए पक्षीकी तरह अपनेको स्वतन्त्र पा रही थी, और तुलसी-कृत रामायणमें से सेतुबन्धका प्रकरण उसने पढ़नेके लिए निकाल रखा था।

मैं सोच रहा था—"विजयनगरमें 'आन्ध्र-प्रकाश' के सम्पादक मि० सुब्रह्मण्यम एम० एल० ए० आवेंगे। उनसे अनेक विषयोंपर बातचीत करनी है। अगर हो सका, तो दो दिनके लिए उतर जाऊँगा। सफर लम्बा है। 'जर्नलिस्ट ऐसोसियेशन'के विषयमें भी बातचीत करूँगा।'

सरलाको रेलमें चढ़ते ही भूख लग आई थी, और वह अपनी माँसे खाना माँग रही थी। स्टेशनपर जिद करके उसने चार-पाँच खिलौने भी खरीदवा लिये थे, और उन्हें वह इधरसे उधर रख रही थी। हम तीनों व्यक्ति

सम्पादककी समाधि

टन न् न् न्।

"हैलो! हू आर यू प्लीज़ (आप कौन हैं?)" मैंने टेलीफोनपर पूछा।

"का हल्लो-हल्लो करि रए हौ? कछु पतौंऊ है, कै बजे हैं? पाँचकी गाड़ीमें चलनौं है, और साढ़े तीन बज चुके। हम तो तुम्हारे मारें तंग हैं।"

"अच्छा! अच्छा! श्रीमतीजी हैं! लेउ अमेई आये। फाइनल प्रूफके लिए रुकना पड़ा।"

"फिनाइल रहन देउ। जल्दी आओ।"

'देशभक्त'का वार्षिक अंक निकालकर मैं मदुरा, विजयनगर, सेतु-बन्ध रामेश्वर इत्यादिकी यात्रापर जा रहा था। कम्पोज़ीटर और फोरमैन दनादन काममें लगे हुए थे। प्रूफ आया। सरसरी निगाहसे एक बार देखकर और सहकारियोंसे विदा ग्रहण करके मैं टैक्सी लेता हुआ घर आया। श्रीमतीजी अत्यन्त व्यस्त थीं। खैरियत यह थी कि सब सामान उन्होंने बाँध रखा था। रातके तीन बजेसे उठकर वे तैयारी कर रही थीं। भोजन बनाया था, कपड़े ठिकाने रखे थे, नौकरका हिसाब साफ़ किया था, और न जानें क्या-क्या किया था। और मैं सात बजे सोकर उठा, और डेली पेपर पढ़नेमें लग गया था! पहुँचते ही मधुर मुसकानके साथ उन्होंने खासी डाट बतलाई—"तुम्हें तो कोई अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी अखबार-बाँचनवारी स्त्री मिलती, तौ तुम्हारे होश ठिकानें आउते! पाँच बरस बाद तौ तीरथ करिबेकौ विचार करौ है, सोऊ अब

आदमियोंसे नहीं मिलते, एक तो पत्रकार—अखबारवालेसे, और दूसरे स्त्रीसे।"

यह सुनकर वे निराश हो गईं। उस समय मुझे एक चालाकी सूझी। मैंने कहा—"देखो! अगर तुम एक बातपर राजी हो जाओ तो सब काम बन जाय। मर्दकी पोशाक पहन लो, ऊपरसे ओवरकोट डाल लो, साफा बाँध लो, और सिक्ख बन जाओ! मैं कह दूँगा कि मैं व्यापारी हूँ, और ये पजाबी टैक्सी-ड्राइवर हैं! मुझसे बहुत मेल-जोल है। इस यात्रापर रवाना हुआ, तो ये भी तैयार हो गये। (मुसकराकर) कहूँगा, बड़े सज्जन आदमी हैं!"

श्रीमतीजी कुछ परेशान-सी हो गईं। बोलीं—"जि तुमने बुरी सुनाई। हम मर्दनके कपड़ा कैसे पहनें! नाहिं नाहिं, हम नहीं जायेंगी।'

मगर साधू-महात्माके दर्शनोंका मोह ऐसा न था जिसे श्रीमती आसानीसे छोड़ देती। थोड़ी देर बाद राजी हो गईं।

× × ×

प्रातःकालमें विजयनगरके प्राचीन स्थानोंकी देख-भालकर तीसरे पहर हम लोग साधूजीके दर्शनके लिए चलनेकी तैयारी कर रहे थे। कोट-पैण्ट पहनना श्रीमतीजीके लिए आसान काम न था। मैंने कहा—"मैं पहना सकता हूँ, नेकटाई भी बाँध दूँगा, पर पहनाई देनी पड़ेगी। स्त्रीसे पुरुष बनना आसान नहीं। भई, आखिर कुछ-न-कुछ तो हर्जाना देना ही पड़ेगा।"

पत्नी बोली—"तो हम नाहिं जानि।'

ज्यों-त्यों मनाकर और नेकटाई पहनाकर मैंने उनसे कहा—"देखिये, इस दर्पणमें देखिये आप सरदार सुन्दरसिंह टैक्सी-ड्राइवर बन गये या नहीं!"

जब तक वे दर्पण देखें, तब तक मैंने उनका एक चुम्बन ले लिया! सच्ची नाराजी दिखाते हुए उन्होंने कहा—"बड़े पाजी हो। फिर

इतने पास होते हुए भी, एक दूसरेसे कितनी दूर, कितने परे थे ! जाते एक ही तरफ थे, मगर लक्ष्य सबका जुदा-जुदा था।

विजयनगरमें मि० सुब्रह्मण्यम मिले। आखिर ठहरना ही तय हुआ। हम लोग एक सुसज्जित बँगलेमे ठहरे। श्रीमतीजी और सरलाको वहाँ छोड़कर मै घूमने निकला। इस लेखकसे मिला, उस जर्नेलिस्टसे बातचीत की। प्रत्येक स्थानपर डेढ दो घटे लग गये। चाय-सम्मान सभी जगह किया गया। घड़ी देखता हूँ, तो पाँच बज चुके थे ! मैंने दिलमे सोचा, बड़ी देर हो गई। जल्दीसे मि० सुब्रह्मण्यमको लेकर लौटा। अपराधीकी भाँति बँगलेपर आया। पत्नीने कोई शिकायत नही की, पर लड़की सरला भला, क्यो चूकनेवाली थी ! "बडी देरमें आये, हमे क्यों नही लैगये, हमारे लएँ कछु लाए, और अम्मा भूखी बैठी है, और हमारी चिरैया टूटि गई।"

मैंने पत्नीको डाटकर कहा—"बस, इसीसे हमारी तुम्हारी लड़ाई होती है। अब तक भूखी क्यों बैठी रही ? तुलसीदासने यह किस काण्डमें लिखा है कि भूखी रहकर पतिकी आत्माको कष्ट दो ?"

मै यह जानता था कि वह मुझे भोजन कराये बिना स्वय कभी नही खाती थी, चाहे दिन-भर भूखा रहना पडे, पर फिर भी मैं अपराधी उसे ही समझता था ! वह चुपचाप सुनती रही। मैंने भोजन करना प्रारम्भ किया। बीचमें मैंने कहा—"भई ! यहाँसे दस-बारह मील दूर एक वृद्ध साधू रहते है। बडे पहुँचे हुए सुने जाते है। कहो तो उनके दर्शन करते चले ?"

यह सुनते ही पत्नीके मुँहपर कुछ प्रसन्नताके लक्षण दिखाई दिये। साधू-सन्तोंके प्रति उनके हृदयमें स्वाभाविक श्रद्धा थी। उन्होने कहा—"हाँ, ज़रूर ज़रूर।"

इसपर मै बोला—"मगर एक बात और सुनी है। इन साधू-महात्माने एक कठोर नियम बना रखा है, वह यह कि वे दो प्रकारके

requested not to enter this Kutir" अर्थात्—"पत्रकार और स्त्री कुटीरमें न आवें।"

सरदार सुन्दरसिंहने पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

"सरदारजी, कोई बात नहीं।"—मैंने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, और फिर एक कागज़पर पेन्सिलसे लिख भेजा—'एम० के० भट्ट और सरदार सुन्दरसिंह', और फिर मनमें सोचा—'चलो, अच्छी प्रेस सामग्री मिलेगी। वर्षोंसे जिस साधूने कोई पत्रकार इंटरव्यू नहीं ले सका, उनसे आज बातचीत करूँगा, और अखबारोंमें उनपर एक लेख लिख जाऊँगा।'

× × ×

जिस समय हमें साधूजीने अन्दर बुलाया, काफी अँधेरा हो चुका था। मैंने सुन्दरसिंहसे हँसकर कहा—"बड़े भाग्यवान हो भाई! सांझ हो गई है। साधूजीको जरा भी सन्देह नहीं होगा। दिन होता, तो तुम्हारी सारी करतूत खुल जाती। चले हैं कोट-पेण्ट पहनकर सरदार साहब बनने!"

अब जाकर मेरी स्त्रीके चेहरेपर जरा-सी मुसकराहट आई।

प्रणाम करके हम लोग बैठ गये। अंगरेज़ीमें बातचीत प्रारम्भ हुई और घंटे-भर तक होती रही। इस बीचमें सरदार साहब चुपचाप बैठे मुंह देखते रहे। तत्पश्चात् साधूजीने पूछा—'आप लोग किस प्रान्तके रहनेवाले हैं?"

मैंने कहा—"मैं तो भरतपुर-राज्यके एक गाँवका रहनेवाला हूं और ये पंजाबी सिख हैं।"

मेरे आश्चर्यका कुछ ठिकाना न रहा, जब मैंने सुना कि साधूजी हमारे गाँवके निकटके ही निवासी हैं! फिर तो उन्होंने अपनी ग्रामीण बोलीमें बोलना प्रारम्भ किया। सरला कुछ घबराई-सी हुई और सरदार साहब भी सचेत हो गये। आज वर्षों बाद साधूजीको अपनी मातृभाषाके या यों कहिये कि ग्राम्य भाषाके किसीसे बोलनेका अवसर प्राप्त हुआ था, इसलिए प्रयत्न करनेपर भी वे अपनी भावुकताको न रोक सके। कुछ देर

एकादशी है । तीरथके लिए और साबूजीके दर्शनके लिए चल रहे हैं ।"

मैंने जवाब दिया—"कोई अन्नकी चीज़ तो मैंने तुम्हे खिलाई नही, जिससे तुम्हारा व्रत भंग हो गया हो ।"

उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा—"चलौ, रहन देउ ।"

हम लोग बैलगाड़ीसे रवाना हुए। रास्ते-भर श्रीमतीजी मुँह फुलाये बैठी रही, शायद इसलिए कि मैं बच्चीकी निगाह बचाकर वही भूल दुबारा न कर बैठूं! अफसरकी टेढी निगाहें देखकर जूनियर बाबुओंको छुट्टी माँगते हुए डर लगता है, यहाँ तो तरक्कीका सवाल था।

सरलाने कहा—"अरे! अम्मा तौ लोग हो गई!"

तब भी श्रीमतीजीके चेहरेपर हँसी न आई। मैं बोला—"तीर्थ-यात्रासे चाहे जिसको लाभ हो, हमारा तो बड़ा नुकसान हुआ है! कई वर्षकी व्याही हुई मेहरिया छिन गई!"

सरला भी अपनी अम्माको मर्दानी पोशाकमें देखकर हँसीमें लोट-पोट हुई जाती थी। मैंने उसे सावधान किया—"देखो! साबूजीके यहाँ इनसे अम्मा मत कहना, नही तो साबूजी तुम्हे पकड़कर अपनी झोलीमें डाल लेंगे!"

सरला साबूजीकी झोलीसे कुछ डरी, फिर भी उसने पूछा—"अम्मासे अम्मा क्यो नही कहें?"

साबूजीका आश्रम दस-पन्द्रह मील दूर था। पहुँचते-पहुँचते शाम हो गई। छोटासा बगीचा था। बीचमें एक कुटी थी। द्वारपर एक आदमी मिला। किसान-सा मालूम होता था। पहले उसने अपनी भाषामें कुछ कहा, जिसका हम लोग कुछ भी मतलब न समझ सके। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई आदमी लोटेमें कंकड़ डालकर बजा रहा हो! सरला उसकी बोली सुनकर हँस पड़ी। मैंने उसे डाट बताई। फिर उस किसानने अगरेज़ीमें लिखा हुआ एक कागज़ जेबसे निकालकर दिया। उसमे लिखा था—"Journalists and ladies are

भारतीय हैं। धर्मके प्रति अगाध श्रद्धा है। तीर्थ-यात्रापर जा रहे हैं। भला, हम विश्वासघात कर सकते हैं? हम किसीसे कुछ न कहेंगे, आप बेखटके सुनाइये।"

साधूजीने कहा—"पहले मैं एक दैनिक पत्रका सम्पादक था। पत्रका नाम नहीं बताऊँगा। हर जगह मेरा नाम छपता था। सभाओंमें मेरी पूछ होती थी। 'डिनर्स'में मुझे बुलाया जाता था। 'प्रेस गजेन्सी' मेरी बीमारी तो क्या, छींक-नजलेकी खबर देश-भरमें फैला देती थी। हाँ, एक बात मैं भूल गया। मेरे एक स्त्री थी, और मैं उसे सदा सुनाते रहता था। वह हिन्दी तो पढ लेती थी, मगर अंग्रेजीका एक अक्षर भी नहीं जानती थी, इसलिए मैं उसे अशिक्षित और असभ्य समझता था।"

यह सुनकर मैंने सरदार सुन्दरसिंहकी तरफ देखा, मानो मौन भाषामें कहा—'वह भी तुम्हारी साथिन थी!' सुन्दरसिंहने धीरेसे मेरा पाँव दबाकर चुप रहनेका संकेत किया। साधूजी बोल रहे थे—"मैं उससे कहा करता था, 'तुम मेरे लिए fit companion (उपयुक्त साथी) नहीं हो।' दो-चार बार मैंने उसे डेली न्यूज़पेपर सुनानेकी कोशिश भी की, पर उसे तुलसीकृत रामायणमें जो आनन्द आता था, वह अखबारमें कभी नहीं आया। मैं उसे दासीकी भाँति ही समझता था। मैं उससे अपने कपड़े धुलवाता था, बर्तन मँजवाता था, पानी भरवाता था और भोजन बनवाना तो उसका जन्मसिद्ध स्वत्व था ही! मैं समझता था कि ईश्वरकी ओरसे, जीवन-भरके लिए, मुझे यह एक अनपढ़ अवैतनिक दासी मिल गई है। स्त्रियोंकी स्वाधीनताके विषयमें लिखे हुए मेरे लेख कितने ही पत्रोंमें उद्धृत हुए थे, और पुस्तकाकार भी छपे थे! पर मैंने यह कभी ख़याल नहीं किया कि मेरी स्त्रीको भी कुछ स्वाधीनता चाहिए! जिन दिनों मैं अपने लेखपर दूसरे पत्रोंसे [illegible] आर्टिकल [illegible] होता था, उन दिनों सरला और उसकी माँ जाड़ेमें [illegible] न रहनेके कारण बगलमें हाथ दबाये [illegible] रातें बिता देती थीं! [illegible]

वे अपने ग्रामका पता भी किसीको न वतलाते थे, पर आज वे अपनेको रोक न सके। उनकी एक लडकी हमारे ग्राममे व्याही थी। मैंने उसका नाम पूछा, तो कहा—"सरला।"

मेरी सरला डरी। उसने समझा कि अव सावूजीने झोलीमें रखा! मैंने कहा—"अरे! सरला? वह तो हमारे पड़ोसमें ही रहती है।" सावूजीका दिल भर आया।

मैंने कहा—"वीस-पचीस दिन वाद मै अपने घर लौटूंगा, कहिये तो उससे कुछ कह दूं।"

सावूजीने एक दीर्घ निश्वास ली, और कहा—"क्या कहोगे? कोई कहनेकी वात भी तो हो!"

सावूजीको भावुकतामें देखकर मैंने समझा कि तवा गरम है, जर्नलिस्टिक रोटी सेकनेका अच्छा मौका है! पूछा—"महात्माजी! एक जिज्ञासा है। आपने यह नियम क्यो वनाया है कि हम किसी पत्रकार या स्त्रीसे न मिलेंगे?"

सावूजीने जवाव दिया—"क्या करेंगे आप सुनकर? आप व्यापारी आदमी हैं, आपको इससे कुछ लाभ न होगा।"

मैंने फिर भी आग्रह किया, तो सावूजीने यह आत्म-कथा सुनाई।

सत्तर वर्षका हो चुका, आज यह वोझ हलका करना चाहता हूँ। यह वात मैंने आज तक किसीसे नही कही, पर तुमसे कहता हूँ। तुम मेरे निकटके हो, इसीलिए मेरा मन विवश हो गया, पर एक शर्त है कि तुम यह वात मेरे मरनेके पहले किसीसे न कहोगे, यहाँ तक कि मेरी लड़कीसे भी नही। उसकी माताके प्रति मैंने घोर अपराध किया था!"

मैं कुछ चौंका। दिलमें खयाल आया कि सावूजी पहुँचे हुए हज़रत मालूम होते है। सम्भव है, इन्होंने कोई हत्या की हो। जासूसी कहानीके लिए अच्छा मसाला मिलेगा। मैंने कहा—"सावूजी महाराज! हम लोग यात्री ठहरे। अँगरेज़ी पोशाक ज़रूर पहन ली है, पर दिल हमारा

हाथ पसारो। घरमें चीज़ हो, तो उसे रखकर हारी-बीमारीमें काम निकल सकता है।' उस प्रकारकी हारी-बीमारी आती नहीं, और गहनोंसे काम निकलता रहा। यद्यपि स्त्रियोंके लिए वोटाधिकारपर मैंने बड़े तगड़े लेख लिखे थे, और मेरी मित्र 'पाञ्चाली'की सम्पादिका श्री ज्योतिर्मयी एम० ए०ने उनपर मुझे खूब बधाई भी दी थी, पर मैंने स्वप्नमें भी यह ख़याल नहीं किया कि ज्योतिर्मयीके लिए वोटपर जितना अधिकार चाहिए, कम-से-कम उतना तो सरलाकी माँको अपने मायकेसे लाये हुए गहनोंपर है ही।"

बाबूजी फिर कुछ रुके, और अपनेको ज़रा सम्हालकर कहा—"आप नहीं जानते कि पत्रकारका जीवन कितना बाह्य हो जाता है। जनताके सम्मुख बार-बार आनेकी प्रवृत्ति आन्तरिक आध्यात्मिक भावोंको कुचल डालती है। अस्त-व्यस्त जीवनमें उसे यह सोचनेका अवकाश ही नहीं मिलता कि आख़िर इस विज्ञापनसे जीवनमें कुछ वास्तविक लाभ भी है या नहीं। मैं समझता रहा कि ज़िन्दगी यों ही कट जायगी, सरलाकी माँ जीवन-भर मेरी सेवा यों ही करती रहेगी पर भाग्यमें कुछ और ही लिखा था!

"आख़िर दुर्भाग्यका वह काला दिन आ ही गया! सर्दीके दिन चलते थे। सर्दीसे हाथ-पाँव ऐंठे जाते थे, गली-बाज़ार सब सूने थे। रातभर कुत्ता भूँक रहा था, वहीं-कहीं सियारके चिल्लानेकी आवाज़ सुनाई दे जाती थी। मैं ऐडीटोरियल लिखकर घर लौटा। पत्नीको कई दिनसे ज्वर आ रहा था पर मैंने उसकी कुछ भी परवाह न की थी। उन्हीं दिनों मेरे यहाँ दो-तीन पत्रकार अतिथि भी ठहरे हुए थे और उनके लिए उस बीमारीमें भी, वह भोजन बनाया करती थी! मैं समझता था कि कितना बिना मतलब बीमार होती है, और यों ही बिना दवाके तन्दुरुस्त हो जाती है! मैंने पूछा—'कहो, कैसी तबीयत है?' उसने जवाब दिया—'कुछ नहीं, ठीक है।' शरीर जल रहा था। देखा तो ज्वर १०४॥ डिग्री था।

सूटेड-बूटेड प्लेटफार्मसे धाराप्रवाह व्याख्यान देता था, उधर घरपर पत्नी अपनी फटी हुई धोतीमे पैवन्द लगाती थी। आफिसमें मैं सरकारके कठोर शासनकी निन्दा करता था, और घरपर मेरा शासन उससे कम कठोर न था। जिस दिन मैंने अपनी इंटरव्यू तारके द्वारा भारत-भरके पत्रोंको छपनेके लिए भेजी थी, उस दिन घरमें तरकारीके लिए भी पैसा नहीं बचा था। और जब मैं अमुक सभाका सभापति होकर गया था, पत्नीने अपने हाथके कड़े बेचकर घरके लिए अनाज मँगाया था। जब सरला टाइफाइड ज्वरमें पीड़ित थी, मैं घरसे सात सौ मील दूर एक पोलीटिकल मीटिंग एटेण्ड कर रहा था, और भारतवर्पके दीनहीन बच्चोंकी दुर्दशापर चार आँसू बहा रहा था—'Milk is the birth right of every child.'—'दूध पीना तो प्रत्येक बच्चेका जन्मसिद्ध अधिकार है।' यद्यपि मेरी पत्नीको अपनी बाली बेचकर बीमार लड़कीके लिए विदेशी दवाका प्रबन्ध करना पड़ा था, मगर देशी दूध उसे फिर भी न मिल सका!"

यहाँ पहुँचकर साधूजीने एक लम्बी साँस ली। मैं अपराधीकी भाँति घबराया हुआ था। मैं डर रहा था कि कहीं मेरी स्त्रीका हृदय द्रवित न हो जाय! चुनाचे मैंने आँखके इशारेसे उन्हें सावधान भी कर दिया।

साधूजीने एक ठंडी साँस भरकर कहा—"उन दिनों पत्रकारका जीवन बड़ा खतरनाक था। आप व्यापारी आदमी उसका अन्दाज़ा भी नहीं लगा सकते। कभी नौकरी लगती, कभी छूट जाती। महीनों घरपर बेकार बैठा रहना पड़ा। इस बीचमें मैं अपनी स्त्रीके लगभग सब गहने बेचकर खा गया। केवल दो गहने रह गये थे—नाककी नथ और पाँवके बिछुए। यद्यपि उसके सब गहने मेरे ही काम आये थे, पर मैं उससे बराबर झगड़ा करता रहता। कहता—'तुमने व्यर्थ ही इतना रुपया इनमें फँसा रखा है! रुपये होते, तो बैंकमें जमा होते।' वह यही उत्तर देती थी—'मुझे गहनोंका शौक़ नहीं। गृहस्थीमें ये गहने वक्त बेवक़्त काम आ जाते हैं। मैं नहीं चाहती कि तुम किसीके सामने

मरघटसे फूल बीनने गया, तो उनके साथ ही मुझे वह सोनेकी नथ मिली, जिसे पहनकर वह सौभाग्यवती श्मशानको गई थी। उस समय मुझे उनकी बात याद आ गई कि गहना समय-कुसमय काम आता है, और उनका गहना बड़े सकटके समय काम आया। उनने, जब तक वह जीती रहीं, किसीके सामने हाथ नहीं फैलाया, आज मरनेके बाद उनकी खातिर मुझे भी किसीके सामने हाथ न फैलाना पड़ा।

“सन्ध्या समय जब पण्डितजीके साथ पीपलके पेड़पर घड़ा बाँधने तथा दीपक रखने गया, तो पण्डितजीने कहा—‘इस दीपकको आप जलाइये, और फिर कहिये, मैं इस दीपकको इसलिए जलाता हूँ कि जिससे गतात्मा-का मार्ग प्रकाशमय हो।’ उस समय मेरे दिलको बड़ा धक्का लगा। कँपकँपी-सी आ गई! दीपक हाथसे छूट पड़ा! पण्डितजीने कहा—‘यह क्या, आपका ध्यान किस दिशामें है?’ मैंने कहा—पण्डितजी, मेरा ध्यान अब ठीक दिशामें है। जीवन-भर जिसके हृदयको जलाकर अपना मार्ग प्रशस्त और उनका मार्ग अन्धकारमय बनाता रहा, अब दो पैसेका स्नेहहीन दीपक जलाकर उनके मार्गको कैसे प्रकाशमय बना सकता हूँ? जो मनुष्य अपने व्यक्तित्वके विकासके लिए अपने अधीनस्थ प्राणियों-के सुख-दुखकी चिन्ता न रखता हुआ, उनके व्यक्तित्वको कुचलकर यश-लिप्सामें आगे बढ़नेका प्रयत्न करता है, वह अधम है, नीच है, पापी है, पामर है।’

गायकजी थोड़ी देर चुप रहे फिर बोले—“अब आप समझ गये होंगे मैं पत्रकारोंसे क्यों नहीं मिलता। जिनका जीवन सर्वथा [illegible] है, उनसे मिलकर मैं क्या करूँ? यही क्या थोड़ी बात, जो एक स्त्रीपर अत्याचार करनेके बाद मैं अब इन किन्हीं स्त्रियोंको ढूँढ़ निकालने जा रहा हूँ?”

मैं स्तब्ध रह गया। वृद्ध गायककी आँखोंसे आँसू बह रहे थे, जिन्हें रोकनेका वे निष्फल प्रयत्न कर रहे थे। दिल दहल उठता था। [illegible]

घबरा गया। भागा-भागा डाक्टरके यहाँ पहुँचा। डाक्टर साहब आये। उन्होंने मरीज़को देखकर कहा—'एडीटर साहब, आप भी अजब अकलमन्द आदमी हैं! अब तक क्या कर रहे थे? इन्हें तो डबल निमोनिया हो गया है, और आपने मुझे अब खबर दी है!' मेरे काटो तो खून नहीं। डबल निमोनिया!! डाक्टर साहबने नुसखा लिखा। मैंने जेबमें हाथ डाला, तो पैसा नहीं! स्त्रीने ठाकुरजीके सिंहासनकी ओर इशारा किया। उसके नीचे दबे दो रुपये निकल आये। उन्हें डाक्टर साहबके हवाले किया। दवा खानेके साथ ही उसका बोल बन्द हो गया। ग़रीब अपने मनकी बात भी न कह सकी! हाँ, एक बार सरलाकी ओर देखकर उसने मेरी ओर ज़रूर देखा था। सूर्योदय होते-होते मेरा जीवन अन्धकार-मय बन गया। वह हृदयवेधक दृश्य अब भी मेरी आँखोंके सामने है। वह मर चुकी थी, परन्तु उसके चेहरेपर अब भी पूर्ण शान्ति थी, मानो उसने मेरे सम्पूर्ण अपराधोंको क्षमा कर दिया हो। वह लाल कपड़े पहने हुई थी। ऐसे ही कपड़े पहनकर वह अपनी माँके घरसे मेरे घर आई थी, वैसे ही कपड़े पहनकर आज वह मेरे घरसे सदाके लिए विदा हो रही थी। मैं फूट-फूटकर रोने लगा। पड़ोसी लोग अर्थीकी चिन्तामें थे। आफिससे वेतन मिलनेमें दस दिनकी देर थी। पागलकी तरह मैंने पत्नीके सन्दूकको टटोला। रामायणमें पाँच रुपयेका नोट मिल गया। तब मुझे खयाल आया कि प्रतिवर्ष रामायणका पाठ समाप्त कर वह एक रुपया चढ़ाया करती थी, जिसे मैं घोर अन्ध-विश्वास कहा करता था। इस अन्ध-विश्वासने ही उस समय मेरी लाज रख ली!

"अन्त्येष्टिके बाद घर लौटा, तो मुझे पता लगा कि मेरा क्या खो गया है। अब मुझे चिन्ता थी, तो केवल एक बातकी कि स्त्रीके फूल त्रिवेणी तक कैसे पहुँचाये जायँ। एक बार उसने कहा था—'मेरी एक बात मानो, तो कहूँ। मेरे फूल त्रिवेणीपर पहुँचा देना।' मैंने घोर अन्ध-विश्वास कहके उस बातको उड़ा दिया था। तीसरे दिन जब मैं चिताकी

साहवकी ओर देखूँ, तो उन्हें गश आ गया था ! भोलीभाली सरलाने, जो अव तक खिलौनोंकी वरा-उठाई कर रही थी, यह देखा, तो वह अकस्मात् वोल उठी—"वावूजी, अम्माको क्या हुआ, देखो !"

सारा भडाफोड़ हो गया ! सावूजीने आँखे मूँद ली। हाथोंसे मुँह ढक लिया, और कहा—"आपने मेरे साथ विश्वासघात किया। आप स्त्रीको यहाँ क्यो लाये ? मालूम होता है, आप भी कोई चालाक पत्रकार हैं ! आपकी इस ऊपरी सज्जनताके भीतर अवमता इतनी दूर तक चली गई है, इसका मुझे पता न था। अव आप कृपा करके चले जाइये।"

मैंने सिर्फ इतना ही कहा—"यह अधम अपने भयकर अपराधके लिए क्षमायाचना करता है, और अपना तुच्छ जीवन आपकी सेवामें अर्पित करता है।"

सावूजीने कहा—"वस, आप चले जाइये । अभी वक्त नही आया।"

सावूजी चुप हो गये। हम लोग लौट आये। सेतुवन्व रामेश्वरकी यात्रा की, और फिर अपने घर वापस आ गये।

× × ×

कुछ वर्ष वाद मेरी पत्नी भी चल वसी, जिस दिन उनकी मृत्यु हुई, अकस्मात् उसी दिन विजयनगरकी मुहरकी मुझे एक चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था—"जीवन-यात्रा अव समाप्त हो रही है। यह उपवन और यह कुटीर तुम्हारे लिए छोड़े जाता हूँ।"

नीचे उन्ही सावूजीके हस्ताक्षर थे। मैंने दिलमें सोचा कि अव वक्त आ गया है !

× × ×

मैं अव उसी कुटीमें रहता हूँ। सम्पादककी समाधि वनवा दी है, और मैंने भी यह नियम वना लिया है, दो प्रकारके आदमियोंसे नही मिलता —एक तो पत्रकारसे, और दूसरे स्त्रीसे।

जनवरी १९३३]

काम लेना पड़ता है, और वह स्वाधीनता नही मिलती, जो समान पदवालोंके साथ मिल सकती है । सोनपालको इस वातकी आशका नही थी, जैसी कि प्राय. वड़े आदमियोको हुआ करती है, "जनता (पब्लिक) पर मेरी वातचीतका क्या असर पड़ेगा?" मैथीका साग कल किसी तरह दो पैसे सेरके वजाय तीन पैसे सेर विक जाय, इस वातकी उसे अधिक फिक्र थी । उसे किसी सस्थाका सचालन नही करना था, और सस्था-संचालन वड़े-से-वडे मनुष्यकी सहृदयताको कम और व्यापार-वुद्धि-को अधिक कर देता है । सोनपाल लोवा इन सव महत्त्वो और उससे उत्पन्न चिन्ताओंसे मुक्त था । इन्टरव्यूके लिए उपयुक्त आदमी था ।

"महाराज तुम तो हमें जानतौ, थानेके सामने तरकारी वेचतं । हमारी दुकानसे वहुत दफै तरकारी लाये हौ । हमारो एक काम कद्देउ । हमारौ लड़का काऊ टापू कों चलौ गयौ ऐ । अव आठ वरससें वाकौ पतौनाइ । वाकौ पतौ लगाइ देउ ।"

मैंने कहा, "तुम्हारी उमर क्या है?"

सोनपालने कहा "जितौ मोइ खवर नाइ । गदरकी सालको जनम है । सत्तरभईकै पिचत्तर भई कै साठ भई, जि मोइ पतौ नाइ ।"

मैं—"तुम्हारे लडकेका पता तो शायद लगा सकूगा । पर सव हाल सुनाओ ।"

सोनपाल—"तौ पतौ लग जायगौ, लल्लू लौट आवैगौ ? कव लौटैगौ ?"

"लल्लू कव लौटेगा, यह मै नही वतला सकता । यह मेरे हाथकी वात नही, तुम सव हाल तो सुनाओ ।"

मुझसे कुछ निराशा-युक्त जवाव पाकर उसने एक लम्वी साँस ली और झुर्रीदार चेहरे पर वैठी हुई आँखोके कोनेपर कुछ पानी झलक आया । उसने अपनी दु ख-गाथा सुनानी शुरू की—"वाकौ नाम डालचन्द हौ । दो-तीन वरस मदरसा में पढो । जितौ मैं नाई जानतु कित्तौ पढौ । ग्यारह

है। हमारे दो बेटोंका भी हाल लिखना। कम थोड़ा लिखा बहुत समझना।

द० डालचन्द.

आगे आपकी चिट्ठी आई हाल मालूम हुआ और चिट्ठीके देखते ही चिट्ठी भेजदो।"

मैंने यह चिट्ठी सोनपालको जाकर दे दी। उस वृद्ध किसानको आठ वर्ष बाद अपने खोये हुए पुत्रके हाथकी चिट्ठी पाकर जो प्रसन्नता हुई, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। डालचन्दकी स्त्रीको जो आठ वर्षसे अपने पतिकी बाट जोह रही थी और जिसने सोये जातिकी होते हुए भी दूसरा विवाह नहीं किया था, इस समाचारसे जो हर्ष हुआ होगा उसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता। अब सोनपालको एक धुन थी और जब कभी मैं उससे मिलता वह यही सवाल करता, "चौबेजी, हमारो लल्लू कब लौटैगो?" उस बेचारेने अपने लल्लूको यह खबर नहीं दी थी कि उसकी माँका देहान्त कई वर्ष पहले हो चुका था। वह सोचता था कि अगर लल्लूको यह बात मालूम हो गई कि माँ मर चुकी है तो उसके दिलको बड़ा धक्का लगेगा, वह फिर नहीं लौटेगा। वह खयाल करेगा कि माँ तो मर ही चुकी अब क्या करूँगा घर चलके। मुझे भी उसने ऐसी सूचनाका जिक्र करनेसे मना कर दिया था। डालचन्दको जो चिट्ठियाँ जाती थीं उनमें वह माँकी (जो उसकी याद करते-करते कभी की स्वर्गवासी हो चुकी थी) आशीष लिखा दिया करता था!

उस बूढ़ेके हृदयमें नवीन आशाका संचार हो गया था। मेरा घर उसके गाँवके रास्तेमें ही पड़ता था। इसलिए [illegible] साग [illegible] लाता था और उसका मूल्य देने लगो तो आँखोंमें [illegible] और कहता, "हम पै [illegible] ना है। महाराज, जो हम तुमसों लेंय। तुमने हमारे लल्लूको पतो लगाय दयो।" [illegible] तीन-चार कुटुम्ब लायक तरकारी लाकर दे जाता था। [illegible]

सारा हाल लिखकर ट्रिनीडाडके औपनिवेशिक मित्रोको चिट्ठी भेजी गई। कई महीने बाद एक मित्र माननीय रैवरैण्ड सी० डी० लालाका उत्तर आया—

"आपकी तीस जूनकी चिट्ठी जिसमें आपने डालचन्दके विषयमें, जो सन् १९१६ में शर्तबन्दीके कुलीकी हैसियतसे आया था पूछा है, मिली। तदनुसार मैंने डालचन्दके विषयमें पूछ-ताछ की और उसे पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न पाया। कल वह मेरे घर पर भी आया था और उसने एक चिट्ठी हिन्दीमें लिखकर मुझे दी है और कहा है कि मैं इसे आपके द्वारा उसके पिताके पास पहुँचा दूं।"

डालचन्दकी चिट्ठीकी नकल यहाँ दी जाती है।

"सिद्ध श्री सर्वोपमा विराजमान सकल गुण-निधान श्रीपत्री जोग्य लिखी चीनीडाट टापू कूवा कौट एकर्वेचि स्टेटससे डालचन्दकी राम-राम सोनपाल व फकीरचन्दको रामराम पहुँचै। भाई गेंदालाल, मौजराम बीरीराम, व गोवर्धनको राम राम पहुँचै। आगे यहांकि समाचार भले हैं, आपकी खैरियत श्री निरकालजीसे नेक चाहते हैं। आगे हमारा मौसी को पालागन पहुँचै। और हमारी भावीजी को राम-राम पहुँचै। आगे यहांके समाचार अच्छा लेकिन आटा बहुत मँहगा है। तुम लोगोको आटाका या दूसरी चीजोका व्यान लिखूं तो तुम लोग बहुत ताज्जुब मानोगे इसलिये कुछ बयान नही लिख सकता हूँ। और हम लोग दस वर्षके बाद ग्यारह वर्ष शुरू होगी, हम चले आयेंगे। दस वर्ष पूरा हो जायेगे, तो एकसौ पाँच रु० किराया लगेगा और दस वर्ष पूरा नही होगा तो दोसौ दस किराया लगेगा। आगरेवाले रामप्रसादको राम-राम भेजना। और खरगसिंह शोभारामको राम-राम डालचन्दका पहुँचे। जितना गाँवके लोग सबको राम-राम। परमेश्वरकी महिरवानी होगी तो तुम लोगोमें आन मिलेंगे, और नही महिरवानी है तो हम चीनीडाट टापूमें पड़े हैं तुम हिन्दुस्तानमें पड़े रहो, जितना काम करे है उतना खा लेते

एक कापी भी थी, जो मैंने अपने लिए खिंचवाया था। दानचन्दको जो दुःख हुआ होगा, वह वही जानता होगा।

आज भी उन बूढ़ेके करुणोत्पादक शब्द "लल्लू कब लौटेगा" कानोंमें गूंज रहे हैं, लल्लू अभी तक नहीं लौटा!

सुना है कि किसी गांवमें अपने मायकेमें एक स्त्री रहती है, अपने पतिकी यादमें उसने चौदह वर्ष बिता दिये। और ट्रिनीडाड यहांसे पन्द्रह हजार मील दूर है। बीचमें सात समुद्र हैं।

१९२९]

सागोंके साथ वहुत-से कच्चे केले दे गया। हमने अपनी माँसे पूछा, "ये तो चार-पाँच आनेके होंगे तुमने ले क्यो लिये?" माँने कहा कि "वह माना नही! पैसे भी नही लिये। यह कहते हुए कि तुम्हारे लल्लूने हमारे लल्लूकी पती लगाइ दयौ है, उसकी आँखोमें आँसू भर आये। हम का देने लायक है, कहकर यह सब साग-तरकारी पटक गया!"

लल्लूके लौटनेकी आशामें कुछ दिन और जीता रहा। मैंने दिलमें सोचा था कि श्री शिवप्रसादजी गुप्तको सारा किस्सा लिख भेजूं और दोसी दस रुपया उनसे लेकर डालचन्दके किरायेके लिए भिजवा दूं। मुझे पूर्ण विश्वास था कि मेरी प्रार्थनापर गुप्तजी यह कार्य अवश्य कर देते पर मैंने कुछ आलस्यवश और कुछ संकोचवश ऐसा नही किया। सोचता रहा कि तब लिख दूगा, अब लिख दूगा। वृद्ध विचारा प्रतीक्षा करता रहा!

साल भर उसने प्रतीक्षा की। आखिर वह बीमार पड़ गया। उसका गाँव हमारे यहाँसे दो तीन मील पर ही है। हमारे पास उसकी बीमारीकी खबर भी आई। हमने सोचा कि नजदीक तो है ही, किसी दिन मिल आवेंगे।

एक दिन अकस्मात् समाचार मिला कि सोनपाल इस ससारसे सदा के लिए चल बसा। जब उसके छोटे लड़केने आकर सब हाल सुनाया तो मैंने पूछा कि क्या मरते समय उसने डालचन्दकी याद की थी? वह बोला, "बहुत याद करी। जेई कहत रह्यौ कि चौबेजीसे पूछियौ कि लल्लू कब घर लौटैगौ?"

माता भी यही कहते-कहते मरी और पिता भी यह कहते-कहते मरा। हमारे दिलमें यही पछतावा रहा कि हमने समयपर उसके लड़केके लिए किरायेका इन्तजाम क्यों नही करा दिया। डालचन्दके छोटे भाईकी आज्ञानुसार एक चिट्ठी ट्रिनीडाड भेजी गई जिसमें उसके माता और पिता दोनोंकी मृत्युका समाचार एक साथ ही गया। साथ ही उसके पिताके चित्रकी

सुरम (पथरीली मिट्टी) गिराना चाहते हैं ?"

मैंने कहा—"यहीं आमके पेड़ोंके नीचे, जहां कीचड़ बहुत हो जाती है।"

१३ जुलाई—

सुना कि पासके गांवके किसी कुम्हार और उसके बच्चेको सांपने काट खाया है। उस वक्त हमें मनसुखाका ख्याल भी नहीं आया। शामको खबर मिली कि मनसुखा और कल्लाको ही सर्पने काटा था और दोनों ही मर गये!

हृदयको बड़ा धक्का लगा। मनसुखा और उसके कुटुम्बके सभी प्राणियोंने हमारे बगीचेमें बहुत दिनों तक मजदूरी की थी। सब परिवारके बाल बच्चे लगे रहते थे। ६ सभी साथ थे और तब एक रुपया रोज उन्हें मिलता था।

उस समय मैंने आठ-दस चित्र लिये थे। 'मजदूरके जीवनमें एक दिन" शीर्षक लेख लिखनेका विचार था। चित्र बनकर बहुत दिन पहले ही आ गये थे, पर मैं अपने प्रमादवश उन्हें मनसुखा तथा उसके बच्चोंको अभी तक दिखला नहीं पाया था। जब कभी जिक्र आता तो कह देता "अच्छा भाई, कल आना।"

वह कल नहीं आई, काल आ गया! और मनसुखा और कल्ला उस धामको चले गये, जहांसे कोई वापस नहीं लौटता। चार दिन बाद मनसुखाकी स्त्री उजियारी अपनी दुःख-गाथा सुना रही थी—

"इतवारकी रातको वे [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] गये थे। नौ बजे लौट आये। रातको तीन बजे होंगे। [illegible] [illegible] "जागति है का? मोहे सांपने काटि खायो।'

भीतर मेरा लड़का कल्ला पड़ा हुआ था। पास [illegible] [illegible] और एक बुआकी लड़की बैठी हुई थी।

कल्ला बोला "हमें [illegible] काटि खायो। मोहे [illegible] [illegible] [illegible]। चूड़ियोंको तोड़ने दूना भी नहीं। बाल-बच्चे दोनोंने [illegible] [illegible] [illegible]

मनसुखा और कल्ला

१० जुलाई सन् १९४२

दिन-भर पानी बरसता रहा, शामको भी फुहार पड़ रही थी। टहलनेके लिए मैं सड़ककी ओर निकल गया था और लौट ही रहा था कि इतनेमें मनसुखा बेलदार(कुम्हार) उधरसे आता हुआ दीख पड़ा। हाथमें एक कपड़ा था, जिसमें बहुत-से जामुन बँधे हुए लटक रहे थे। मैंने मज़ाक़में कहा:—"ठहरो! यहाँ डाकू हैं! लाओ सब माल-असबाब धर दो!"

मनसुखा मुसकराने लगा और अपनी पोटली हमारी ओर बढ़ा दी। हमने आठ-दस जामुन ले लिये। जामुन पासके पेड़ोंके ही थे। उन दिनों जम्बू वृक्षोंका अखण्ड दान चल रहा था और प्रत्येक पथिक मनमाने जामुन खाता चला जाता था।

११ जुलाई—

सड़कपर पत्थरके टुकड़े डालनेकी मज़दूरी मनसुखाने कर ली थी। नदी-तलमें वह पत्थर तोड़ रहा था। गधे पास ही खड़े हुए थे। बच्चे पत्थर बीन रहे थे। मैंने पुलपरसे आवाज़ दी, "मनसुखा, तुम्हारी तस्वीर बहुत अच्छी आई है। बच्चोंके फोटो भी ठीक उतरे हैं।"

मनसुखाने कहा—"सो तो ठीक, पर तस्वीरें हमें दिखाओ तो सही।"

मैंने कहा—"अच्छा कल आना, सब फोटो दिखला दूँगा, पर दूँगा नहीं! एक तस्वीर पाँच आनेमें पड़ती है।"

मनसुखाने कहा—"अच्छा पंडितजी, पाँच आने पक्के रहे।"

१२ जुलाई—

मनसुखा हमारे बगीचेपर आया और बोला—"पंडितजी, कहाँ

टीकमगढ़ ले गये । बहुत इलाज किया पर कोई वस नही चला ।

अगर कल्ला (लड़का) भी बच रहता तो मै किसी तरह सन्तोष कर लेती । दोनो चले गये ।

इसके बाद कुम्हारिन आँखोंसे आँसू टपकाती हुई बोली "जैसी विपता मेरे ऊपर परि गई वैसी काऊ पै न परी होइगी ।"

कल्पना तो कीजिये उस मजदूर औरतके दुर्भाग्यकी, जिसका पति और ग्यारह वर्षका लड़का दोनो एक साथ मृत्युके मुखमे चले गये हों ! अब वह कुम्हारिन है और उसके चार बच्चे है, तीन लड़कियाँ और एक लड़का, जो डेढ़ महीनेका है । यद्यपि उनके पिताको मरे अभी चार दिन भी नही हुए थे, वह दस-बरसकी भगवन्ती मजदूरीपर गई हुई थी और सात सालकी मुनिया, छह सालकी विनिया आश्चर्यचकित नेत्रोंसे अपने पिता तथा भाईकी तस्वीरे देख रही थी ! डेढ महीनेका मन्नू भी इस दृश्यको देख रहा था ।

जब मैने वह चित्र दिखलाया, जिसमे कल्ला घोड़ीपर चढ़ा हुआ था और बगलमें बाप खड़ा हुआ था तो कुम्हारिन विह्वल हो उठी । रो-रोकर कहने लगी—

"हाँ टीकाको आयो तो बेटा, तुम्हारे ढिग।" कल्लाका विवाह हो चुका था ।

कुम्हारिनके चेहरेसे करुणा टपक रही थी । मै सोच रहा था, "क्या बनावटी कहानियाँ इस सच्ची घटनासे अधिक करुणोत्पादक हो सकती है ?"

इसके बाद मैने कई महानुभावोंसे मनमुखा और कल्लाकी दुर्घटनाका जिक्र किया है ।

एक महाशय, जो लखपती आदमी है, बोले, "हाँ ऐसी घटनाएँ अक्सर घटा करती है । क्या किया जाय ?"

दूसरे महोदयने कहा, "हाँ सुना तो हमने भी था । साँप छप्परपरसे गिरा था । खैर ।"

अन्धी चमारिन

टहलनेके लिए चला जा रहा था, कुछ सोचता हुआ, कि एक छोटी-सी-लड़की ने धीमे स्वरमें कहा, "पडिज्जी !" पहले तो मैंने कुछ ख्याल ही नही किया, फिर रुककर उस लड़कीसे पूछा, "क्यो, मुझे पहचानती है क्या ?" वह मुस्कराने लगी। सुनिया उसका नाम है। छ: वर्षकी है। अपनी अन्धी माताको सहारा देती हुई चली जा रही थी।

पूछनेपर पता लगा कि एक धोती माँगनेके लिए कोठीपर आई थी। अपने स्वर्गीय पुत्रकी स्मृतिमें एक बन्धुने खैरातके लिए—दीन, अनाथो, अपाहिजो तथा पीड़ितोकी सेवाके लिए—कुछ रुपये भेजे थे, जिसकी खबर सुनियाकी माँको मिल गई थी। उस अन्धी चमारिनने याद दिलाई, तब मालूम हुआ कि पाँच-छः महीने पहिले उसे वचन दिया गया था कि कण्ट्रोलका कपड़ा आने दो, धोती भिजवा दी जायगी। इस बीचमें हम लोग भूल ही गये थे और रुपया सब जहाँ-का-तहाँ खर्च हो चुका था !

मैंने सुनियासे कहा, "कल आना", और आगे बढ गया।

दूसरे दिन पहिले मैंने उससे बातचीत की और फिर 'मधुकर'-मैनेजर श्री सीताराम पाटोदियाने। प्रश्नोत्तर बुन्देलखण्डीमें ज्यो-के-त्यो यहाँ दिये जाते है :—

प्रश्न—"तोरी नाँव का है ?"

उत्तर—"इतै मोय नचनवारेवाई कत है, और मायके की नाव कसिया हतो।"

"ई बिटिया कौ का नाँव ?"

"ई कौ सुनिया नाँव, महाराज।"

"तोरी ब्याव कवै भओ तो ?"

बस, छटाँक रोज।" उनका जीवनाधार मोहना चमार नष्ट हुआ। उम्र थी पच्चीस-तीस वर्ष। आमदनी थी मजदूरीसे दो आने रोज। इलाज और पथ्यके लिए उनके पास क्या धरा था?

जब वह अपना दुखड़ा रो रही थी, मैं सोच रहा था कि उद्योग-धन्धोंके अभावमें इन मजदूरोंकी रक्षा कैसे हो सकती है?

बड़ी लड़की सात वर्षकी होकर मर गई।

"जा तो है लौंरी, वा हती जेठी। जाको नाँव हो कौंसिया। परके चैतमें मरि गई ती। लगति चैतकी आठैं दो बरस हो जावेंगी।" इत्यादि बातें उसने कहीं। दीर्घ निश्वासके साथ उसने कहा, "कौंसिया पानी भर लाउत ती, ईंधन बीन लाउत ती।"

अब छह वर्षकी मुनिया है। वही अन्धी माँका एकमात्र सहारा है। "मोंडीके हाथपर काऊने दो कौर धरि दए तो खायगए, नाहिं तो नाहिं।"

मैं सोच रहा था, "हमारे ये सांस्कृतिक कार्य—जनपद आन्दोलन, वसन्तोत्सव, साहित्यगोष्ठी, प्रान्तीय सम्मेलन—मुनिया और उसकी अन्धी माँके लिए क्या सन्देश, क्या महत्त्व रखते हैं?"

टाल्स्टायके उन शब्दोंकी याद आ गई। एक महाशय किसी गरीबके कन्धेपर सवार थे और उसे आदेश दे रहे थे कि जल्दी-जल्दी चल! उसने कहा, "पहले हुजूर, कन्धेपरसे उतर तो पड़ें!"

क्या हम लोग इन्हीं गरीबोंके कन्धोंपर सवार नहीं हैं? क्या हमारी साहित्यिक आयोजनाएँ पेटभरोंके—अमीरोंके—चोचले नहीं हैं? यदि हमारा साहित्य इनके जीवनको स्पर्श नहीं करता, इनके [illegible] तथा [illegible] भविष्यमें [illegible] भी नहीं जगाता, तो है—आखिर किस मर्ज़की दवा?

"दुनियाके ऐसे लाखों-करोड़ों पीड़ित रहे हैं। किस-किसका दुःख दूर करोगे?" हमारे एक उच्च पदाधिकारी मित्रने कहा।

"मजूरी करतते। खेती-मैंती कछू नई हती, चाय जी की मैन्ती-मजूरी करतते।"

"उनैं का बीमारी भई ती ?"

"ऊ साले इतै मेला लगो तो। मेला में दिन-भर काम करत रये। घरै आऊत नई पसुरिया पिरानी, ताप चढ आई। दूसरे दिना दस्त लगन लगे। वे बन्द भये सो ऊग नई आऊत ती। ई तरा छैं दिना बीमार रये और उदनई बायरैं कढ़ गये। उनके मरे पैं बडी मोडी चार बरस की हती और सुनिया बरस रोज की।"

"फिर तोरौ कैसे काम चलो ?"

"मैं जोऊ चारौ-पूरा काटत रई, मैन्त-मजूरी करत रई।"

"आँखें कब से खराब हो गईं ?"

"आदमी के मरे पैं रोऊत रई और भूकन-प्यासन मरत रई, सो ये आँखें बिगर गई, अब कछू नईं कर पाऊत, निदाई-मिदाई कछू नई कर पाऊत, अकेली कऊँ जा नईं पाऊत। ई मोड़ी के सगे जाके चारौ-रुल लियाबत। ओई में खाबौ-पीबौ चलाऊत हो। का करो और कछू काम कर नईं पाऊत। रैबे की जगा गिरत जात। सुदरा तक नई पाऊत। कमऊँ कोऊ कौ पीस दओ सो ऊने खावे दे राखो। कमऊँ न मिलौ तो बैठी रतहौं खावे खौं भर-पेट मिलत नइयाँ। टपरिया कैसे सुदराव ? चौमासन में भाईं (भारी) दुख होत।"

"तोरे मायके में अबै कोऊ है ?"

"एक भैया है खेती करत है। जब-कमऊँ कछू खावे खौ मोय दै राखत। मैं मायके जात नइयाँ। उतै जाकें का करौं, भइया ने कमऊँ धरम लेखे कछू दै राखौ तो दै राखौ। मोय तो ईसुर को सहारौ है; जैसे ऊखौं पार लगावने हुइये सो लगावै।"

यही है अन्धी चमारिन की कहानी उसकी जबानी।

"उतरत फागुनकी दसवीको उन्हे दस्त लगे, पसुरिया पिरानी, फिर

"विना नवीन सामाजिक व्यवस्थाके कुछ नहीं होनेका।" दूसरे साम्यवादी सज्जन वोले। "जनाव, आप अपने सिद्धान्तोंके प्रतिकूल जीवन व्यतीत करते हैं और इस पापका प्रायश्चित्त परोपकारवृत्तिसे करना चाहते हैं!" अन्तरात्मासे ध्वनि निकली। फिर भी मैं सोचता हूँ—

साम्यवाद आनेमें अनेकों वर्ष वाकी हैं, अराजकवादमें सैकड़ों और गान्धीवादका राम-राज्य कव आवेगा, राम जाने! इस वीचमें लाखो-करोड़ो मुनियाँ और उनकी माताएँ जीवनके खण्डहरमें अपने निराशामय दिन गुज़ार देंगी।

इन भूखोंको अन्न कौन देगा, मूकोंको कौन वाणी?

१९४५]

इस वातको वाईस वर्ष हो गये, अभी तक नही लौटे ! जब रातको नही आये, तो सवेरे हम लोगोने तलाश करना शुरू किया। पहले यह ख्याल हुआ कि महुवा बीननेके लिए खेतमें गये होगे। वहाँ तलाश कराया, पर वे वहाँ नही थे। पीछे पता लगा कि जमनाप्रसाद ब्राह्मणके भाई जगन्नाथके साथ वे कही लापता हो गये। वहुत तलाश कराया, पर कही पता न लगा। चार वर्ष तक हमें कोई समाचार नहीं मिला।

जब चार वर्ष वीत गये, तब एक दिन उनकी चिट्ठी फिजीसे आई, और उसमे तमाम व्यौरा लिखा था, अवतक वे कही फिजीमे है। अब त्यौरस सालसे उन्होने मुझे अपने पास बुलानेका विचार किया है। पिछले वर्ष तो मैं जा नही सकी, अव जा रही हूँ।"

जब जगरानी अपना यह वृत्तान्त सुना रही थी, मैं सोच रहा था कि वाईस वर्षकी अवधि भी कितनी लम्बी है। मैंने पूछा, "तुम्हारे कोई वाल-बच्चे है ?"

जगरानीने कहा, "एक लड़का है और एक लड़की। लड़केको वे तीन वर्षका छोड़ गये थे, और लड़की उस वक्त पेटमें थी, और उनके जानेके तीन महीने वाद पैदा हुई।"

मैं जानता था कि अहीर लोगोमें दूसरा विवाह हो सकता है, इसलिए मैंने धृष्टतापूर्वक प्रश्न किया, "तुमने दूसरा विवाह क्यों नही किया।"

वहुत दुःखित होकर करुणोत्पादक स्वरमें उसने कहा, "महाराज, वेटा-वेटीको कहाँ वहा देती ?"

मुझे अपने प्रश्नपर लज्जित होना पड़ा। फिर जगरानीने वतलाया कि उसका लड़का जियावन अव २५ वर्षका है, और लड़की भगना २२ वर्षकी। लड़केके दो सन्तानें है और लड़कीके भी एक लड़का है।

मैंने कहा, "तो तुम इन सवको छोड़कर जा रही हो ?"

"का करी महाराज। सवने मिलकर यही सलाह दी कि अव तुम्हारा जाना ही ठीक है। लड़का चार कोस वाँसी तक पहुँचाने आया था, और

होगा। जगरानीका दृष्टान्त इन्हींमेंसे एक है। चलते वक्त जगरानीने कहा, "हमारे लड़के और लड़कीको खबर भेज देना।"

मैंने कहा, "जरूर भेज दूंगा, और तुम्हारी तसवीर भी भेज दूंगा। २४,२५ अगस्तको जहाज फिजी पहुँचेगा। बाईस वर्ष बाद जगरानी अपने पतिसे मिलेगी। बाईस वर्ष बाद!

अगस्त १९३३]

है" पर क्लर्क महाशय कुछ नही सुनना चाहते थे । आप बोले, "मैं अपने काममें कोई दस्तन्दाजी नहीं चाहता !" मैंने कहा कि इस औरतको फिजीमें उतरनेकी आज्ञा मिल गई है, यह तार मि० पियर्सन (Secretary of Indian affairs) सूबा फिजीका है । इसे भी आप बगाल सरकारके पास भेज दीजिये । पर वे क्यो सुनने लगे । मैंने कहा—'आपको जनताके साथ अधिक सहानुभूतिका वर्ताव करना चाहिए ।' इस पर तो वे और भी नाराज़ हो गये, और बोले, "हम आपसे उपदेश नही सुनना चाहते ।"

जहाज़ जानेमें पाँच छै दिन बाकी थे । मैंने दिलमें सोचा कि अगर पासपोर्ट बगाल सरकारसे वापिस न आया, तो यह बेचारी रुक जायगी । सीधा जहाज़ी कम्पनी मेकीनन मेकज़ीके यहाँ गया । वहाँसे फिर बंगाल सेक्रेटरिएटमें पहुँचा और मि० बी० आर० सेन आई० सी० एस० से सब बातें की । उन्होंने तुरन्त ही जगरानीके पासपोर्टपर अपने हस्ताक्षर कर दिये । इस प्रकार पुलिसकी बाँवलेबाज़ीसे छुटकारा मिला । सौभाग्यसे कलकत्तेके ही आर्यसमाजमें इसी जहाज़से फिजी जानेवाले एक सज्जन श्री अम्बिकाप्रसादजी ठहरे हुए थे । जगरानीको उनके सुपुर्द कर दिया । वे जगरानीके पतिको जानते भी थे ।

जगरानीके पास एक पीतलके कटोरेके सिवा कुछ भी न था । एक स्थानीय सज्जनकी कृपासे उसके लिए एक सन्दूक, दरी और चादरका प्रवन्ध हो गया, और जगरानी ३१ जुलाईको फिजी के लिए रवाना हो गई ।

जिस दिन उसका पति बिना कुछ कहे उसे छोड़कर सातसमुद्रपार चल दिया था, उसकी उसे ज्यों-की-त्यों याद है । चैतका महीना था, मगलका दिन था, संक्रान्तमें तीन दिन बाकी थे ।

शर्तबन्दीकी गुलामीके अस्सी-पच्चासी वर्षके दीर्घकालमें न जाने कितने लाख स्त्री-पुरुषों, माता-पुत्रों और भाई-बहनोंका वियोग हुआ

कौन सुनेगा ?

"वु महरिया आइ गई है।"—लड़केने कहा।

"कौन महरिया ?"—मैंने पूछा।

"अरे वई ! जाको आदमी दगाके वखत डाक्टर जीवारामके सग जरि गयो हो।"

मैंने कहा—"उससे बातचीत करके सब हाल पूछो।"

एक साथ १४ अप्रैल सन् १९३५ की उस दुर्घटना—फीरोज़ाबाद-की कालकोठरी—की याद आ गई, जो भारतीय साम्प्रदायिकताके इति-हासमे चिरकाल तक जीवित रहेगी और जो फिरकापरस्तोंके मुह पर अनन्त काल तक कलंक-कालिमा पोतती रहेगी।

३०–३५ वर्षकी वह विधवा ब्राह्मणी किसी वुढ़ियाको साथ लेकर अपने गाँवसे आई थी । ज़रा उस अभागिनकी राम-कहानी पर ध्यान तो दीजिये—

१४ अप्रैल, १९३५। प्रात. काल।

"जा छोरी ऐ पिरोज़ावादके डाँकदर जीवाराम कौ दिखाइ लइयो।"

उसने अपने पतिसे कहा होगा, और वह वेचारा अपनी एक मात्र सन्तान पुत्रीको लेकर डाक्टर जीवारामके यहाँ आया था। उसके वादकी घटना वन्धुवर श्रीराम शर्माके शब्दोंमें सुन लीजिये—

"जीवारामजीके यहाँ रोगियोंका ताँता लगा हुआ है। मरीज़ आते और दवा लेकर चले जाते हैं। कम्पाउण्डर औषधि वनानेमें व्यस्त हैं। वच्चे खेल रहे हैं। वे तमाशा देखनेके लिए मचल रहे हैं.. ठीक उसी समय वाज़ारसे कम्पोत्पादक शब्द आता है—'अली ! अली ! अल्लाहो अकवर !' सव कान उधरको हुए और सावधानीके ख्यालसे

खर्च कर दिये, पर किसी भलेमानसने एक पैसा भी इस गरीब औरत-को नही दिया ! क्षति-पूर्तिके लिए (क्या प्राणपतिकी हत्याका कुछ मुआवज़ा हो भी सकता है ?) कानी कौड़ी भी नही मिली। और-तो-और फीरोज़ाबादके गण्यमान्य नागरिकोको उसके पतिका नाम भी मालूम नही ! हमारे यहाँ आगरेके आसपास बीसियो लेखक विद्यमान है, और सुशिक्षित महिलाओकी भी कमी नही, पर इस दुखियाकी राम-कहानी किसीने नही सुनी, किसीने नही लिखी !

अब भी यह अभागिन फीरोज़ाबादके निकट किसी गाँवमे रह रही है और अपने आँसुओसे धूल पर अपनी दु ख-गाथा लिख रही है। पर क्या वह गाथा कभी लिपिबद्ध होगी ?

कलकत्ता और कानपुर, मुलतान और मलाबार, आरा तथा कटारपुरमे जो साम्प्रदायिक दगे हुए और उनमें जो आदमी मारे गये, उनकी विधवाओकी कहानी किसने लिखी है ? यदि हमारे लेखकोमें तनिक भी कल्पना-शक्ति होती, तो कई करुणोत्पादक कथाएँ हमारे साहित्यमें आज मौजूद होती, जो लेखकोका मुँह उज्ज्वल और फिरकापरस्तोका मुँह काला करती। ये सच्ची कहानियाँ लिखी जायँ या नही, पर इतना हम ज़रूर जानते है कि मूक शापोमें ज़बरदस्त शक्ति है, और इन निरपराध बहनोंके शाप साम्प्रदायिकता फैलानेवाले हिन्दुस्तानियोंके चाहे वे किसी गिरोहके क्यो न हो—सिर पर निरन्तर मँडराते रहेगे और किसी दिन आकस्मिक वज्रपातकी तरह गिरेंगे।

पर इस बीचमें मानवताका भी कुछ तकाज़ा है, उसकी भी कुछ आवाज़ है। पर उस व्यापारिक नगरके स्वार्थमय कोलाहलमें उस धीमी आवाज़को कौन सुनेगा ?

"कौन सुनेगा दीन जनोकी राम-कहानी ?"

१९४१]

निर्जीव था ? वह तो कपिलवस्तुके सहस्रों व्यक्तियोंसे अधिक सजीव था।

जिस किसान-सेवककी सूखी हड्डियोंकी चिनगारीने आवारा युवक मेक्सिम गोर्कीके हृदयमें क्रान्तिकी ज्वाला जगा दी, वह गुसेव अमर है—उतना ही अमर है, जितने लेनिन और गोर्की।

(२) बुकसेलर मैकलारिन

समाजवादी कामरेड मैकलारिन किताबोंकी दूकान करते थे। केम्ब्रिज-विश्वविद्यालयके निकट उनका कारोबार था। एक दिन लन्दनसे उनको तार मिला—"क्या तुम जल्दी आ सकोगे ? बड़ा जरूरी काम है।"

मैकलारिन अपनी दूकान छोड़कर लन्दन गये। वहाँ उनकी पार्टीके एक सदस्यने कहा—"मैंने सुना है कि तुम तोप चलाना खूब जानते हो। मेरे पास स्पेनकी सरकारसे खबर आई है कि हमारे यहाँ तोपचियोंकी सख्त जरूरत है। क्या तुम स्पेन जा सकोगे ? पर एक बात सोच लो, वहाँ जाना मौतके मुँहमें जाना है।"

बन्धुवर मैकलारिनने जवाब दिया—"कोई पर्वाह नहीं, मैं अवश्य स्पेन जाऊँगा।"

दूसरे ही दिन मैकलारिन स्पेनके लिए रवाना हो गये। यह बात अक्टूबर १९३६ की है। ८।१० नवम्बरके बीच मैड्रिडमें सरकारी फौजोंका बागियोंसे जबरदस्त मुकाबला आ पड़ा था। उस मौकेपर मैकलारिनने अपनी तोपसे ऐसी भयकर गोलाबारी की, इस तरह तक-तकके निशाने लगाये, कि दुश्मनोंके पैर उखड़ गये। पर भागते-भागते उन लोगोंने सौ-पचास गोलियाँ बड़ी जोरसे चलाईं। उनमें-से एक मैक-लारिनके सिरमें आ लगी और वे अपनी तोपके पास ही गिर पड़े।

गीतामें कृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनसे कहा था—"हतो वा प्राप्यसि

'On Guard' नामक पुस्तकसे ली गई है। फ्रांसकी संन्यासिनीका आत्मबलिदान गल्फ़ोर्थके संस्मरण-ग्रन्थसे उद्धृत किया गया है। शालिग्रामसिंहकी घटना 'विशाल भारत'के एक पाठक सज्जन द्वारा बतलाई गई है और अंगरेज मल्लाहका वृत्तान्त सुप्रसिद्ध अंगरेज लेखक ए० जी० गार्डनरके एक लेखका सारांश है।]

१९३९]

निस्सहाय छोड़कर स्वर्ग सिधारे। रोती-विलखती माँ भी कुछ दिनों बाद परलोक पधारी। आज यदि कोई तलाश करे, तो छपरे ज़िलेके सिग्रहुता बँगरा ग्राममें शालिग्रामसिंहकी दीनहीन निस्सन्तान विधवा पत्नी कहीं दीख पड़ेगी, पर किसे गरज़ पड़ी है कि छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं—सिपाहियोंके घर-बारकी खबर ले ? पर क्या शालिग्रामसिंह दरअसल छोटे थे ? क्या उनकी साधना वस्तुत. क्षुद्र थी ?

(४) वह अमर मल्लाह

फार्मेंडेविल नामक अंगरेज़ी जहाज़ बड़ी तेज़ीके साथ चला जा रहा था कि एक साथ बड़े ज़ोरका धड़ाका हुआ। मालूम हुआ कि जर्मनोंकी किसी पनडुब्बीने उसपर आक्रमण किया है। जहाज़ धीरे-धीरे डूबने लगा। उसपर पचासों मल्लाह थे, पर बचानेवाली नाव सिर्फ एक ही थी। बचनेवालोंके नामकी पत्ती डाली गई और बारह आदमियोंकी सूचीमें एक सीधे-सादे मल्लाहका नाम भी निकल आया। नावके छोड़े जानेमें सिर्फ दो मिनटकी देर थी। उस मल्लाहने अपने एक साथीके कन्धेपर हाथ रखकर कहा—"देखो भाई ! मेरे माँ-बाप मर चुके हैं, तुम्हारे जीवित है, मेरे बजाय तुम जाओ।"

साथी चला गया और वह मल्लाह फार्मेंडेविल जहाज़के साथ वहीं समुद्रमें डूब गया। इस घटनाको घटे २५ वर्ष हो गये (यह महायुद्धकी है) पर आज उस सहृदय वीर मल्लाहके शब्द सजीव पाठकोंकी हृत्तंत्रीके तारोंमें झंकार पैदा किये बिना न रहेंगे।

उस मल्लाहका नाम क्या था, शायद कोई भी न जानता हो; पर वह अमर है। मातृत्व तथा पितृत्वके प्रति ऐसी प्रेमपूर्ण पवित्र बलि चढ़ानेवाले उस अज्ञात अंगरेज़ मल्लाहकी जलसमाधिपर क्या कोई कवि चार आँसू चढ़ावेगा ?

[नोट—रूसी किसान सेवक गुसेवकी सच्ची कहानी मेक्सिम गोर्कीकी

क्या हम लोगोंने सुजान और उनके भाई बन्धुओंका, सर्वोपरि तो क्या कुछ भी ख़याल रखा है ? क्या हमने कभी यह सोचा है कि चालीस-करोड़की जनताके कल्याणमें ही साहित्यका भी कल्याण है ?

टूटे छपार और मगौना धीमर, नल्ला पोखी और मधुरी चमार, लुना बरोर और धना नाई ही उन्नत पृथ्वीपुत्र हैं. इनकी उपेक्षा करने वाला साहित्य वास्तवमें एकांगी है। यही नहीं, वह दरअसल गलित भी है, वह न कभी फूलेगा न फलेगा।

आज फिर बरसातमें सुजानका बूढ़ा बाप भीगता हुआ रोता पड़ा और मैं सोचता हूँ कि ये सेवाश्रम, ये मन्त्रिमण्डल, ये मन्त्री महोदय, ये धारासभा, ये नेतागण और ये हम लोग (विशेषतः पालतू-फालतू साहित्यिक) आख़िर किस मर्ज़की दवा हैं ?

१९४५]

सुजान अहीर

"पंडितजी, गाड़ी ले लूं ? सुजानको वाय आय गई है," सुजान अहीरके बूढ़े बापने कहा।

"ज़रूर लेलो, सबसे पहले तुम्हारा काम होना चाहिए, पर किसको बुला रहे हो ?" मैंने पूछा।

वह बोला, "हवलदारको"

हवलदार नामका भी कोई वैद्य या डाक्टर है, यह मैं नहीं जानता था। मैंने झुंझलाकर उस बूढ़ेसे कहा, "तुम भी अजीब आदमी हो, इतनी देर में खबर क्यों दी ? डाक्टर साहबको क्यो नही बुलाया ?"

सुजानके बूढे बापका चेहरा उतरा हुआ था, उसकी हक्की बक्की भूल गई थी। वह कोई उत्तर नही दे सका। तब मेरी समझमें यह बात आई कि उस बूढ़ेमे जिसका जवान लड़का कई दिनसे सन्निपातमें मृत्यु-शय्यापर रक्खा हो, समझदारीकी उम्मीद करना ही महज़ हिमाकत है। मैंने फिर भी डाक्टर साहबको पत्र लिख दिया, पर हम लोग नगरसे चार मील दूर रहते हैं। सवारीका कोई प्रबन्ध नही और डाक्टर साहब दूसरे दिन शामको आ सके—सुजानकी मृत्युके पाँच घटे बाद। इसमें उनका कोई अपराध नही था। उन-जैसे सहृदय, कर्तव्यपरायण और सुयोग्य डाक्टर विरले ही होगे। पर अकेले वे क्या कर सकते है ? ओरछा राज्य-में शिक्षा चार फीसदी है और इक्कीस सौ वर्गमीलके नौ सौ ग्रामोमे एक अस्पताल और तीन डिस्पेन्सरी है। सुजानका पिता अपने तीन पुत्रोको खोकर अब भी गाय-बैल चराता हुआ कभी नज़र आजाता है। जब मैं उसे देखता हूँ, हृदयको एक धक्का-सा लगता है।

मैंने उससे कहा था, "तुम्हारा काम सबसे पहले होना चाहिए"। पर

वर्तनी

वक्त रातका है। अँधियारी छाई हुई है। एक पचास वर्षकी बुढ़िया कब्रिस्तानकी ओर लपकी हुई चली जा रही है। लो, वह वहाँ पहुँच गई, और उसने कब्र खोदना शुरू किया। थोड़ी देर बाद उसके घरवाले वहाँ घबराये हुए पहुँचे। उससे कहा, "यह क्या कर रही है?"

वह कहती है, "कर क्या रही हूँ, अपने बच्चोंको उठा रही हूँ। लोग यहाँ उन्हें क्यो सुला गये हैं?"

बात ठीक है। वर्तनीके दो जवान बेटे एक बाईस वर्षका, दूसरा सत्रह वर्षका दोनों विवाहित। इसी कब्रिस्तानमें वह नींद सोये हुए हैं, जिसके बाद कोई नहीं उठता। जिन्हें पाल पोसकर-वर्तनीने इतना बडा किया था, वे इसी स्थानपर गंभीर निद्रामें मग्न हैं! लोग वर्तनीको पागल कहते हैं, और दरअसल वह पागल है भी।

× × ×

"बाबूजी नारंगी लोगे" एक बुढियाने आवाज़ दी।

मैंने कहा, "भाव ठीक होगा, तो लूँगा। यहाँ कलकत्तेमें तेज़ बेचकर ठगनेवाले बहुत हैं।"

बुढ़ियाके हृदयको शायद कुछ ठेस लगी, "नहीं बाबूजी, मैं ज्यादा मुनाफा नहीं लेती। बस, दिन भर में छै आने पैसे कमा लेती हूँ।"

नारंगी दरअसल बाज़ारभावसे सस्ती थी। बुढ़िया नारंगी बराबर देती रही। एक दिन बोली, "अब यह आठ बच रही है, मुझे रोज़ेका इन्तज़ाम करना है। ये कहाँ बेचूँगी। आठ पैसे में ही ले लो।"

मैंने ले ली। फिर यो ही पूछ बैठा, "तुम्हारे घरपर कौन-कौन है?"

डलिया रखे वर्तनी रोज़ चली आती है। वह हँसकर बोलती है, पर उसकी बैठी हुई आँखोंके पीछे करुणरसका कितना भयंकर समुद्र छिपा हुआ है, इसका मुझे अनुमान भी नहीं था।

"अगर तुम्हारे बेटे आज ज़िन्दा होते, तो क्यों तुम्हें इतनी मेहनत करनी पड़ती।" अपनी बेवकूफ़ीसे मैं कह बैठा।

वर्तनीके नेत्र सजल हो गये। चेहरा करुणाकी मूर्ति था। उनमें मुझे उसके पाँच दफनाये हुए बच्चोंकी शक्ल दीख पड़ी।

मैंने बात टालकर कहा, "जबतक नारंगी बाज़ारमें बिकती रहे, मुझे बराबर दे जाया करो। बाज़ार भावमें, सस्ती नहीं।"

वर्तनी पाँच पैसे जोड़ेवाली नारंगी मना करनेपर भी चार पैसेमें दे गई। मैंने भी दिलमें यह सोचकर कि इस समय इससे ज़िद करना ठीक नहीं, ले ली।

हिन्द महासागरमें हिन्दू संगठन और मुसलिम तनज़ीमकी लहरें उठ रही हैं। सुनते हैं श्वेतपत्रके सुधारोंका तूफ़ान भी आनेवाला है, पर इससे श्वेतकेशा वर्तनीको क्या। अनेक प्राणियोंसे लदी हुई अपनी छोटी-सी नौकाको अपने शिथिल हाथोंसे, जब उसके दोनों पतवार नूरहसन-मुहम्मद और सख़ावतअली मँझधारमें गिरकर डूब चुके हैं, खेनेका प्रयत्न वह कर रही है।

वर्तनी छः आने रोज़ कमाती है। घरमें पाँच खाने वाले हैं। मकान-का किराया छः रुपये महीने है। बुढ़ापा आ पहुँचा है। किनारा अभी बहुत दूर है।

१९३४]

प्राइवेट तौरपर एक मीटिंगका प्रबन्ध किया, और लेनिनको इस बातकी खबर भी न दी कि उनकी रजत-जयन्तीका उत्सव किस-तरहसे मनाया जा रहा है। किसी तरह भरमाकर वे लोग लेनिनको उस स्थानपर लाये, जहाँ यह मण्डली इकट्ठी हुई थी। जब लेनिनको इस षड्यन्त्रका पता लगा, तो वे बहुत नाराज हुए और अपने दोस्तोंको डाँट बताते हुए बोले—

"जनाब, आपने समझ क्या रखा है? यह भी कोई जिन्दगी है? आप लोगोंके नामकी रिपोर्ट केन्द्रीय कमेटीके पास पेश की जायगी, क्योंकि आप भले आदमियोंके कीमती वक्तको बर्बाद इस तरहकी बेहूदी गप-शप्योंमें किया करते हैं।"

इसके बाद गोर्की खड़े हुए, और उन्होंने संक्षेपमें लेनिनके चरित्रका ऐसा शब्द-चित्र खींचा कि श्रोताओंके हृदय तथा नेत्र भर आये। इतनेमें देखते क्या हैं कि दोनों महापुरुष एक दूसरेको गाढ़ालिंगन कर रहे हैं! लेनिनने गोर्कीको छातीसे लगा लिया था। कई मिनट तक यह दृश्य रहा।

सुना है कि प्राचीन युगमें स्वर्गके देवता मर्त्यलोकके ऐसे प्रभावकारी दृश्य देखकर आकाशसे फूल बरसाया करते थे। पर स्वर्ग देवता और आकाश-पुष्पोंकी कहानी तो बहुत पुरानी हुई। इस नवयुगमें और युग-युगान्तर तक सहृदयोंकी श्रद्धाञ्जलिका पात्र रहेगा राजनीति तथा साहित्य-का यह अनुपम संगम—लेनिन और गोर्कीका वह दिव्य आलिंगन!

१९२९]

पत्र नं० ३

प्रियवर , ९-८-१९२१

मैं तो इतना थक गया हूँ कि अपनी जान बचानेके लिए भी कुछ नही कर पाता। लेकिन तुम? तुम्हारे थूकके साथ तो खून आने लगा है, और फिर भी वाहर जानेका नाम नही लेते! भई, मेरी वात मानो, तुम्हारी यह ज़िद विल्कुल वेजा और फ़िज़ूल है। यूरोपके किसी अच्छे सेनेटोरियम (आरोग्यशाला) मे तुम्हारा इलाज ठीक तौरपर हो सकेगा और वहाँ तुम यहाँसे तिगुना काम कर सकोगे। मेरी भी सुन लो। यहाँ, हमारे नज़दीक रहते हुए, न तो तुम्हारा कुछ इलाज हो सकता है और न तुम कुछ साहित्यिक काम ही कर पाते हो। यहाँ तो ऊल-जलूल कोलाहल तथा व्यर्थाभिमान —निरर्थक अहकार—का वोलवाला है। यहाँसे वाहर चले जाओ और तन्दुरुस्ती हासिल करो। ज़िद मत करो भाई! मेरी विनती भी सुन लो।

तुम्हारा,

.. ..

× × ×

ये अमर पत्र २०-२१ वर्ष पहलेके है, और संसारके एक महान् राजनैतिक नेताने एक विश्वविख्यात लेखकको भेजे थे। उनके नाम थे लेनिन और गोर्की!

दरअसल लेनिन गोर्कीको देशकी एक अमूल्य विभूति मानते थे और उनके स्वास्थ्यके विपयमें अत्यन्त चिन्तित रहते थे। अत्यन्त कार्य-व्यस्त रहनेपर भी वे इस तरहकी पचासों चिट्ठियोंके लिखनेके लिए वक़्त निकाल लेते थे। तीसरी चिट्ठी तो तव लिखी गई थी, जव लेनिन विल्कुल थके हुए तथा वीमार थे और स्वास्थ्यप्रद भोजन भी उन्हें नसीव नही होता था।

लेनिनकी पचासवीं वर्षगाँठ थी। उनके मित्रोंने एक षड्यंत्र किया।

सन्
१९५२
की
पुस्तकें
भारतीय ज्ञान पीठ
काशी